अज्ञानान्धकार में समाच्छन्न था, जिस समय ज्ञान एवं सभ्यता का क्षीणालोक भी यूरुप आदि महादेश में शनैः २ पादविक्षेप द्वारा प्रसृत नहीं हुआ था। उस समय भारत विद्या, बुद्धि, ज्ञान और सभ्यता के पूर्ण आलोक से जगत् को आलोकित कर अविनश्वर गौरव महिमा में सविशेष गौरवान्वित हुआ था। क्या धर्म, क्या ज्ञान, क्या दर्शनशास्त्र, क्या गणित, क्या ज्योतिष, क्या भैषज्य तत्व, क्या काव्य, क्या इतिहास, क्या शिल्प, क्या वाणिज्य, क्या भाषा, क्या साहित्य सर्वविध विषय ही में भारत जगत् के शीर्षस्थानीय था। जो आर्यजाति अतुल साहस, विक्रम, तेजस्विता और मनस्विता प्रभाव से भूमण्डल में अक्षयकीर्त्ति लाभ कर गई है, जो आर्य जाति एक समय पृथिवी में सब विषयों में सर्वश्रेष्ठ जाति कहकर परिगणित हुई थी, जो आर्यजाति ज्ञान और सभ्यता के विमल आलोक में जगत् को उद्भासित कर जगत् का शिक्षा गुरु बहुसम्मानार्ह वरणीय पद पर अधिरूढ़ थी, जिस आर्य जाति के गौरव के प्रभाव से भारतवर्ष जगत् के इतिहास के शीर्षस्थान में विराजमान होरहा है, जिस आर्य जाति के वंशधर कहकर हम परपद-दलित होकर भी अब तक सभ्यसमाज में ससम्मान से परिगृहीत होते हैं। उसी जगद्गुरुआर्यजाति की अपूर्व विद्या ज्योतिषशास्त्र आज अदृष्ट चक्र के आवर्त्तन से कीर्त्तिविलोपकारी कराल काल की विस्मृति कवल में निहित है॥

इस समय आर्यप्रतिभा पर कुछ कहूंगा। अधिकांश सभ्यजन पद में जो संख्या लिखने की प्रणाली चल रही है, भारतवर्ष ही उस की उत्पत्ति का स्थान है। एक से ९ संख्या एवं शून्य, एवं संख्या आदि आर्य ही लोगों ने पहिले सृष्ट की थी॥

पाटीगणित की दशगुणोत्तर संख्या लिखने की प्रणाली आर्यों की सृष्टि है। अरबवासीगण ने भारतीय आर्यों के निकट से यह सीख कर युरोप में प्रचार किया। अरबवासियों ने स्पष्टतः इस विषय में अपने को आर्य शिष्य कहकर स्वीकार किया है। यूरोपीय लोग इस मत का अनुमोदन करते हैं। जो निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है॥

(a.) "The Hindoos are distinguished in Arithmetic by the acknowledged invention of the decimal notation."..........P. 142, Elphinstone's History of India.

(b) "The Hindoos invented the decimal notation. Arabians took hints from them, whence the Europeans came to know the figures."

S. W. JONES, in his ann-dis-Courses.

(c.) "Bahauldin, an Arabian, ascribes the invention of the numeral figures in the decimal scale to the Indians. As the proof commonly given of the Indians being the inventors of these is only an extract from the preface of a book of Arabic poems, it may be as well as to mention that all the Arabic and Persian books of Arithmetic ascribe the invention to the Indians.

P. 184. Vol. XII Asiatic researches.

बीजगणित भी भारतवासी की सृष्टि। युरोपीय लोगों ने बीजगणित को मुसलमानों से पाया था। बीजगणित का Algebra नाम 'आलजिबर' शब्द से समुत्पन्न। ख्रीष्टीय त्रयोदश शताब्दी के आरम्भ में लिउनार्ड ने मुसलमानों के निकट बीजगणित सीखकर, इस का यूरुप में प्रचार किया। मुसलमानों ने आलजिबरा ग्रीस देश में दियफाण्डस को सिखलाया, किन्तु मुसलमान लोगों ने इस विषय में आर्य्यभट्ट वराहमिहिर ब्रह्मगुप्त प्रभृति ग्रन्थों से शिक्षा की ७७३ ख्रीष्टाब्द में खलीफा आलमनसूर के राजत्वकाल में पहिले अरबी भाषा में भारतवर्षीय गणितशास्त्र अनुवादित हुआ। बहुत से लोगों की सम्मति यह है कि "ग्रीकदेशीय गणितवित् दियफाण्डस ३६० ख्रीष्टाब्द में प्रादुर्भूत हुआ। वह आर्य्यभट्ट से पहिले हुये" किन्तु फण्डस पण्डित के पहिले पराशर, गर्ग प्रभृति भारतीय गणितविद्गण ने जन्म ग्रहण किया था। १५८८ ख्रीष्टाब्द में बम्बेली ने बीजगणित प्रकाशित किया वही दियफाण्डस का अनुवाद। बम्बेली ने स्पष्ट स्वीकार किया है जो आरब आदि के पहिले भारतवर्षीय लोग बीजगणित जानते थे। फलतः आरब लोगों के निकट यूरोपीय लोग अनेक विषयों में ऋणी एवं ये आरब लोग हम आर्य्यों के निकट पद २ में ऋणी हैं। इस विषय में यूरोपीय पण्डित का जो लेख है उसे प्रकाशित करता हूं॥

"Lionards of Pisa introduced Algebra into Europe; he learned it at Beegin, in Barbary, where his father ascribe in the Custom House by appointment from Pisa, his is dated A. D. 1202." Cowell's note to Elphinstone's History of India P. 115.

"Mohammed Ben Musa is recognized among the Arabians as the first who made Algebra known to them. He is the same who abridged, for the gratification of Almamun, an astronomical work taken from Indian system in the preceding age, under Almansur. He framed tables likewise, ground on those of the Hindoos, which he professed to correct. And he studied and communicated to his country-men the Indian's compendious method of computation."

Cole-brook's dissertion prefixed to his translations from Sanskrit Algebra.

"Priority seems their decisive in favor of Greeks and Hindoos against

any pretensions on the part of the Arabians who, in fact, however, prefer none inventors of Algebra. They were avowed borrowers in science and by their own unvarried acknowledgement from the Hindoos, they learnt the science of numbers. That they also received the Hindoo Algebra, is much more probable than that the same Mathemetician who studied the Indian Arithmetic and taught it to his Arabian brethren, should have hit upon Algebra unaided by any hint or suggestion of the India analysis."

Cole-brook's dessertions.

"The first Arabian Mathematician translated a Hindoo book in the reign of the Khalif Almansur, A D. 773."

Cowell's note to Elphinstone's History of India P. 145.

"The Arabs became acquainted with the Indian Astronomy and numeral science, before they had any knowledge of the writings of Grecian astronomers and Mathematicians, and it was not until after more than more century, and nearly two, that they had the benefit of an interpretation of Diophantus, whether version or paraphrase, executed by Mahammed Abul Waphs Al Buggane."

Cole-brook's Dissertion P. XXI.

"We know of no Greek writer on Algebra, but Diophantus; neither he nor any known another of any age or of any country, has spoken directly or indirectly of any other Greek writer on Algebra has with a term to designate the science."

P 163, Vol. XII Asiatic researches

"In 1579 Bombulli published a treatise of Algebra, in which he says that he and a lecturer at Rome whom he names, had translated part of Diophantus adding that they had found that in the said work the Indian authors are often cited, by which they learnt that science was known among the Indians before the Arabians had it" P. 161, Vol. XII.

Asiatic researches.

बेकनसाहब कहते हैं कि ख़ीष्ट के ४००० वर्ष पूर्व भारतवर्ष में गणित ज्योतिष की अत्युन्नति थी। बेलीनामक अनेक फरासी पण्डित ने लिखा है कि हिन्दुस्तान में ५००० वर्ष पहिले ज्योतिषशास्त्र उत्तम अवस्था में पाया जाता था॥

ऐसे भारतीय प्राचीन ज्योतिषशास्त्ररूपी अमूल्य रत्न के अन्वेषण में निश्चेष्ट, निष्क्रिय, परपदानत भारतवासी आर्यसन्तान की प्रवृत्ति और उत्साह नहीं उत्पन्न होते॥

जिस प्रकृत ज्योतिषशास्त्र के न जानने से भारतवासी वेद आदि सच्छास्त्रों के गूढार्थ मर्म समझने में असमर्थ होकर वेद, ब्राह्मण, पुराण आदि प्रतिपादित ज्योतिष मूलक आलङ्कारिक लेखों का उलटा निन्दित आशय समझकर

हमारे ऋषियों को गुरुतल्पगामी, किसी को चोर, किसी को इन्द्रिय परवश होकर नन्दन वन में रम्भादि अप्सरा लेकर क्रीड़ा की, कोई अभिमानी, कोई स्वार्थपर, किसी को लोभी, सब ही महापापी, सब ही दुर्बल, ब्रह्मा ने अपनी लड़की के साथ भोग किया। श्री कृष्ण ने व्रजाङ्गनाओं के साथ शास्त्रविरुद्ध मैथुनादि कर्म किया, यमयमी संवाद, गौतम अहल्या कथा इत्यादि। चन्द्रमा ने अपनी ३३ स्त्रियों में से विशेषतः रोहिणी के साथ प्रीति की। पृथिवी का पुत्र मङ्गल, चन्द्रमा का पुत्र बुध, देवताओं का गुरु बृहस्पति आदि॥

आज हम उसी वेद के ६ अङ्गों में से सर्वप्रधान सिद्धान्तज्योतिष के अनुवाद करने को प्रवृत्त हुए हैं। आशा है कि हमारे भारतवासी इस अमूल्य भारतरत्न प्राचीन वेदाङ्ग ज्योतिषशास्त्र (सूर्यसिद्धान्त) के भावानुवाद को पढ़कर वेद एवं अन्यान्य वैदिक एवं लौकिक ग्रन्थों का प्रकृत अर्थ समझ कर लाभ उठावेंगे॥

हम प्रथम ज्योतिष विषयक शङ्का समाधान प्रमाण एवं युक्ति पूरित 'बृहद्भूमिका' लिखेंगे तदनन्तर सूर्यसिद्धान्त का अनुवाद आरम्भ करेंगे। इस समय धनाभाव से इस के साथ चित्र (नक़शा) नहीं छपवा सके। कारण यह है कि अनुमानतः चित्रों के छपने में ३००) रुपये लगेंगे, परन्तु यदि हमारे ऋषि सन्तान ने इस आवृत्ति के सूर्यसिद्धान्त को हाथों हाथ लेकर हमारे परिश्रम को सफल किया तो आशा है कि अगली आवृत्ति में अवश्य सचित्र सोदाहरण सू० सि० छपवायेंगे॥

स्थान मधुरापुर
डाक–विद्दूपुर
जिला मुज़फ़्फ़रपुर
१८। ७। ९६

आप का शुभचिन्तक–
उदयनारायणसिंह (आर्य)

सूर्यसिद्धान्त-भूमिकास्थ विषयानुक्रमणिका सूचीपत्रम्



ओ३म्

अथ सूर्यसिद्धान्तस्य विषयानुक्रमणिका सूचीपत्रम्

सूर्यसिद्धान्तस्य भूमिकायाः शुद्धिपत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पङ्क्ति
उपवेद्	उपवेद,	२	६
शास्त्राद्ऽस्मात्	शास्त्रादस्मात्	२	१०
वेदचक्षः	वेदचक्षुः	२	२२
ज्यतिष	ज्योतिष	२	२७
ऋवेदज्योतिष	ऋग्वेदज्योतिष	३	२९
दृत्वा	दृष्वा	५	४
सिद्धान्त	सिद्धान्त	६	९
जातक	जातकया	१०	८
यवून	यवन	१२	२४
झूट	झूठ	१४	२८
विद्वानों से	विद्वानो ने	१९	१
ब्रदानीं	इदानीन्तन	२०	४
कारणम	कारण	२२	३
नक्षत्रे	नक्षते	२२	९
चित्रविचित्र	चित्रविचित्र के	२२	१९
कृत्ति	कृत्तिका	२२	२५
शुक्र	शुक्र	२५	२२
सख्या	सख्या	२६	११
गाद	यह	३०	२४
चलने वाला	चलने वाला)	३३	२४
छाड	छोड़	३९	२
पुष्ट	पुष्ट	३९	१०
परिच्छन्ति	परिच्छिन्ति	४०	२१

सानुवाद सूर्यसिद्धान्तस्य शुद्धाऽशुद्ध पत्रम्

अशुद्ध	शुद्ध	संख्या पृष्ठ	संख्या पङ्क्ति
समय	मास	४	१५
को उत्तर निवसी के	के उत्तर निवासी	५	११
४३०००	४३२०००	६	६८
Circumfirence	Circumferance	८	२४
धाले	वाले	८	२६
Signa	Sign	९	२४
विकला	कुटिला	३२	१
भरका	अवस्था	३२	११
इस प्रकार इस प्रकार	इस प्रकार	४३	१४
वर्त्तमान वर्त्तमान	वर्त्तमान	४३	२५
केन्द्रकारक	केन्द्र करके	४७	१४
शवर्ग	शङ्कुवर्ग	४८	१५
सर्य	सूर्य	५९	२२
संख्या	संख्या	५९	२५
वियर्द्धे	विमर्दार्द्धे	६०	२४
ग्रहण	ग्रह	६१	८
गागा	होगा	६८	२०
पूर्वत्	पूर्ववत्	६८	२१
शलकां	शलाका	७१	२१
स्फटाः	स्फुटाः	७६	२७
तदन्तर	तदनन्तर	८४	११
रात्र्पादि	रात्र्यादि	८६	२३
शुल्कं	शुक्लं	९२	१०, २२, २४

२

ओ३म्

ज्योतिष शास्त्र

ज्योतिष शब्द का सामान्य अर्थ तारा आदिक प्रकाशमान वस्तु और शास्त्र का अर्थ बतलाने वाला "ज्योतिषशास्त्र" अर्थात् जिस के द्वारा सूर्य्य, चन्द्रमा तथा अन्यान्य नक्षत्रादिकों की गति विधि प्रभृति का ज्ञान हो– जिसका लक्षण श्री भास्कराचार्य्य ने अपनी सिद्धान्तशिरोमणि में यों लिखा है:–

त्रुट्यादिप्रलयान्तकालकलनामानप्रभेदः क्रमाच्चारश्च द्युसदां द्विधा च गणितं प्रश्नास्तथा सोत्तराः। भूधिष्ण्यग्रहसंस्थितेश्च कथनं यन्त्रादि यत्रोच्यते सिद्धान्तः स उदाहृतोऽत्र गणितस्कन्धप्रबन्धे बुधैः ॥ ६ ॥

भावार्थः–काल के सब से छोटे भाग को "त्रुटि" कहते हैं। त्रुटि से कल्प पर्य्यन्त काल की गणना, सौर, सावन, नाक्षत्रादि कालमान, एवं प्रत्यनुकला से भगण पर्यन्त क्षेत्रपरिमाण, ग्रह एवं नक्षत्रादिकों की गति, व्यक्त तथा अव्यक्त गणित (Mathemotics). प्रश्नोत्तर सहित एवं पृथ्वी आदि ग्रहों की संस्थिति और यन्त्रादिकों का वर्णन इत्यादि जिसमें हों उस को पण्डित लोग "सिद्धान्त ज्योतिष" कहते हैं ॥ ६ ॥

कतिपय पण्डित लोग ज्योतिषशास्त्र के दो भाग मानते हैं एक पूर्वोक्त सिद्धान्त ज्योतिष एवं दूसरा फलित ज्योतिष। फलित का लक्षण "फलित विचार" में लिखा गया है, वहीं देखें ॥

ज्योतिष शास्त्र को वेदाङ्गत्व

प्राचीन इतिहासों से यह बात सर्वथा सिद्ध है कि दुनियां भर में वेद से प्राचीन धर्मपुस्तक दूसरा कोई नहीं है। इस अपौरुषेय वेद को (किसी व्यक्ति ने इसकी रचना नहीं की) अनादिकाल से हम मनुष्यों के हितार्थ ईश्वर ऋषियों द्वारा प्रत्येक सृष्टि की आदि में प्रकाशित करता है। वेद सब विद्याओं का भण्डार है। इस वेद के चार भाग हैं:–१ ऋग्वेद, २ यजुर्वेद, ३ सामवेद, ४ अथर्ववेद, एवं इनकी ११२७ शाखायें हैं ॥

इन वेदों को समझने व पढ़ने पढ़ाने के लिये हमारे महर्षियों ने ४

उपवेद, ६ अङ्ग, और ६ उपाङ्ग बनाये हैं। उपवेद–१ आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) २ धनुर्वेद (युद्धशास्त्र) ३ गान्धर्ववेद गानविद्या और ४ अर्थवेद (शिल्पशास्त्र) हैं। अङ्ग–१ शिक्षा, २ कल्प, ३ व्याकरण, ४ निरुक्त, ५ ज्योतिष और ६ छन्दः शास्त्र है। और उपाङ्ग–१ वैशेषिकशास्त्र, २ न्यायशास्त्र, ३ योगशास्त्र, ४ सांख्यशास्त्र, ५ पूर्वमीमांसा, ६ उत्तरमीमांसा वा वेदान्त हैं। जब तक इन उपवेद अङ्ग और उपाङ्गों को प्रथम नहीं पढ़ ले तब तक वेदों का यथार्थ तत्त्व मनुष्य नहीं जान सकता। हमें इन छः अङ्गों में से यहां ज्योतिष शास्त्र के विषय में वक्तव्य है। भास्कराचार्य्य ने लिखा है कि–

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ता यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण। शास्त्रादऽस्मात् कालबोधोयतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ॥ ९ ॥ सिद्धान्तशिरोमणौ ॥

भावार्थः–जिस कारण वेदों में बहुधा यज्ञ का विधान है और यज्ञ करने में समय निर्दिष्ट किया जाता है कि अमुक समय यज्ञ करना चाहिये, यज्ञ वेदी इतनी लम्बी चौड़ी होनी चाहिये, यज्ञकुण्ड अष्टकोण, चतुष्कोण आदि आकार का होना चाहिये, और यज्ञशाला इस २ प्रकार होनी चाहिये इत्यादि ज्ञान बिना ज्योतिष शास्त्र के नहीं हो सकता–इस लिये ज्योतिषशास्त्र को "वेदाङ्गत्व" है। अब रूपकालङ्कार से वेद को अङ्गी एवं निरुक्तादि छः शास्त्रों को उसके अङ्ग वर्णन करते हैं:–

"शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी, श्रोत्रमुक्तं निरुक्तञ्च कल्पः करौ। या तु शिक्षाऽस्य वेदस्य सा नासिका, पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधैः ॥१०॥

"वेदचक्षुः किलेदं स्मृतं ज्योतिषं, मुख्यता चाङ्गमध्येऽस्य तेनोच्यते। संयुतोऽपीतरैः कर्णनासादिभिश्चक्षुपाङ्गेन हीनो न किञ्चित्करः ॥११॥ सिद्धान्तशिरोमणौ ॥

भावार्थः–वेद (शरीर) के व्याकरण तो मुख, ज्योतिषशास्त्र नेत्र, शिक्षा नासिका, और छन्दः शास्त्र पैर हैं। वेद के नेत्ररूपी ज्योतिषशास्त्र होने से छ अङ्गों में सब से श्रेष्ठ ज्योतिष शास्त्र है–क्योंकि नेत्रहीन व्यक्ति अन्यान्य सब अङ्ग रहने पर

भी अन्यान्य अङ्गों से नेत्र का काम नहीं ले सकता। इस लिये किसी कार्य के करने में असमर्थ होता है। इसी प्रकार बिना ज्योतिष शास्त्र पढ़े वेद के यज्ञादिक कार्य्य तथा गृहनिर्माणादि कार्य नहीं हो सकते॥

यहां ज्योतिषशास्त्र से "सिद्धान्त ज्योतिष" समझना चाहिये, फलित नहीं। फलित वस्तुतः ज्योतिषशास्त्र नहीं है और न उस का वेदोक्त यज्ञादिक कार्य से सम्बन्ध है, क्योंकि वेद या उस की शाखा में विधिवाक्य हैं कि "पुत्रेष्टि" आदि यज्ञ अमुक वर्ष, मास, ऋतु, पक्ष, तिथि, नक्षत्र में करना चाहिये और यज्ञ कुण्ड समचतुष्कोण आदि होना चाहिये, तथा यज्ञशाला आदि इतनी लम्बी चौड़ी होनी चाहिये। अब इस के अनुसार ज्योतिष शास्त्र से वर्ष, मास आदि यथोचित निर्धारित होता है, फलित ज्योतिष से नहीं॥

इस में सन्देह नहीं कि फलित ज्योतिष से स्वार्थसिन्धु लोगों को टका कमाने का और भारत को गारत कर आरत बनाने का अच्छा सुविधा मिलता है। छींकना, मैथुन करना, धोती पहनना, पढ़ना, लिखना, बेचना, ख़रीदना, विवाह करना, चोरी करना, परदेश जाना आदि जितने सांसारिक कार्य्य वा अकार्य हैं सब ही के लिये जैसी फ़ीस दाख़िल करें, वैसा मुहूर्त्त लीजिये॥

सिद्धान्त ज्योतिष (Astronomy)

काल के सब से छोटे भाग को "त्रुटि" कहते हैं, त्रुटि से लेकर कल्प पर्यन्त काल की गणना, सौरमास, नक्षत्रादि कालमान, एवं विकला से भगण पर्यन्त क्षेत्रपरिमाण तथा नक्षत्रादिकों की गति, व्यक्त एवं अव्यक्त गणित (Mathematics) प्रश्नोत्तर सहित एवं पृथिवी आदि ग्रहों की सस्थिति और यन्त्रादिकों का वर्णन इत्यादि विषय जिस में हो उस को पण्डित गण "सिद्धान्त ज्योतिष" कहते हैं॥

इस के निम्नलिखित प्रामाणिक ग्रन्थ हैं

१ ब्रह्म सिद्धान्त	८ गर्ग सिद्धान्त	१५ सुन्दर सिद्धान्त
२ सूर्य्य सिद्धान्त	९ व्यास "	१६ तत्वविवेक "
३ सोम सिद्धान्त	१० पराशर "	१७ सार्व भौम "
४ रोमक "	११ भोज "	१८ लघु आर्य्य "
५ वसिष्ठ "	१२ वराह "	१९ बृहद् आर्य्य "
६ पौलस्त्य "	१३ ब्रह्मगुप्त "	२० ऋग्वेद ज्योतिष
७ बृहस्पति "	१४ सिद्धान्तशिरोमणि "	२१ यजुर्वेद ज्योतिष
		२२ अथर्व ज्योतिष

सूर्य्य सिद्धान्त रचना काल

आधुनिक सूर्य सिद्धान्त में १४ अधिकार और ५०० अनुष्टुप्छन्द के श्लोक हैं। इस के आरम्भ के श्लोक में लिखा है कि सत्ययुग के अन्त में सूर्य की आज्ञा से सूर्यांश पुरुष ने मय नामक असुर को ज्योतिष का उपदेश किया जिस को यने आज शाके १८२५ तक २१६५००४ सौर वर्ष हुए ॥

परन्तु आधुनिक सूर्य्यसिद्धान्त कृत युगान्तकालिक नहीं है, इस विषय में महामहोपाध्याय श्री पण्डित सुधाकर द्विवेदी प्रोफ़ेसर संस्कृत कालिज बनारस ने पञ्चसिद्धान्तिका की भूमिका में लिखा है, जिस का मैंने उपयोगी समझ कर यहां उल्लेख किया है:-

"सूर्यसिद्धान्तरचनाकालस्तु नित्यानन्देन सिद्धान्तराजकृता कलेः षट्त्रिंशच्छतमितेऽब्दगणे व्यतीते निगद्यते। स कालस्तु आर्यभट्टकृतसिद्धान्तस्य समकालिकएव सिध्यति विभाति च तथ्यं नित्यानन्देन प्रतिपादितमार्य भटीयसिद्धान्ते न कुत्रापि सूर्यसिद्धान्तमतप्रतिपादनात्। साम्प्रतं प्रचलितसूर्यसिद्धान्तः कृतयुगान्तकालिकस्तु केनचिदन्येन प्रकल्पितो नवीन इति स्फुटमेव सूक्ष्मविचारप्रवृत्तानां गणकानाम्। भारतवर्षे ऋषिप्रणीतानां सिद्धान्तानामेव प्रमाणं नान्येषां तेन भारतवर्षीयाश्चिरंतना आचार्याः कमपि मुनिप्रणीतसिद्धान्तं स्वीकृत्य तत्र बीजादिकं दत्वा स्वंस्वं सिद्धान्तं चक्रुर्यथा ब्रह्मगुप्तेन ब्रह्मसिद्धान्तं स्वीकृत्यात्मसिद्धान्तो विरचितः ॥

ब्रह्मोक्तं यहगणितं महता कालेन यत्खिलीभूतम्।
अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन ॥

भास्कराचार्येणापि स एव ब्रह्मसिद्धान्तः स्वीकृतएव अन्येऽपि सूर्य्यसिद्धान्तादीन् स्वीकुर्वन्ति तेन तत्तदाचार्य रचितसिद्धान्तान् तत्तत्स्वीकृतमुनिसिद्धान्तनाम्ना व्य-

वहरन्ति तत्तदुत्तरकालीना विद्वांसोऽतएव वदति वराह-मिहिराचार्यः " पञ्चभ्यो द्वावाद्यौ व्याख्यातौ लाटदेवेन " अर्थात् लाटाचार्येण द्वौ पौलिशरोमकसिद्धान्तौ व्याख्यातौ तयोर्भगणादिषु बीजं दत्वा विस्तारितौ स्वकृतसिद्धान्ते अत्रेदमुक्तं भवति – लाटाचार्येण पौलिश रोमक सिद्धान्तौ स्वीकृत्य तत्र बीजादिविशेषं विधाय रचितोऽन्यः सिद्धान्तः । अत एव यथा मदीयं करणं सर्वजनस्वीकृतं भवेदिति बुद्ध्या पञ्चानां सिद्धान्तानां मतानि स्वीकृत्य रचिता चाचार्येणेयं पञ्चसिद्धान्तिका । एवमेव विष्णुचन्द्रादयो वसिष्ठसिद्धान्तादीन् स्वीकृत्य स्वान् सिद्धान्तान् रचयामासुः न ते साक्षाद्वसिष्ठादिसिद्धान्तकर्त्तार इति मन्मतम्॥

भावार्थः–सिद्धान्तराज ग्रन्थकार नित्यानन्द कहते हैं कि सूर्य्य सिद्धान्त कलियुग के ३६०० वर्ष बीतने पर बना । यह समय आर्य भट्ट कृत आर्य सिद्धान्त के समकाल प्रसिद्ध ही है और सत्य ही प्रतीत होता है। क्योंकि आर्य सिद्धान्त में सूर्य्य सिद्धान्त का कहीं भी उल्लेख नहीं है । आधुनिक सूर्य्य सिद्धान्त को सत्ययुगान्तकालिक मानना केवल लोगों की कल्पनामात्र है॥

भारतवर्ष में आर्षिक सिद्धान्त ग्रन्थों ही का प्रमाण माना जाता–औरों का नहीं,इस लिये भारतवर्षीय चिरन्तन आचार्यों ने किसी मुनि प्रणीत सिद्धान्त को मान कर उसमें बीजादिक दे अपने२ सिद्धान्त को बनाया।–जैसे ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त मान कर अपना सिद्धान्त रचा ।

" ब्रह्मोक्त ग्रहगणित बहुत काल होने से जो नष्टप्राय हो गया उसी को जिष्णुपुत्र ब्रह्मगुप्त स्पष्ट करते हैं "

भास्कराचार्य ने भी उसी ब्रह्मसिद्धान्त को माना इसी प्रकार और लोग भी सूर्य्यसिद्धान्तादिक को मानते हैं । इस कारण उन २ आचार्य्यरचित सिद्धान्तों को उन २ के माने हुए मुनिकृतसिद्धान्तों के नाम से तदुत्तरकालीन विद्वान् लोग व्यवहार करते हैं। इस लिये वराह मिहिराचार्य्य कहते कि पांच सिद्धान्तों में से प्रथम दो की व्याख्या लाट देव ने की है अर्थात् लाटाचार्य ने पौलिश और रोमक सिद्धान्त की व्याख्या की है । इस के

भगणादि मे बीज मिलाय विसारित कर अपना सिद्धान्त बनाया । यहां यह कहा जाता है कि लाटाचार्य ने पौलिश और रोमक सिद्धान्त को मान कर उन में बीजादि विशेष देकर अन्य सिद्धान्त रचा । अत एव मेरा बनाया करण (ग्रन्थ) सब लोगों से माना जावे इस बुद्धि से पांचों सिद्धान्तो के मत को मानकर आचार्य्य ने इस पञ्चसिद्धान्तिका नामक ग्रन्थ को रचा । इसी प्रकार विष्णुचन्द्रादिक ने वसिष्ठसिद्धान्तादि को मानकर अपने सिद्धान्त को बनाया । वसिष्ठ आदि मुनियों ने स्वय नहीं बनाया —यह मेरा मत है ॥

और आर्य्य भट ने शाके ३९८ में जन्म लेकर २३ वर्ष की अवस्था में आर्य सिद्धान्त बनाया जिस का प्रमाण उसी ग्रन्थ से मिलता है–

"कालः षष्ट्यब्दानां षष्टिर्यदा व्यतीतास्त्रयश्च युगपादाः ।
त्र्यधिका विंशतिरब्दास्तदेह मम जन्मनोऽतीताः "

(आर्यसिद्धान्ते कालक्रियापादे)

अर्थात् शाके ४२१ में यह ग्रन्थ बना—इस में सूर्यसिद्धान्त का कहीं भी उल्लेख नहीं है । एवं वराहमिहिराचार्य्य ने जिस का देहान्त शाके ५०९ में हुआ अपनी पञ्चसिद्धान्तिका ग्रन्थ में जिस सूर्यसिद्धान्त का उल्लेख किया है उस से और आधुनिक सूर्यसिद्धान्त से अन्तर पड़ता है—इस से अनुमान होता है कि जो सू० सि० वराहमिहिर के समय में था वह प्रचरित सू० सि० से भिन्न दूसरा था । पाठकों के अवलोकनार्थ थोड़ा सा दोनों सू० सि० का विषय नीचे लिखते हैं:—

महायुगीय भगण संख्या—

वराहमिहिर उल्लिखित सूर्यसिद्धान्त		आधुनिक सूर्य्यसिद्धान्त
ग्रहगण	भगण	भगण
बुध	१७९३७७००	१७९३७०६०
शुक्र	७०२२३८८	७०२२३७६
मङ्गल	२२९६८३४	२२९६८३४
बृहस्पति	३६४२२०	३६४२२०
शनैश्चर	१४६५६४	१४६५६८

वराहमिहिर के देहान्त होने का (शाके ५०९ में) प्रमाण—

नवाधिक पञ्चशतसंख्यशाके
वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः ॥

फलित ज्योतिष का विचार

A *Lecture* on astrology by Pandit Bapu Deva Shastry, Professor of Astronomy, Benares Sanskrit College, Honorary Member of the Royal Asosiation Society London &c, the Asiatic Society Bengal, Fellow of the Calcutta University

फलित उस को कहते हैं जिस में इष्ट काल के ग्रहों की स्थिति पर से भूत भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों काल के शुभ और अशुभ फल जानने के प्रकार रहते हैं। यह दो प्रकार का है, एक संहिता और एक होरा॥

संहिता उसे कहते हैं जिस में उस २ काल के ग्रहों की स्थिति पर से सुभिक्ष, दुर्भिक्ष, सुवृष्टि, अतिवृष्टि, अग्नि भय, वा राजकीय उपद्रव इत्यादि सर्वसाधारण शुभ वा अशुभ फल जानने के प्रकार हैं और जिस में किसी काम का आरम्भ करने के लिये ऐसा काल ठहराने के प्रकार रहते हैं, कि जिस काल में उस कार्य का आरम्भ करने से वह काम सफल होजाये। ऐसे (ठहराये हुये) काल को संस्कृत (फलित ग्रन्थ) में "मुहूर्त" और भाषा में "साअ़त" कहते हैं॥

होरा अथवा जातक उसे कहते हैं जिस में हर एक प्राणी के जन्म काल के ग्रहों की स्थिति पर से उस के समग्र जीवन का वृत्तान्त समझने की विधि रहती हैं। इस होरा शास्त्र का और भी एक भेद है जिस को ताजिक कहते हैं।-इस में प्राणी के जन्म काल से हर एक वर्ष मास आदि के आरम्भ काल के ग्रहों की स्थिति पर से उस २ वर्ष, मास आदि का वृत्तान्त समझने के प्रकार रहते हैं॥

यह फलित शास्त्र का इस देश में जिस समय संस्कृत विद्या का सूर्य्य अस्तप्राय होता था जिस को लगभग "वर्ष हुये कि प्रचार होने लगा। इस में जातक के ग्रन्थों में तो कितने एक शब्द केवल यवन अर्थात् ग्रीक भाषा के ।इस से स्पष्ट ज्ञान पड़ता है कि जातक शास्त्र के कुछ विषय यहां के ज्यो- .ष के ग्रन्थकारों ने ग्रीकलोगों से लिये हैं और "ताजिक" के तो सब विषय . ..लों से लिये हैं क्योंकि उस के सब सांकेतिक शब्द अरबी भाषा के हैं। अधिकांश आर्य लोग इस फलितज्योतिष को समझते हैं और प्रायः इस में जो लिखा है उस के अनुसार आचरण करते हैं। मुहूर्त्त के विषय में तो किसी काम का आरम्भ अच्छी साअ़त देखे विना नहीं करते। जो किसी को कुछ

ब्राह्मणों को दान देता है और उन से जप होम इत्यादि करवाता है। यही चाल हिन्दू लोगों मे है॥

फल जानने के लिये गणित का ज्ञान अवश्य चाहिये, यही गणित या "सिद्धान्त ज्योतिष शास्त्र" का मुख्य उपयोग अधिकांश आर्य (हिन्दू) लोग समझते हैं। सिद्धान्त में भी यो लिखा है कि:–

ज्योतिःशास्त्रफलं पुराणगणकैरादेश इत्युच्यते,
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत् स्पष्टखेटाश्रयम्।
ते गोलाश्रयिणोऽन्तरेण गणितं गोलोपि न ज्ञायते,
तस्माद्यो गणितं न वेत्ति स कथं गोलादिकं ज्ञास्यति॥

अर्थात्–पुराने ज्योतिषी लोग कहते हैं कि "आदेश" अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान इन तीनो काल के शुभ वा अशुभ का जो कहना है, सो ज्योतिष शास्त्र का प्रयोजन है। फिर आदेश लग्न के बल के आश्रय से है और यह लग्न स्पष्ट ग्रह से और स्पष्ट ग्रह "गोल" से ज्ञात होता है और बिना गणित के गोल समझ में नहीं आता, इस लिये जो गणित नहीं जानता सो गोल आदि कैसे जानेगा॥

इस लिये वराहमिहिर ने अपनी संहिता में लिखा है कि.–

तन्त्रे सुपरिज्ञाते छायाम्बुयन्त्रसंविदिते।
होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वन्ध्या॥

अर्थात् जो गणित और सिद्धान्त को उत्तम प्रकार से जानता हो और शङ्कु की छाया और घटी यन्त्र से लग्न जानता हो और जातक शास्त्र का सब अर्थ ठीक किया हुआ हो उस का कहा हुआ फल कभी व्यर्थ नहीं होगा॥

इसी लिये यहां के बहुत लोग यों समझते हैं कि ये अंग्रेज लोग जो गणित और सिद्धान्त में बहुत प्रवीण होते हैं और जो बडे २ यन्त्रों से सूक्ष्म वेध करके ग्रहों की स्थिति उत्तम प्रकार से जानते हैं, वे फलित में अवश्य बहुत अच्छे होंगे और इस लिये वे अच्छी साइत पर युद्ध करते होंगे तभी उन का सर्वत्र जय होता है॥

और जो कोई उन से कहे कि अंग्रेज लोग फलित नहीं मानते तो वे यह कहना झूंट समझते हैं और जो किसी को इस कहने पर विश्वास हो जावे तो उस को बडाही आश्चर्य होता है, जो अंग्रेज लोग फलित नहीं मानते

तो वे गणित में ग्रहों की स्थिति जानने में इतना व्यर्थ परिश्रम क्यों करते हैं। परन्तु पहिले विलायत में भी सिद्धान्त विद्या का फलित ही के लिये था। अनुमान १७५ वर्ष पहिले जर्मनी देश में केप्लर नामक एक बड़ा ज्योतिषी हुआ। उस ने एक ग्रन्थ में यों लिखा है कि "सिद्धान्त विद्यारूप विदुषी माता की फलित विद्यारूप एक मूर्ख बेटी है और माता का जीवन केवल उसी मूर्ख से है। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि हिन्दुस्तान में फलित विद्या का प्रचार बहुत है और सिद्धान्त विद्या जो फलित को बहुत आवश्यक है सो बहुत क्षीण हुई है, उस का थोड़ा सा अंश प्रसिद्ध है। यहां जिस को ज्योतिषी होने की इच्छा होती है वह केवल "पत्रा" (पञ्चाङ्ग+जन्त्री) बनाने की एक सारणी (Table) ग्रन्थ पढ़के और दो चार फलित के ग्रन्थ पढ़ लेता है। इतना पढ़ के ज्योतिषी बन के लोगों की जन्मपत्री और वर्ष फल लिख के अपना निर्वाह करता है और जो जन्मपत्री वा वर्षफल में फल लिखा रहता है, कहीं मिलता और कहीं नहीं मिलता। वह फल न मिलने का दोष अपने ऊपर न आवे इस लिये ज्योतिषी लोग जन्मपत्री की आदि में प्रायः यह श्लोक लिखते हैं:-

जनुषः समये धृतं न यन्त्रं
न मया च निवेशिता च नाडी।
अपरैरुपदिष्टजन्मकाला-
ज्जनिपत्रीह विलिख्यते मयैषा।

अर्थात्-(जन्मपत्री लिखने वाला ज्योतिषी कहता है कि) मैंने जन्मकाल ठीक जानने के लिये उस समय कोई तुरीय आदि यन्त्र लगाया नहीं था, न कोई घड़ी भी वहां स्थापित की थी। दूसरे ने जो जन्मकाल कहा उस पर से मैं यह जन्मपत्री लिखता हूं। इस लिये विश्वगुणादर्श नामक पुस्तक में ज्योतिषी का वृत्त लिखा है कि:-

विलिखति सदसद्वा जन्मपत्रं जनानां
फलति यदि तदानीं दर्शयत्यात्मदाक्ष्यम्।
न फलति यदि लग्नं द्रष्टुरेवाह मोहं
हरति धनमिहैवं हन्त दैवज्ञपाशः॥

अर्थात् ज्योतिषी अच्छा वा बुरा किसी प्रकार का एक जन्मपत्र लोगों

को लिख देता है। जो उस में लिखा हुआ फल मिल जावे तो सभों को अपना सामर्थ्य दिखलाता है और जो न मिले तो कहता है कि जन्मकाल देखने हारा चूका है। खेद की बात है कि इस प्रकार से कुत्सित ज्योतिषी लोगों से द्रव्यहरण करता है॥

यों हिन्दुओं में फलित की और ज्योतिषी की अवस्था है। मुसलमान लोग भी कहते हैं कि फलित विद्या सच्ची है। उन में शीआ लोग तो हिन्दुओं की नाईं उस को मानते हैं। लखनौ में कितने कितने एक ब्राह्मणों ने फलित विद्या पर मुसलमानों से लाखों रुपये पाये हैं। सुन्नी लोग विद्या को सच्ची समझते हैं परन्तु प्रायः अपनी जन्मपत्री और वर्षफल बनवाके शुभाऽशुभ फल नहीं देखते॥

अब पहिले लिखा है कि फल कहीं मिलता है और कहीं नहीं मिलता तिसपर फलित के आचार्य्य कहते हैं कि जो फल नहीं मिलता सो फलित शास्त्र का दोष नहीं है, परन्तु वह फल लिखने हारे ज्योतिषी का अज्ञान है। उस ने जो ग्रहों का गणित किया होगा सो चूका होगा वा फलित के विचार से कहीं भूला होगा इस में कुछ संशय नहीं है। यों ज्योतिषी की भूल से फलित शास्त्र झूठ नहीं हो सकता। क्योंकि इस शास्त्र के बनाने हारे जो आचार्य्य होगये हैं उन लोगों ने उस २ काल के ग्रहों की स्थिति पर से वह २ फल निश्चय से होता है, यों वारम्वार परीक्षा करके फलित के सिद्धान्त लिखे हैं सो झूठ क्योंकर होंगे? जैसे अमुक रोग पर अमुक औषध देने से वह रोग दूर होता है, यो वैद्यक के ग्रन्थकारों ने बार २ परीक्षा से ठहरा के यह औषध उस रोग का नाशक है, यों ग्रन्थ में लिख दिया है, फिर वैद्य लोग रोगियों को औषध देते हैं उस में कितने एक रोगियो का रोग दूर होता है और कितने एक का नहीं होता। उस में वैद्यकशास्त्र का दोष नहीं यह वैद्य का दोष है। उस रोग के दूर न होने में कारण यही है कि उस वैद्य को उस रोग की परीक्षा अच्छी भांति न हुई होगी वा औषध की युक्ति अच्छी न बनी होगी परन्तु इस से वैद्यकशास्त्र झूठ नहीं हो सकता। इसी प्रकार से फलित भी झूंठ नहीं है। जो कोई यों कहे कि आकाश में ग्रह और नक्षत्र पृथिवी पर से उस २ स्थान में दृष्ट हो तो वह २ फल होता है। यह जो समग्र फलित में लिखा है इस में परस्पर दूरस्थित जो ग्रह और नक्षत्र हैं, इन में क्या सम्बन्ध हैं? और उन से वह फल क्योंकर होगा, इस में कोई युक्ति ही देख नहीं पड़ती। इस लिये यह फलित शास्त्र युक्तिशून्य है, यह सत्य नहीं हो सकता। इस पर फलित जानने हारे यह उत्तर देते हैं कि यद्यपि

आकाश में परस्पर दूर स्थित ग्रह और नक्षत्रों के उस स्थान पर आने में और पृथिवी पर उस २ फल के होने में क्या सम्बन्ध है? और फल होने में क्या कारण है, यह हमारे ध्यान में नहीं आता। तथापि उस २ ग्रह स्थिति के अनुसार वह २ फल स्पष्ट देख पड़ता है, तब उस को झूठ नहीं कह सकते। जैसे अमावास्या, पूर्णिमा और अष्टमी इन चार तिथियों में सूर्य और चन्द्र आकाश में कुछ नियत अन्तर पर रहते हैं और जो बहुत रोगी होते हैं उन का रोग इन तिथियों में बढ़ता है और जो रोग मरणासन्न हो तो प्रायः इन के लगभग काल में मर जाता है और जो कदाचित् ये तिथि बीत जावें तो रोग शान्त होता है। यह बार २ परीक्षा करके देखा है। यों सूर्य और चन्द्र के दृष्ट अन्तर से भूमि पर रोग की वृद्धि और ह्रास होता है। इस का कारण यद्यपि ध्यान में नहीं आता, तथापि फल स्पष्ट देख पड़ता है, वह झूठ नहीं हो सकता। इसी प्रकार से और भी ग्रह आकाश में उस उस स्थान में देख पड़ने से यह २ फल होता है, यह परीक्षा करके फलग्रन्थ बनाये हैं। इन में जो फल की उपलब्धि होती है वो ही युक्ति है, दूसरी नहीं है। यों ज्योतिषी लोग स्पष्ट कहते हैं और भी कहते हैं कि जैसे हलदी पीली होती और चूना शुभ्र होता है पर जो ये दोनों पानी में इकट्ठे किये जावें तो उस मिश्र द्रव्य का रङ्ग लाल होता है। यह रङ्ग होने में क्या कारण है? यद्यपि मन में नहीं आता तो भी लाल रङ्ग को झूठ नहीं कह सकते। इसी प्रकार से ग्रहों की स्थिति के अनुसार जो फल होता है उसे झूठ नहीं कह सकते॥

इस पर फलित को न मानने वाले कहते हैं कि फलिती लोग ऐसी २ चाहे जितनी फलित की उपपत्ति दिखलावें परन्तु फलितशास्त्र किसी प्रकार से काम में लाने के योग्य नहीं है। यह शास्त्र सब परस्परविरुद्ध उक्तियों से भरा है। जैसा कि भावसाधन अनेक प्रकार का लिखा है उस से भावी घटना भिन्न २ प्रकार की ज्ञात होगी, उस में कौनसी सत्य कहनी चाहिये। इसी प्रकार से आयुर्दाय का गणित अनेक प्रकार का है तब कौन गणित पर से मनुष्य के आयुष्य का निश्चय होगा। यों ही ग्रन्थों में ग्रहों की दशा बहुत प्रकार की लिखी हैं तब यह ग्रह की दशा का फल किसी प्रकार से नहीं ठहराया जा सकता, ऐसी २ अनेक विरुद्ध उक्तियां इस में हैं तो फल का निर्णय क्योंकर होगा। और भी पृथिवी पर एक ही समय में अनेक मनुष्य जन्मते हैं पर उन सभों की वृत्ति एकसी कभी नहीं होती। और एक इस का स्पष्ट उदाहरण यह है कि जो दो युगल जन्मते हैं उन के जन्म लग्न में तो क्या पर नवांश

में भी प्रायः भेद नहीं होता। इसलिये उन की जन्मपत्री एकही सी बनते हैं पर जो उन की जीवन की वृत्ति देखो तो दोनों की भिन्न २ प्रकार की होती है सो उस जन्मकुण्डली से किसी प्रकार से ज्ञात नहीं हो सकती तब फलितशास्त्र किस काम का होगा॥

और भी फलित को न मानने वाले कहते हैं कि यह भावी फल पहिले ही कहदेना केवल व्यर्थ है, इतना ही नहीं है, यह प्रायः बाधक भी होता है। जैसा कोई मनुष्य किसी ज्योतिषी से पूछे कि जो मैं व्यापार करता हूं उस में लाभ होगा वा हानि होगी। तब जो ज्योतिषी कहदेवे कि इस में तुम को हानि होगी तो यह सुनते ही वह मनुष्य खिन्न होके उस व्यापार के काम में ढीला हो जावेगा और जो उस को उस व्यापार में लाभ भी होने वाला हो तौ भी उस की ढीलाई से हानि ही होगी। इस लिये यह भावी फल का कथन उद्योगी मनुष्य को ढीला कर देता है। इस लिये फल के न मानने वाले स्पष्ट कहते हैं कि फलितशास्त्र का भरोसा न करके केवल ईश्वर के भरोसे पर सब काम प्रयत्न से करो, इसी में सब सिद्धि और वृद्धि है॥

इस फलित विचार को श्रीयुत प० बापुदेव शास्त्री ने जो ज्योतिष शास्त्र के आचार्य थे, सन् १८८२ ई० में संस्कृत कालिज बनारस में भारतेन्दु श्रीयुत बा० हरिश्चन्द्र जी आदि महाशयों के अनुरोध से वक्तृतारूप से कहा था, जो श्रीयुत बा० हरिश्चन्द्र जी की आज्ञा से सर्वसाधारण के लाभार्थ बनारस मेडिकलहालप्रेस में छाप कर प्रकाशित किया गया॥

नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह

अन्धकार रात्रिसमय गगनमण्डल में जो असंख्य नक्षत्र दीखते हैं वे देखने में यद्यपि छोटे २ जान पड़ते हैं, परन्तु वस्तुत वे छोटे नहीं हैं। ये नक्षत्र पृथिवी से अत्यन्त दूर पर अवस्थित हैं। इस कारण पृथिवी से कई गुणा बड़े होने पर भी छोटे २ दीखते हैं। इन नक्षत्रों की दिनरात्र एकही दशा रहती है, परन्तु दिन में सूर्य की किरणों की प्रखरता से हम लोग उन को नहीं देख सकते और रात्रि में देखते हैं। ये नक्षत्र सब एक प्रकार के नहीं हैं, जिन सब नक्षत्रों की दूरी परस्पर एक ही सी रहती है एव नित्य अपने ही स्थान में दीख पड़ते हैं अर्थात् किन्हीं लोकलोकान्तर की परिक्रमा नहीं करते, केवल अपनी ही धुरी पर घूमते हैं, उन्ही को नक्षत्र कहते हैं। ये नक्षत्र दो प्रकार के हैं। एक अचल नक्षत्र, दूसरा चल नक्षत्र। अचल नक्षत्रों की संख्या

अद्यावधि आधुनिक विद्वानों से ५०००,१०००० के लगभग देखे हैं । अचल नक्षत्र का वर्णन ऊपर हो चुका है ॥

चल नक्षत्र वा ग्रह

बहुत से नक्षत्र कभी गगनमण्डल के एक स्थान में कभी अन्य स्थान में रवस्थिति करते हैं। एवं कभी अचल अवस्था में रहते हैं, इन्हीं सब नक्षत्रों से धिक प्रकाश होता है । इस लिये इन को ग्रह कहते हैं । ये ग्रह सब सूर्य से प्रकाशित होते हैं अर्थात् इन में स्वकीय तेज नहीं । परन्तु पूर्वोक्त अचल नक्षत्र स्वयं प्रकाशमान हैं । उन में सूर्य का प्रकाश नहीं है ॥

आकाश में जो सब नक्षत्र दीखते हैं उन में से जो हम लोगों को दिन में सबसे अतिप्रभायुक्त दीखता है वही सूर्य है । पूर्वोक्त नियमानुसार सूर्य ग्रह नहीं है, क्योंकि यह किसी की परिक्रमा न करके अपनी ही धुरी पर घूमता है और स्वयं प्रकाशित होता है । भारतवर्षीय बहुतसे नवीन ग्रन्थों में सूर्य को ग्रह माना है, परन्तु वेदादि सच्छास्त्रों में इस को ग्रहपति माना है अर्थात् ग्रहों के केन्द्र स्वरूप। वेद का प्रमाण आगे ग्रहप्रकरण में दिया जायगा । अमरकोष वाले ने सूर्य के नामों में एक नाम "विभावसु" "ग्रहपतिः" लिखा है । इदानीं विद्वानों ने दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा अनेक दूरस्थित नक्षत्रों को देख कर निश्चय किया है कि वे एक २ सूर्य हैं अर्थात् हमारे सूर्य की नाईं ग्रह, उपग्रह आदि के मध्य स्थित हो सब को प्रकाशित करते हुवे अपनी धुरी पर घूमते हैं । इन के तीन भेद हैं । एक सामयिक नक्षत्र, दूसरा अन्तर्हित एवं तीसरा यमल वा मिथुनमाला नक्षत्र हैं ॥

सामयिक नक्षत्र

जो सब नक्षत्र किसी २ समय अतिउज्ज्वल, किसी समय अत्यन्त निष्प्रभ एवं कभी २ अदृश्य होते हैं उन को सामयिक वा नष्टतारा कहते हैं ॥

अन्तर्हित वा रूपविकारी नक्षत्र

बहुतसे नक्षत्र पहिले अत्यन्त दीप्तिमान् होकर प्रकाशित होते हैं और कुछ दिन पीछे उन की ज्योतिः क्रमशः न्यून होने लगती है एवं कुछ दिनों पीछे आकाश में अदृश्य होजाते हैं। ऐसे नक्षत्रों को अन्तर्हित नक्षत्र कहते हैं। बहुत दिनों के पीछे जो दृश्य होते हैं इस से अनुमान होता है कि वे अपनी गति से अपनी कक्षा में बहुत दूर तक भ्रमण करते हैं इसी कारण कुछ काल तक अदृश्य होजाते हैं ॥

वाले हैं, परन्तु उनके प्रकाश का क्षत्र (इन्द्र)=(सूर्य) ने और लेलिया अर्थात् उन नक्षत्रों की दूरता प्रयुक्त और सूर्य के प्रखर किरणों से हम लोग उन्हें एक २ तारे की नाईं (छोटे २) देखते हैं। इस कारण न इन्हें "नक्षत्र" (न=नहीं, क्षत्र=सूर्य की नाईं प्रकाश) कहते हैं। आशय यह है कि प्राचीन समय में जिन नक्षत्रों का प्रकाश हम लोगों के निकट दूरता के कारण अत्यन्त न्यून पहुंचता एवं बहुत थोड़ी गति वाले हैं उन्हें नक्षत्र कहते थे और नक्षत्रों में जो देखने में कुछ बड़े जानपड़ते हैं उन्हें कहीं २ "ऋक्ष" कहते थे॥

सलिलं वा इदमन्तरासीत् ॥ यदतरन् ॥ तत्तारकाणां तारकत्वम् ॥ यो वा इह यजते ॥ अमुं सलोकं नक्षत्रे ॥ तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वम् ॥ देवगृहा वै नक्षत्राणि ॥ यएवं वेद॥ गृह्येव भवति यानि वाइमानि पृथिव्याश्चित्राणि ॥ तानि नक्षत्राणि ॥ तस्मादश्लीलनामंश्चित्रे ॥ नावस्येन्न यजेत ॥ तै० ब्रा० १ । ५ । २ ॥

अर्थात्–वर्त्तमान सृष्टि की आदि में जल था। उस से जो सृष्टि होती हुई–खस्थ पदार्थों में सब से निकट, एवं अधिक गति वाले हैं, वे ही तारे हैं, एवं जिस प्रकार यज्ञ करने वाले ऊंची गति को पाते हैं। इसी प्रकार जो अपेक्षाकृत ऊपर के "नक्षत्र" हैं उन्हें "नक्षत्र" कहते हैं। सौर जगत् में एक २ नक्षत्र मानो ग्रहादिक अन्यान्य विशेष गतिमान् खस्थ पदार्थों के घर हैं। जिस प्रकार इस पृथिवी पर चित्रविचित्र घर हैं, इसी प्रकार आकाश में भी नक्षत्र पुञ्ज की आकृति भिन्न २ प्रकार की है॥

प्रत्येक नक्षत्रादि एक २ लोक विशेष है। इस का प्रमाण वेदों में है:–

एतस्माद्वाओदनात्त्रयस्त्रिंशतं लोकान्निरमिमीत प्रजापतिः॥
(अथर्व ११ । २ । ४ । ५२)
तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥ ५३ ॥

अर्थात्–ब्रह्मा ने ३३ लोक। २७ अश्विनी से रेवती पर्यन्त और ६ कृत्ति नक्षत्र की योगतारा नक्षत्र ये ३३ नक्षत्र) रचे हैं। जिन के जानने के लिये यज्ञ का विधान है अर्थात् यज्ञ करने से सात्विक बुद्धि होने पर शीघ्र विद्याद्वारा इन लोकों का ज्ञान हो जावे। यह उपलक्षण मात्र कहा गया। इसी प्रकार जितने आकाशस्थ नक्षत्रादिक हैं वे सब एक २ लोकविशेष हैं॥

सूर्य

सौर जगत् में सूर्य ही सब ज्योतिष्क पदार्थों में बृहत् एवं उत्ताप और आलोक का आकर है। सूर्य २५ दिन ८ होरा २२॥ फल में अपनी कक्षा पर पश्चिम से पूर्व को एक बार घूम आता है। सूर्य सौर जगत् में केन्द्र स्वरूप होने से ग्रहों में इस की गणना नहीं, वेदादि सच्छास्त्रों में भी इस को ग्रह नहीं माना है। एव सूर्य की बीच में और उस की चारों ओर अन्यान्य ग्रहों की संख्या लिखी है। अब हम उन प्रमाणों का उल्लेख करते हैं, जिन से पूरा २ निश्चय हो जायगा कि भारतवर्षीय लोग अनादि काल से सूर्यादि ज्योतिष्क पदार्थों की वास्तविक गति विधि आदि जानते थे॥

उद्यन्नद्यमित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय॥ ऋग्वेद१।५०।११॥

अर्थात्-हे ईश्वर! जिस प्रकार सूर्य का उदय होने से अन्धकार दूर होता है, इसी प्रकार मेरे हृदय के अज्ञानान्धकाररूपी रोग का नाश करो॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वोवहति सप्तनामा।त्रिनाभि
चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधितस्थुः॥ ऋ०१।१६४।२॥
सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य।
शोचिष्केशं विचक्षण॥ सामवेद प्र०६। अ०प्र०३।द०१४।१४

अर्थात् हे सूर्य! तुम्हारे मण्डल में सात प्रकार की किरणें हैं॥

सप्तयुञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वोवहति सप्तनामा।
त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वं यत्रेमाभुवनाधितस्थुः॥ अ०९।५।९।२
अवदिवस्तारयन्ति सप्त सूर्यस्य रश्मयः॥ अ०१७।१०।१७।१॥

अर्थात्-सूर्य की सातों किरणें दिन में प्रकाशित होती हैं। पुराणों में सूर्य के ७ घोड़े अरुण नामक सारथी और रथ आदि की जो कथा लिखी है, यह वस्तुतः कुछ नहीं है। सूर्य के न कोई रथ, न घोड़े, न सारथी आदि हैं। यह आलङ्कारिक वर्णन से कहा गया है कि एक ही किरण (रश्मि) सात नामों (सात प्रकार के रङ्ग) से-सूर्यमण्डल (चक्र) में प्राप्त होता है। इस

अक्षय और प्रतिबन्ध चक्र में तीन नाभि हैं (उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत्) इसी सूर्यमण्डल (सौरजगत्) में सब लोक ठहर रहे हैं और (अनर्वे) जिस सूर्य के रथ में घोड़ा नहीं है। हमारे पौराणिक पण्डित लोग सूर्य को ग्रहों में गिनते हैं, परन्तु यह उन की भूल है क्योंकि प्राचीन प्रमाणों के अतिरिक्त अमरकोष में भी सूर्य को "ग्रहपति" लिखा है, ग्रह नहीं है ॥

विभावसुर्ग्रहपतिस्त्विषांपतिरहर्पतिः ॥ ३० ॥

(अमरकोष काण्ड १ कालवर्ग)

वायु के कारण सूर्य

सवितारं यजति यत्सवितारं यजति तस्मादुत्तरतः पश्चादयं भूयिष्ठं पवमानः पवते सवितृप्रसूतो ह्येष एतत्पवते । ऐ० ब्रा० २ । ७ ॥

यह वायु सूर्य की सेवा करता है। जिस लिये सूर्य की सेवा करता है, इस कारण सूर्य की उत्तर पश्चिम आदि भाग से वारंवार वायु चलता है ॥

आशय यह है कि सूर्य से उत्पन्न होकर वायु बहता है ॥

ऋतु के कारण सूर्य

पूर्वानुप्रदिशं पार्थिवानामृतून् प्रशासद्विदधावनुष्ठु ॥

(ऋ० सं० १ । ९५ । ३)

हे सूर्य ! तुम्हारे द्वारा पृथिवी पर पूर्वादि दिशा की व्यवस्था होती है और ऋतुओं को उत्पन्न करते हो ॥

सौरजगत् में एक ही सूर्य है

एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः ।
एकैवोषा सर्वमिदं विभाति । ऋ० ८ । ५८ । २ ॥

एक ही अग्नि बहुत प्रकार से जलाया जाता है और एक ही सूर्य सब लोकों को प्रकाश करने में समर्थ है और एक ही उषा (सूर्योदय से पूर्व लालिमा से भी पूर्वकाल) सम्पूर्ण जगत् को सुशोभित करती है ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।

(ऋ० सं० १ । १५२ । ५)

घोड़ारहित ही सूर्य उत्पन्न हुवा परन्तु विना घोड़े के बड़ा तेज एवं ऊपर को अपनी परिधि में चलता है॥*

अंग्रेजों ने जो दूरवीक्षण यन्त्रद्वारा सूर्यमण्डल में कलङ्क देखा है और उत्तर दक्षिण किञ्चित् दबा हुवा निश्चय किया है यह विषय कई सहस्र वर्ष पूर्व ही से हमारे शास्त्रों में लिखा हैः–

ह्रस्वोरूक्षोऽप्रशस्तश्च परिवेषस्तु लोहितः ।
आदित्ये विमले नीलं लक्ष्म लक्ष्मण दृश्यते ॥

(वाल्मीकीय रा० यु० सर्ग २४)

श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं कि हे लक्ष्मण! सूर्यमण्डल सन्ध्या के कारण लाल है, एवं इस का अङ्ग कुछ रूक्ष (दबा) है और नील रङ्ग का कलङ्क (चिन्ह) दीखता है॥

शुक्र

बुध के अनन्तर शुक्र की संख्या है। यह ग्रह अन्यान्य ग्रहों की अपेक्षा अतिशय सुन्दर और बड़ा है। सूर्य के उदय और अस्तमन से पहिले अर्थात् सन्ध्याकाल में एवं अरुणोदय के पहिले प्रातःकाल में यह ग्रह दृश्य होता है, इसी कारण सर्वसाधारण इस को प्रभाततारा या सन्ध्यातारा कहते हैं॥

बुध और शुक्र को जो हम लोग सम्पूर्ण रूप से नहीं देख सकते, इस का कारण यह है कि ये दोनों ग्रह पृथिवी के गमनीय पथ और सूर्य के मध्यस्थान हो कर गमन करते हैं। चन्द्रमा की नाईं शुक्र की कला की भी वृद्धि और ह्रास होते हैं। इसी कारण कभी २ यह इतना सूक्ष्म हो जाता है, जो हम लोगों को ठीक २ दृष्टिगोचर नहीं होता। इसी कारण भारतवर्ष में शुक्र को "काणा" वा दैत्याचार्य शुक्र एकाक्ष है, ऐसा कहते हैं। यह तो *इदानीन्तन विद्वानों ने अनुभव किया है। वेद में भी इसी प्रकार एवं इस से* विशेष लिखा है। अंग्रेज़ी में शुक्र का नाम वीनस (Venus) है। इस से अनुमान होता है कि हमारे वेदों में जो "वेनस" शुक्र का नाम है, उसी को लेटीन, ग्रीक आदि भाषा में भी लिखा है। वेदों के प्रमाण दिये जाते हैंः–

* जिन्हीं लोगों की जो यह धारणा है कि सूर्य पृथिवी की परिक्रमा करता है यह एकमात्र अमूलक है क्योंकि वेदादि सत्यशास्त्रों में इस का प्रमाण नहीं पाया जाता है। देखो पृथिवीभ्रमण विचार॥

अयं वेनश्चोदयति पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायूरजसो विमाने।
इममपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभीरिहन्ति॥
(ऋ० सं० १०। १२३। १)

अर्थ–यह वेनस (शुक्र) और मति (बुध) सूर्य के पास शिशु (बालक) की नाईं प्रतिदिन बढते हैं, अर्थात् चन्द्रमा की कला की हानि वृद्धि की सी इन की कला भी घटती बढती हैं, परन्तु विप्र (बृहस्पति) ग्रह के लिये यह नियम नहीं है॥

ककुभं रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः। सोमः सोमस्य पुरोगाः॥ यजु० अ० ८। ४९॥

अर्थ–इस पूर्ण कलायुक्त शुक्र का सुन्दर रूप देखने में सुहावना है और इस की सत्या चन्द्रमा के पहिले एवं इस के आगे (सामने) चन्द्रमा है॥

अयं वेनः। चित्रं देवानाम्। यजु० अ० ३३। ३३

अर्थ–यह वेनस् (शुक्र) सत्य दिव्य ग्रहों में सब से सुन्दर है॥

चक्षुषी ह वा अस्य शुक्रामन्थिनौ। तद्वा एष एव शुक्रो य एष तपति तद्यदेष एतत्तपति तेनैष शुक्रश्चन्द्रमा एव मन्थी॥१॥ इमामुहैके शुक्रस्य पुरोरुचं कुर्वन्ति। अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमान इति तदेतस्य रूपं कुर्मो य एष तपतीति यदाह ज्योतिर्जरायुरिति॥ ८॥ शत० ब्रा० ४। २। १॥

आशय–सूर्य के दो नेत्रस्वरूप बुध और शुक्र हैं, या यह जो शुक्र प्रकाशित होता है, यह जो शुक्र तपता है, चन्द्रमा है (चन्द्र तुल्य है) इस को कोई चन्द्रमा का पुरोवर्त्ती कहते हैं। (चन्द्रमा के पहिले शुक्र की सत्या है) इस लिये शुक्र को प्रकाश का गर्भ (जरायु) कहते हैं॥

वस्व्यसि रुद्रास्यदितिरस्यादित्यासि शुक्रासि बृहस्पतिस्त्वा सुम्ने रखावतु। तै० सं० १। २। ५॥

आशय–तू वसी है, रुद्रा है, अदिति है, शुक्रा है, चन्द्रा है, और बृहस्पति ग्रह के तुल्य तुम्हारे सुखप्रद प्रदेश हैं (श्वेत हैं)॥

इस मन्त्र में जो शुक्र के विशेषण स्त्रीलिङ्ग शब्दों में हैं। इस का कारण यह है कि शुक्र की सुन्दरता के वर्णन में है। इस लिये पुल्लिङ्ग वाचकशब्द नहीं हैं एवं बुधग्रह के वर्णन में शुक्रका एकाक्ष होना आदि लिखा गया है वहीं देखना चाहिये। प्रायः चारों वेदों में बृहस्पति और शुक्र को "अश्विनी" नासत्या, दस्रा, स्वैद्या के बहुत से मन्त्र हैं उस का कारण यह है कि प्रातः-काल अर्थात् आधीरात के पीछे और सूर्य के अरुणोदय से पूर्व एवं सन्ध्या-काल में सूर्य के पीछे ईश्वरोपासना का समय है जिस का नाम "उष:काल" और ब्राह्ममुहूर्त है। इस समय हमारे ऋषिगण प्रायः सांसारिक कार्यों को छोड़कर नियमपूर्वक स्नानादि नित्यक्रिया कर ईश्वरोपासना, होम, वेदपाठ आदि ईश्वरोपासनासम्बन्धि कार्य में व्यस्त रहते थे। सो ये दोनों ग्रह शुक्र और बृहस्पति जिन को हमारे देश के आबाल वृद्ध स्त्री पुरुष जानते हैं "शुक्र तारा" एवं "बृहस्पति तारा" प्रायः प्रत्येक वर्ष के आधे महीनों में उदित होते हैं। इसी कारण उषःकाल एवं सन्ध्याकाल के वर्णन में मनुष्यों को ईश्वरोपासना विशेषतः करनी चाहिये। शुक्र और बृहस्पति तारा देखने से नियत काल का निश्चय होता है॥

बुध

यह ग्रह अन्यान्य ग्रहों की अपेक्षा अत्यन्त छोटा एवं सूर्य के अत्यन्त निकटवर्ती है। इस का वर्ण शुभ्र(श्वेत) सूर्य के उदय अस्त के किञ्चित् पहिले दृष्टिगोचर होता है। बुध ग्रह ८७ दिन २३ होरा १५ मिनिट ४६ सेकेण्ड में सूर्य की एक बार प्रदक्षिणा कर लेता है और अपनी कक्षा पर २४ होरा ५ मिनट में एक बार भ्रमण करता है। इस ग्रह की संख्या सूर्य के पश्चात् है (पाश्चात्य मतानुसार)। इसी प्रकार वेद में भी इस की संख्या लिखी है प्रायः चारों वेदों में उष:काल (सूर्योदय के लालिमा से पूर्व का काल) के ईश्वरोपासना विषयक मन्त्रों में आलङ्कारिक वर्णन द्वारा सूर्य के दो नेत्र स्वरूप बुध और शुक्र को माना है। प्रायः देखने में ये दोनों ग्रह इसी प्रकार जान पड़ते हैं। दोनों ओर बुध और शुक्र और बीच में सूर्य रहता है॥

सूर्य्यस्य चक्षूरजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा॥१४॥स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः। कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत्॥ अथर्व सं० ९।५।९।१५

आशयः-शुक्र ग्रह का नाम अंग्रेजी में वीनस (Venus) है जिस का अर्थ अत्यन्त सुन्दर है (Goddess of buty) जिसे संस्कृत में "श्री" कहते हैं। एवं शुक्र ग्रह को काणा वा एकाक्ष भी संस्कृत के ग्रन्थों में लिखा है यह इस कारण से कि दूरबीन यन्त्र द्वारा देखने से कभी २ शुक्र ग्रह इतना सूक्ष्म प्रतीत होता है जो उस का वास्तविक रूप नहीं दीखता (चन्द्रमा की नाईं इस की कला बढ़ती घटती है) इस से इस को "काणा" भी कहते हैं। इस का मूल ऊपर के मन्त्र में पाया जाता है॥

मन्त्रार्थः—सूर्य के दो नेत्र स्वरूप बुध और शुक्र ग्रह हैं (अत्यन्त निकट हैं) जिन में अनेक लोक बसते हैं। इन दो में एक तो पुरुष (बुध) और एक स्त्री (शुक्र) एव नेत्र वाला (बुध) और एक नेत्रहीन (शुक्र) है। इन को जो विद्वान् जाने वह विद्वानों में श्रेष्ठ है॥

इसी प्रकार बुध के नाम सौम्य, एवं रौहिणेय क्यों हैं इस का कारण नीचे व्यक्त किया जाता है। कभी २ बुध और शुक्र को चन्द्रमा पिधान (ढक लेता है) करलेता है और प्रायः तारा और ग्रहों का भी पिधान होता है। अनेक दिन हुए कि रोहिणी और चन्द्रमा के पिधान में बुध ग्रह आगया था पुनः बुध चन्द्रबिम्ब से बाहर निकल गया था इसी कारण रोहिणी को स्त्री नाम कर और चन्द्रमा को पुरुष एव रूपकालङ्कार से इन दोनों के समागम से बुध उत्पन्न होकर रौहिणेय और सौम्य कहलाया। इस को लेकर पुराणों में एक और कथा है कि चन्द्रमा ने गुरुपत्नी तारा को हरलिया था उसी से बुध का जन्म हुआ इत्यादि, परन्तु वह भी कल्पनामात्र है। वास्तविक पिधान ही होता और ग्रहों का भी इसी प्रकार पिधान होता है परन्तु औरों की कथा इस प्रकार प्रसिद्ध नहीं हुई। मङ्गल और शुक्र का क्रम से आषाढाभू और मघाभू नाम पिधान ही के कारण प्रसिद्ध हैं॥

चन्द्रमा

यद्यपि चन्द्रमा ग्रहों में परिगणित नहीं परन्तु वेदों में इस की संख्या का क्रम जिस प्रकार लिखा है उसी प्रकार शुक्र की संख्या के अनन्तर पृथिवी के उपग्रह रूप से इस की संख्या है। पृथिवी जिस प्रकार सूर्य का परिभ्रमण करती है उसी प्रकार चन्द्रमा भी पृथिवी की प्रदक्षिणा करता है २७ दिन ७ होरा ४३ मिनट ११.५ सेकेण्ड में चन्द्रमा पृथिवी का एक बार परिभ्रमण कर लेता है। चन्द्रमा का रङ्ग कृष्ण, लाल, गौर और श्वेत है। चन्द्रमा स्वयं

तेजस्वी नहीं, परन्तु पाश्चात्य पण्डितों ने यह भी निश्चय किया है कि चन्द्रमा एकमात्र निष्प्रभ नहीं है किन्तु उस में मन्दप्रभा है जो सूर्य की किरणों से विशेष रूप से प्रकाशित होता है । लार्डनर साहब कहते हैं कि बहुत परीक्षा द्वारा जाना गया है कि चन्द्रमा की किरणों में ताप नहीं और हम्बोल्ट साहब इस के विरुद्ध कहते हैं कि चन्द्रमा की किरणों में ताप है । चन्द्रमा में पर्वत, समुद्र, भूमि आदि हैं एवं कोई भाग ऊंचा कोई नीचा है । अब हम क्रम से वेदादि सच्छास्त्रों द्वारा उपरोक्त विषय को सिद्ध करते हैं:-

ककुभं रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य
पुरोगाः। सोमः सोमस्य पुरोगाः॥यजु०अ० ८। मं० ४९

इस का अर्थ शुक्र के वर्णन में किया गया है । परन्तु यहां चन्द्रमा की संस्था दिखलाने को लिखा गया है । शुक्र ग्रह के सामने (आगे) चन्द्रमा और चन्द्रमा के आगे शुक्र । अब चन्द्रमा में जो श्याम रङ्ग एवं ऊंचा नीचा आदि है, उस का प्रमाणः-

यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सुभूमौ यानि
नगेषु दिक्षु। प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति॥अथर्व०१९।८।१

अर्थ-जो नक्षत्र द्युलोक में (जहां सूर्य की संस्था है) और जो अन्तरिक्ष में (जहां चन्द्रलोक है) जहां से चन्द्रमोऽधिष्ठित पहाड़, जल, पृथिवी और वृक्षादि हैं उन२ प्रदेश में जो नक्षत्र हैं । हे ईश्वर ! सब से हम को सुख पहुंचे ॥ इस से सिद्ध हुआ कि चन्द्रमा में पहाड़ भूमि आदि सब हैं और इसी कारण चन्द्रमा में जो भाग नीचा है वहां सूर्य का प्रकाश ठीक नहीं पहुंचता जिस से श्याम रङ्ग प्रतीत होता है ॥

चन्द्रमा अप्स्वऽन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ॥
सामवेद प्र० ५। अर्ध प्र० १। द० ४। मं० ९।

जलात्मक चन्द्रमा (कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष होने से पक्षी) पक्षिस्वरूप आकाश में चल रहा है । चन्द्रमा में अपना भी प्रकाश है, जो लिखा है उस का भी प्रमाण हमारे वेदों में है:-

उदेनं भगो अग्रभीदुदेनं सोमो अंशुमान् ॥
अथर्व० ८। १। २

आर्यभट्ट ने अपने आर्यसिद्धान्त के गोलपाद में लिखा है कि-

चन्द्रो जलमर्कोऽग्निः मृद्भूमिश्छायापि तमस्तद्धि ॥
आर्या ३७ ।

अर्थात्–चन्द्रमा जल स्वरूप, सूर्य अग्निमय, एवं पृथिवी मृण्मय जिस की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है तो ग्रहण होता है ॥

कालीदास जो श्री महाराजे विक्रम के नवरत्नों में से थे, अपने शकुन्तला ग्रन्थ में लिखते हैं किः–

मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति ।
किमिव हिमधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥
शकुन्तला १–१ । १८ ॥

हमारे शास्त्रों में जो चन्द्रमा के अमृत की प्रसिद्धि है वह वास्तविक सत्य है क्योंकि चन्द्रमा में ईश्वर ने कुछ ऐसा विलक्षण गुण दिया है जिस की किरणों से हमारे वैद्यकशास्त्रोक्त औषधियां सब उत्पन्न होकर नाना प्रकार के गुण देती हैं । नाना प्रकार बूटियां पहाड़ों में होती हैं जिन का वर्णन चरकसुश्रुत एवं अन्यान्य वैद्यकशास्त्रों में है । इन्हीं ओषधियों के मूल कारण चन्द्रमा के होने से इस का नाम "ओषधीश" है और ओषधियों के विलक्षण गुणों के कारण उस के किरण का नाम अमृत हुआ है ॥

सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः । तै० सं० ३ । ४ । ७ । १

अर्थात्–चन्द्रमा सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है ॥

चन्द्रमा का आधा भाग हम लोग सदैव देखते हैं परन्तु इस का शेष दूसरा आधा नहीं दृश्य होता। इस को हमारे पूर्वज ऋषियों ने पहिले से लिख रक्खा है।–

यथा हिमवतः पार्श्वपृष्ठं चन्द्रमसो यथा ।
न दृष्टपूर्वं मनुजैः० ॥ महा० शान्ति पर्व अ० १०० ।

मङ्गल

बुध के अनन्तर पृथिवी की संख्या, तदनन्तर मङ्गल की संख्या है । यह गाढ़ अत्यन्तगाढ़ वायु में अनवरत अवस्थित है इसी कारण अन्यान्य ग्रहों की अपेक्षा इस का रङ्ग अतिशय रक्त है। मङ्गल का गमनीय पथ पृथिवी की कक्षा के बहिर्देश में है। इस ग्रह की दूरी सूर्य से १४५०००००० माईल है एवं १ वर्ष ३११ दिन १७ होरा ३० मिनट ४१ सेकेण्ड में सूर्य की परिक्रमा एकवार कर लेता है ॥

हमारे भारतवर्षीय संस्कृत ग्रन्थों में मङ्गल ग्रह के नाम 'लोहिताङ्ग' 'अङ्गारक' लाल होने के कारण रक्खे गये हैं। जिस लालवर्ण को जानकर फलित ज्योतिषियों ने इस ग्रह की क्रूर ग्रहों में गणना की है। कभी २ पृथिवी के एक ओर सूर्य, दूसरी ओर मङ्गल आजाता है। एवं इस की कक्षा पृथिवीकक्षा के अनन्तर है। मङ्गल और पृथिवी के अनेक अंशों में सादृश्य है। इन कारणों से हमारे प्राचीन ग्रन्थों में इस के नाम 'महीसुत' 'कुज' 'भौम' हैं।

वेद में इस ग्रह का नाम और रङ्ग भी लिखा है:—

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषां हेड ईमहे ॥ य०अ०१६मं०६

आशयः—यह जो तांबे के रङ्ग की नाईं अथवा पिङ्गलवर्ण सुमङ्गल वा अतिसुन्दर है, जिस के चारों ओर सुन्दर प्रकाश है ॥

बृहस्पति

ग्रहों में बृहस्पति सब से बड़ा है। इस का व्यासपरिमाण ८८१०३ मैल और सूर्य से ८८५५८६००० मैल दूरावस्थित है। एवं इस की कक्षा मङ्गल के पश्चात् है। सूक्ष्मगणना द्वारा जाना गया है कि यह ग्रह ११ वर्ष ३१४ दिन २० होरा २ मिनट ७ सेकिण्ड में एक बार सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण कर आता है। जो स्थूल गणना से हमारे ज्योतिषग्रन्थों में १२ वर्ष लिखे हैं और इस ग्रह के चार उपग्रह हैं, इस ग्रह का नाम संस्कृत में गुरु, बृहस्पति, देवपुरोहित आङ्गिरस आदि हैं। अन्यान्य ग्रहों से इस में गुरुत्व अधिक होने से गुरु और बहिर्वर्ती ग्रहों में शुक्र की नाईं प्रभायुक्त होने से "पुरोहित" (पुरः=आगे+हित=रक्खा है) एवं तिष्य नक्षत्र से पिधान होने से "अङ्गिरस" "तिष्य सम्भव" नाम हैं। बृहस्पति की उत्पत्ति तिष्यनामक नक्षत्र से मानी जाती है उसका कारण यह है कि इस ग्रह का परमशर १ अंश ३० कला होता है, इस से २७ नक्षत्रों में से जिन के साथ निकटयुति होनी सम्भव है वह केवल पुष्य, मघा, विशाखा, अनुराधा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र हैं। इस कारण गुरु और तिष्य नक्षत्र की युति होने पर, निकटता प्रयुक्त दोनों नक्षत्र और एकसा प्रतीत होने से युतिकाल के पीछे जब गुरु बाहर होगया हो तो तिष्य नक्षत्र से इस की उत्पत्ति मानी गई (रूपकालङ्कार से) प्रमाणः—

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः तिष्यं नक्षत्रमभिसंबभूव ॥ १॥
(तै० ब्रा० ३ । १ । १)

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ॥२॥
(ऋ० ४ । ५० । ४)

बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन्॥३॥
(अथर्व० २० । ८८ । ४)

ईर्मान्यद्वपुषेवपुश्चक्रं...पर्यन्या नाहुषा युगा मन्हा रजांसि दीयथः ॥ ४ ॥ (ऋ० स० ५ । ७३ । ३)

बृहस्पति एकवार सूर्य के परिभ्रमण में मनुष्य के १२ सौरवर्ष होते हैं अर्थात् १२ वर्ष में अपना चक्र पूरा करता है ॥ ४ ॥

बृहस्पति की कक्षा दिव्य अन्यान्य शुक्रादि ग्रहों से ऊपर को है—

बृहस्पतिर्मा विश्वैर्देवैरूर्ध्वायादिशः पातु ॥ अथ० २।१७।१०

जिस समय आधीरात का आकाश में बृहस्पति उदित होता है या सूर्योदय समय जब यह ग्रह अस्तमित होता है एवं सूर्यास्तकाल में जब इस का उदय होता है। उस समय यह शुक्र की नाईं पृथिवी के अत्यन्त निकटवर्त्ती होकर हम लोगों को शुक्र ग्रह की नाईं अति उज्ज्वल भान होता है। इसी कारण वेदों में "अश्विनी" नाम से प्रात कालीन एवं सन्ध्याकालीन कर्त्तव्य विधायक मन्त्रों में इन का वर्णन बहुत स्थलों में आया है ॥

और भी इस ग्रह के विषय में वेदों के प्रमाण—

आवेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सा-
दयध्वम् । सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्य
वर्णमरुषं सपेम ॥ ऋग्वेद सं० ५ । ४३ । १२ ॥

इस मन्त्र से बृहस्पति का बड़ा होना, नीला, लाल, रमणीय, श्वेतवर्ण अर्थात् नाना रङ्ग का होना एवं देदीप्यमान होना सिद्ध होता है ॥

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धिया जुरोमिथुनासः
सचन्त ॥ ऋग्वेद सं० ५ । ४३ । १५ ॥

जिस प्रकार यज्ञवेदी के दो ओर दो २ स्त्री पुरुष अर्थात् ४ मनुष्य मिल के यज्ञ करते हैं, इस प्रकार हे बृहस्पते ! चार पारिपार्श्विक ग्रहों से सुशोभित हो रहे हो ॥

बृहस्पति का नाम आङ्गिरस क्यो है सो इस मन्त्र से सिद्ध होता है.-

यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥ ऋग्वेद सं० १। १२७ । २ ॥

इस मन्त्र के भाष्य में सायण ने निरुक्त और ऐ० ब्रा० का प्रमाण दिया है-

अङ्गाराणां मध्ये ज्येष्ठं ज्वालायुक्तत्वात् ।

अङ्गिरा अङ्गारा इति यास्कः ॥ नि० ३ । १७ ॥

ये अङ्गारा आसंस्तेङ्गिरसोभवन् । ऐ० ब्रा ३ । ३४ ।

अर्थात्-बृहस्पति ग्रह सब ग्रहों से बड़ा होने और प्रकाशयुक्त होने से आङ्गिरस नामक है ॥

शनैश्चर

इस ग्रह की सत्ता-बृहस्पति के अनन्तर है. यह सूर्य से अत्यन्त दूर एवं बड़ा है। प्राय. ९०८९२३०२० माईल दूरी पर अवस्थित है। यह २९ वत्सर १६६ दिन २३ होरा १६ मिनट ३२ सेकेण्ड में सूर्य की एक बार परिक्रमा कर लेता है। अत्यन्त दूर होने के कारण इस की किरणें पृथिवी पर अतिम्लान भाव से प्रकाशित होती हैं। इसी से इस की आकृति स्थूलदृष्टि से नक्षत्रों की नाईं छोटी जान पड़ती है परन्तु वास्तविक दूरवीनद्वारा जाना गया है कि इस में इतनी उष्णता है जो ग्रहों में इस की उष्णता की उपमा नहीं हो सकती प्रत्युत द्वितीय सूर्य ही है अर्थात् सूर्य ही से इस की उपमा हो सकती है। सूर्यसदृश उष्ण होने से इस का नाम " सूर्य का पुत्र " संस्कृत ग्रन्थों में लिखा है एवं अत्यन्त मन्द गति होने से " शनैश्चर " (शनैः=धीरे २ । चर=चलने वाला इस की आकृति विलक्षण भाव से दृष्टिगोचर हुई है अर्थात् तीन चक्र वा अङ्गुरीय के बीच में स्थित है। इन चक्र में दो उज्ज्वल और एक दीप्तिहीन। एवं चक्रत्रय शनि से पृथक् अवस्थित और परस्पर सलग्न नहीं हैं। इन तीन अङ्गुरीय के बाहर आठ उपग्रह हैं जो इस को नित्य परिभ्रमण करते हैं। जैसे हमारी पृथिवी को रात्रि में चन्द्रमा प्रकाशित करता है इसी प्रकार शनि आठ चन्द्रद्वारा रात्रि में आलोकित होता है। शनैश्चर

का रङ्ग नीला,पीला,पाण्डुर,तामे का रङ्ग अनेक प्रकार के रङ्ग प्रतीत होते हैं। अब हम ठीक इसी प्रकार लक्षणयुक्त पर्यटन का प्रमाण वेद में दिखाते हैं:-

आधर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातु शृङ्गो वृषभो वयोधाः॥
(ऋ० सं० ५ । ४३ । १३)

अर्थात्-यह सूर्य की नाईं प्रकाशमान बहुत ऊपर तीन रङ्ग के बड़े २ चिन्हों से वर्णित और अत्यन्त ज्वालायुक्त है॥

सज्जर्भुराणस्तरुभिः सुते गृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभिजीवोअध्वरे॥
(ऋ० सं० ५ । ४४ । ५)

अर्थात्-हे सन्दगामिन्! अनेक छोटे२ ग्रहों (उपग्रहों) के बीच अवस्थित अर्थात् शनिग्रह! तुम छोटे काय वाले ग्रहों के बीच में कैसे शोभते हो,जिस प्रकार ताराओं में चन्द्रमा। इस से शनि के उपग्रह सिद्ध होते हैं॥

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते॥
(ऋ० ५ । ४४ । ८)

हे वीरे! जिस प्रकार सप्तर्षि तारे हैं, ऐसे तुम जान पड़ते हो, परन्तु बड़े तेजस्वी और तुम्हारे अधिकांश गुण सूर्य की नाईं हैं अर्थात् प्रकाश उष्णता, गति और रोहिणी नक्षत्र का शकटभेद (देखो सूर्यसिद्धान्त अ० ८) प्रायः शनि, मङ्गल और चन्द्रमा करते हैं अर्थात् रोहिणी नक्षत्र का आकार गाड़ी की नाईं है,जो इन शनि आदि के भ्रमण मार्ग में पड़ने से हम लोगों को मेघ की नाईं आच्छादित हो जाने से छिन्न भिन्न दृष्टिगोचर होता है। इस शकटभेद को फलित ज्योतिषी लोग अशुभ मानते हैं। यह शकटभेद बहुत कम होता है। गणितद्वारा जाना गया है कि आज से ५००० वर्ष पूर्व रोहिणी का शकटभेद शनि ने किया था॥

वस्तुतः इस से कुछ शुभाशुभ फल हम लोगों को नहीं होता, न किसी सद्ग्रन्थ में इस का उल्लेख है, परन्तु पौराणिक भाइयों को फिर सीधा मिठा धर के पद्मपुराणान्तर्गत काशीखण्ड में लिख मारा कि श्री महाराज दशरथ जी के समय में शनि ने रोहिणी का शकटभेद किया था, जिस से उन के राज्य में १२ वर्ष तक अनावृष्टि हुई तो श्री दशरथ जी ने आकाशमण्डल में जाकर शनि से युद्ध किया तो शनि ने पराजित होकर राजा को वर दिया कि तुम्हारे राज्य में अब मैं पीड़ा न दूंगा। अब इसी मिथ्या कथा को लेकर

पौराणिक जी ने शनि की स्तुति रच ली ! ! ! क्या आश्चर्य की बात है ? कि वेदादि सद्ग्रन्थों में सूर्यादिक आकाशस्थ पदार्थों को तो जड़ माना है, परन्तु महाराज दशरथ जी ने उन से लड़ाई की ! ! !

प्रजापति (युरेनस)

इस ग्रह का वर्णन वेद छोड़ कर किसी ज्योतिष के सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। इस की संख्या शनि के बाद है। सन् १७८१ में हर्शल साहब ने गगनमण्डल को देख कर इस का निश्चय किया था। इस ग्रह की सूर्य से प्रायः १७८२२००००० मैल दूरता है। एवं व्यास परिमाण इस का प्रायः ३४५०० मैल है। हमारे ८४ वर्ष ५ दिन १९ होरा ४१ मिनिट ३६ सेकेण्ड में इस का १ वर्ष वा सूर्य को परिभ्रमण करता है। इस का रङ्ग शुभ्र और कुछ नीला सा है और इस के ८ उपग्रह हैं। जिस प्रकार हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ग्रहों की आकृति आदि के अनुसार उन के नाम हैं उसी का अनुकरण ग्रीक और रोमन लोग भी करते हैं। उन में भी बृहस्पति को "जुपिटर" (द्युपितर) और शनि का "सटर्न" देव नाम रक्खा है। ये लोग शनि को बृहस्पति से बड़ा आकार वाला समझ कर बृहस्पति का पिता शनि को मानते हैं और बृहस्पति का पितामह (दादा) युरेनस को मानते हैं। इसी प्रकार यद्यपि हमारे आधुनिक ज्योतिष ग्रन्थों में इस ग्रह का उल्लेख नहीं पाया जाता, परन्तु उक्त लक्षणों के मिलाने से हमारे वेद में प्रजापति नामक ग्रह से अधिक सादृश्य होता है। इस के अनेक उल्लेख वेद की संहिताओं में पाये जाते हैं, परन्तु मेरे पास सायणभाष्य न होने के कारण मन्त्रों का प्रमाण नहीं दे सका। सूर्यसिद्धान्तादि प्रचरित ज्योतिष के पुस्तकों में इस का कुछ भी वर्णन नहीं है॥

वरुण (नेप्चुन)

प्रजापति (युरेनस) के अनन्तर वरुण की कक्षा है। इस का भी वर्णन ज्योतिष के सूर्यसिद्धान्त और आर्यभटीयादि ग्रन्थों में नहीं पाया जाता। परन्तु आधुनिक आविष्कृत लक्षणों के मिलाने से वेद में इस ग्रह का वर्णन पाया जाता है। जिस के अनेक प्रमाण दिये जाते हैं, परन्तु प्रथम इस का वर्णन जैसा कि अङ्गरेजी ग्रन्थों में लिखा है, लिख कर पुनः वैदिक प्रमाणों से तुलना की जावेगी। पेरिसनगर निवासी ज्योतिर्विद् " लावेरीयर " प्रभृति कतिपय व्यक्ति इस प्रकार विचार कर कि युरेनस ग्रह के अनन्तर अवश्य ही कोई दूसरा ग्रह है, एवं उस अज्ञात ग्रह के आकर्षणद्वारा युरेनस की कक्षा

इस प्रकार विचलित होती है, इत्यादि प्रकार अनुभव करने लगे, एवं कुछ काल के पीछे निश्चय किया, परन्तु उन के पास दूरवीक्षण यन्त्र नहीं था। इस कारण वे इस के स्थान को प्रकट नहीं कर सके। बर्लिन नगर के ज्योतिर्विद् डाक्टर *गालसाहब* को स्वीय ग्रहगणना विवरणसम्बलित इस प्रकार एक पत्र लिखा कि वास्तविक यदि किसी अज्ञात ग्रह की आकर्षण शक्ति से युरेनस ग्रह की कक्षा विचलित होती है तो यह ग्रह इस समय गगनमण्डल में अमुक स्थान में अवश्य रहेगा। आप इस स्थान को अनुसन्धान कर अवश्य देखेंगे॥

उक्त डाक्टर सन् १८४६ ई० ता० २३ सेप्टम्बर को पत्र पाकर उसी रात्रि में आकाशमण्डल में उल्लिखित उत्कृष्ट दूरवीक्षण यन्त्रद्वारा निरीक्षण करने लगे और उसी रात्रि मे इस अनाविष्कृत ग्रह को उसी स्थान में पाया जहां पत्र साहब ने पत्र में लिखा था। अब हम उसी नियम के अनुसार जो व्यास एवं दूरी आदि का निश्चय हुआ है, लिखते हैं –

सूर्य से इस की दूरी २८५५०००००० मैल है, एवं हमारे वर्ष परिमाण से प्राय १६४ वर्ष २८८ दिन में यह सूर्य को एक बार परिभ्रमण कर लेता है। अब तक इस के दो उपग्रह जाने गये हैं। इस का व्यास ३६९८३ मैल है। हमारी पृथिवी पर जितनी सूर्य की किरणो की उष्णता होती है, उस के १००० वां भाग गर्मी इस ग्रह में पहुंचती है। इसी से "जल की देवता" अङ्गरेजो ने इसका नाम अन्वर्थ ही रक्खा है। अब वैदिक प्रमाण दिये जाते हैं –

ऋग्वेदादि संहिताओं में इस ग्रह का वर्णन पाया जाता है, परन्तु मेरे पास सायणभाष्य न होने से मन्त्रो का प्रमाण नहीं दे सका और प्रचरित सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों में इस का कुछ भी वर्णन नहीं है॥



उत्तर खण्ड

पाश्चात्य पण्डितो एवं एतद्देशीय नवशिक्षित लोगो का ऐसा निश्चय है कि भारतवर्षीय ज्योतिषग्रन्थो में इस खण्ड के नक्षत्रो का उल्लेख नहीं है और न इस देश के पूर्वज लोग जानते थे इत्यादि। यह कहना उन का एक मात्र अविश्वसनीय है। हम प्रमाण के साथ सिद्ध करते हैं कि जब वेदो में सब खण्डो के नक्षत्रादिको का उल्लेख है तो अवश्य वेद की शाखा एवं आर्ष (ज्योतिष) ग्रन्थो में होगा –

विश्वकर्मा सप्तऋषिभिरुदीच्यादिशः पातु । अथर्व२।१७।७
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृशे कुहचिद्दिवेयुः॥
(ऋ० सं० १ । २४ । १०)

सप्तर्षीनु ह स्म वै पुरर्क्षा इत्याचक्षते ॥ श० ब्रा०२ । १ ।२।४

अथर्ववेद की ऋचा में स्पष्टतया सप्तर्षि तारा की संख्या उत्तर दिशा में लिखी है और ऋग्वेद की ऋचा में "ऋक्ष" शब्द से सप्तर्षि का उपदेश है।अर्थात् ये जो रात्रि में बड़े २ नक्षत्र उत्तर ओर हैं । इस समय (दिन में) कहां हैं। शतपथ ब्राह्मण में"ऋक्ष"शब्द से और सामान्यतः सब नक्षत्र सप्तर्षि तारा अर्थ लेने के लिये पुष्ट प्रमाण है। यों ऋक्ष का अर्थ भालु है और अंग्रेजी में भी सप्तर्षि तारों को'ग्रेटबीअर'अर्थात् बड़ा भालुक लिखा है,जो उत्तर दिशा में हैं॥

विराट् परमेष्ठी प्रजापतिरग्निर्वैश्वानरः सह पङ्क्त्याश्रितः॥
(अथर्व० सं० १३ । ३ । ३ । ५)

अर्थात् 'हंस' नामक नक्षत्र, (विराट्) ब्रह्महृदय, (परमेष्ठी) प्रजापति, अग्नि ये चारों नक्षत्र राशिचक्र (वैश्वानर) की पंक्ति से उत्तर में हैं ॥ अङ्गरेजों ने भी दूरबीन द्वारा देखकर ठीक ऐसा ही लिखा है ॥

सउदतिष्ठत उदीचीं दिशमनुव्यचलत् । तं श्यैतं च
नौधसं च सप्तर्षयश्च सोमश्च राजानुव्यचलत् ॥
अथर्व वे० १५ । १ । २ । २२

उत्तर दिशा में जाकर ध्रुव नामक नक्षत्र (श्यैत) और ध्रुवमत्स्य(नौधस) एवं सप्तर्षि नक्षत्रों को देखे ॥ इन्हीं दो नक्षत्रपुञ्जों को (जिन में ७ सात नक्षत्र हैं) अङ्गरेज़ी में पोल स्टार Pole Stars कहते हैं ।

सप्तर्षीन् वा इदं ब्रूमोऽपोदेवीः प्रजापतिम् ॥
(अथर्व० सं० ११ । ४ । ६)

अपस्पुत्रासो संविशध्वमिमं जीवधन्याः समेत्य ॥
(अथर्व० १२ । ३ । ३ । ४)

अर्थात्—आपनामक नक्षत्र एवं प्रजापति और अपांवत्स नामक नक्षत्र राशिचक्र के पास हैं ॥

इस तरह में सप्तर्षि नक्षत्रों के पास एक अरुन्धति नामक नक्षत्रपुञ्ज है।

जिस को अंग्रेज़ों ने "केउशिपिआ राजमहिषी" नामक नक्षत्र लिखा है। सप्तर्षि नक्षत्रों के नाम अत्रि १,अङ्गिरा २,वसिष्ठ,३,मरीचि ४,पुलह ५,पुलस्त्य ६ और क्रतु ७ ये नाम वेद में नहीं। इन नामों से नक्षत्रों का दूसरा प्रयोजन नहीं। ये केवल उन २ ऋषियों द्वारा वेदोत्तरकालीन समय में जानेगये हैं और दूसरा प्रकार यह भी है। जैसे महर्षिगण अपने २ उत्तम कर्मद्वारा मोक्षपद को लाभ कर अचल सुख में निमग्न हुये इसी प्रकार ये (अतितेजस्वी) एवं स्थिर विराजते हैं ॥

ध्रुवमरुन्धतीं सप्तर्षीनिति दृष्ट्वा वाचं विसृजेत ॥
आश्वलायन गृह्य सू० १। ७। २२

अर्थात् ध्रुव, अरुन्धती, सप्तर्षिनक्षत्रगण इन को देख कर बोले। आशय यह है कि जिस प्रकार ये नक्षत्र उज्ज्वल एवं अचल हैं इसी प्रकार जो बात कहें वह [illegible] अविचल एवं उत्तम हो ॥

सप्तर्षीन्पृष्ठतः कृत्वा युध्येयुरचला इव ॥ १९ ॥
महाभारत शां० रा० ध० अ० १६०

अर्थात् जिस प्रकार सप्तर्षि नक्षत्र अचल हैं (अतिगतिवाले) इस प्रकार अपने को अजर अमर वीर समझ कर युद्ध किया ॥

इस खण्ड में भी असंख्य नक्षत्र हैं जिन का उल्लेख वेदों में प्रायः कई स्थानों में है। विस्तरभय से यहां नहीं लिखते ॥

गन्धर्वा एनमन्वायत् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः । षट् सहस्राः सर्वान्स देवांस्तपसा पिपर्त्ति ॥ अथर्व० ११। ३। ५। २ ॥

३३ गन्धर्व अर्थात् राशिचक्रान्तर्गत नक्षत्रपुञ्ज मध्य खण्ड में एवं उत्तर खण्ड में ६३०० नक्षत्र हैं। जिस प्रकार बड़े तपस्वीगण अपने पुण्यकर्म द्वारा दिव्य लोक मोक्ष सुख को पाते हैं, इस प्रकार प्रकाशित हैं। नक्षत्रों की गन्धर्व संज्ञा है। इस का प्रमाण–

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविंशतिः ॥ यजु० अ० ९। ७॥

अर्थात् २७ नक्षत्रों की गन्धर्व संज्ञा है ॥

दक्षिण खण्ड

इस खण्ड में अंग्रेज़ों ने बहुतसी ताराओं की गति आदि जान कर निश्चय

किया है और वे लोग तथा भारतवर्षीय नवशिक्षित आर्ष ग्रन्थों से अनभिज्ञ लोग कहते हैं कि आर्यावर्त्त के ज्योतिष ग्रन्थों में मध्य खण्ड को छोड़ कर उत्तर, दक्षिण खण्ड के नक्षत्रों के विषय में कुछ उल्लेख नहीं है और उन के पूर्वज लोग नहीं जानते थे इत्यादि। यह कहना उन का कदापि मानने योग्य नहीं। यद्यपि हमारे सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों में इस खण्ड के नक्षत्रों का उल्लेख नहीं पाया जाता, परन्तु वेद ब्राह्मण वाल्मीकीय आदि आर्षग्रन्थों में इस का उल्लेख है। हमें जितने नक्षत्रों का पता लगा है उन को लिखते हैं:- पयस्विनक्षत्रपुञ्ज, मिरा नक्षत्रपुञ्ज और नौकापुञ्ज, ये रूपविकारी (पूर्वोक्त) हैं और वृषपर्वा, शर्मिष्ठा और देवयानी ये तीन नक्षत्रपुञ्ज नव्यतारा हैं और सारथिनामक पुञ्ज भी। एवं त्रिशङ्कुनामक नक्षत्रपुञ्ज, मिथुनमाला तारा है। आकाशगङ्गा, यमुना, अगस्त्य, यम, दिव्यश्वान, कालकञ्ज, व्याध, लुब्धः श्वाः और दक्षिणक्षं ये नक्षत्र सब राशिचक्र के दक्षिण में हैं॥

१ शुनो दिव्यस्य यन्महस्तेन ते हविषा विधेम ॥ १ ॥

२ ये त्रयः कालकञ्जा दिवि देवा इवश्रिताः ॥ २ ॥

(अथर्व० सं० । ६ । ८०)

३ यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ॥३॥

(ऋग्वेद सं० १० । १४ । ११)

४ दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥ ४॥

(ऋ० सं० १० । ६३ । १०)

५ हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।

तत्रामृतस्य पुष्पं देवाः कुष्ठमवन्वत ॥ अ० सं० ५ । ४ । ४

अर्थात् राशिचक्र के दक्षिणखण्ड की यमलोकसंज्ञा है, क्योंकि वहां एक यमनामक नक्षत्र है। इस नक्षत्र के पास दो कुत्ते की आकृति वाले दो नक्षत्र हैं। जिन को यम के पास होने से "यमदूत" (सरमा, देवशुनी) प्रसिद्ध है दृश्यखगोल के दक्षिणखण्ड के अन्तिम भाग में जिस प्रकार उत्तर ध्रुव के पास सप्तर्षि आदि नक्षत्र हैं। उसी प्रकार त्रिशङ्कु (त्रयः कालकञ्जाः) नक्षत्र पुञ्ज हैं ॥ २ ॥ दो "दिव्य श्वान" नामक नक्षत्रपुञ्ज दक्षिणपथ में हैं ॥ ३ ॥ एवं "नौकापुञ्ज" नामक नक्षत्र जिस को अंग्रेजी में नैवीस (Navis) कहते हैं। अंग्रेजों ने यह "नौका पुञ्ज" को पुष्य नक्षत्र के पास देखा है। वेद में भी "पुष्पं

देयाः" से पुष्य नक्षत्र से सम्बन्ध दिखलाया है (अर्थात् 'पुष्य,के पास है) ॥३॥ को अंग्रेज़ी में कैनीस मेजर (Canis major) नक्षत्र है वह हमारे यहां व्याध नक्षत्र है। देखो सूर्यसिद्धान्त अ० ८ और अंग्रेज़ी में जिस को कैनीस माइनर (Canis minor) लिखा है वही हमारे दोनों "दिव्य श्वान" हैं। अगस्त्य नक्षत्र का वर्णन सूर्य० सि० अ० ८ में किया गया है, वहीं देखो। अब त्रिशङ्कु नक्षत्र के विषय में वाल्मीकीयरामायण में रूपकालङ्कार से लिखा है उसको हम यहां लिखते हैं:—

सृजन्दक्षिणमार्गस्थान्सप्तर्षीनपरान्पुनः। नक्षत्रवंशमपरमसृजत्क्रोधमूर्छितः ॥ २१ ॥ दक्षिणां दिशमास्थाय ऋषिमध्ये महायशाः। सृष्ट्वा नक्षत्रवंशं च क्रोधेन कलुषीकृतः ॥२२॥ अन्यमिन्द्रं करिष्यामि लोको वा स्यादनिन्द्रकः। दैवतान्यपि स क्रोधात्स्रष्टुं समुपचक्रमे॥२३॥ ततः परमसंभ्रान्ताः सर्षिसंघाः सुरासुराः। विश्वामित्रं महात्मानमूचुः सानुनयं वचः ॥२४॥ अयं राजा महाभाग! गुरुशापपरिक्षतः। सशरीरो दिवं यातुं नार्हत्येव तपोधन !॥ २५ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा देवानां मुनिपुङ्गवः। अब्रवीत्सुमहद्वाक्यं कौशिकः सर्वदेवताः ॥२६॥ सशरीरस्य भद्रं वस्त्रिशङ्कोरस्य भूपतेः। आरोहणं प्रतिज्ञातं नानृतं कर्त्तुमुत्सहे॥२७॥ स्वर्गास्तु सशरीरस्य त्रिशङ्कोरस्य शाश्वतः।नक्षत्राणि च सर्वाणि मामकानि ध्रुवाण्यथ॥२८॥ यावल्लोकाः धरिष्यन्ति तिष्ठन्त्वेतानि सर्वशः। मत्कृतानि सुराःसर्वे तदनुज्ञातुमर्हथ ॥ २९ ॥ एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्मुनिपुङ्गवम्। एवं भवतु भद्रन्ते तिष्ठन्त्वेतानि सर्वशः ॥ ३० ॥ गगने तान्यनेकानि वैश्वानरपथाद्बहिः। नक्षत्राणि मुनिश्रेष्ठ! तेषु ज्योतिःषु जाज्वलन्

॥३१॥ अवाक्शिरास्त्रिशङ्कुश्च तिष्ठत्वमरसंनिभः । अनुयास्यन्ति चैतानि ज्योतींषि नृपसत्तमम् ॥ ३२ ॥

बालकाण्डे ६०सर्गः

चकारान्यं च लोकं वै क्रुद्धो नक्षत्रसम्पदा ।
प्रतिश्रवणपूर्वाणि नक्षत्राणि चकार यः ॥ ३४ ॥

(महाभारत आदिपर्व अ० ७१)

ब्रह्मराशिर्विशुद्धश्च शुद्धाश्च परमर्षयः ।
अर्चिष्मन्तः प्रकाशन्ते ध्रुवं सर्वे प्रदक्षिणम् ॥

(वाल्मीकीय यु० स० ४ । ४८)

त्रिशङ्कुर्विमलो भाति राजर्षिः सपुरोहितः ।
पितामहः पुरोस्माकमिक्ष्वाकूणां महात्मनाम् ॥

वाल्मी० रा० यु० का० ४ । ४९

भावार्थः--राजा त्रिशङ्कु के ऊपर विश्वामित्र की कृपा एवं विश्वामित्र के राजर्षित्व के साथ वसिष्ठ ऋषि के ब्रह्मर्षित्व की तुलना दिखलाने के लिये त्रेतायुगीय वाल्मीकीयरामायण के कर्त्ता आदि कवि महर्षि वाल्मीकि ने आकाश के दक्षिणखण्ड के नक्षत्रों का आलङ्कारिक रीति पर वर्णन किया है ॥

राशिचक्र के उत्तरीय ध्रुव के पास सात विशेष तेज वाले नक्षत्र हैं जिन को सप्तर्षि कहते हैं । उन सात नक्षत्रों में एक वसिष्ठनामक नक्षत्र है । इसी प्रकार राशिचक्र के दक्षिण भाग में दक्षिणीय ध्रुव के पास सात नक्षत्र हैं, उन्हें भी सप्तर्षि नक्षत्र कहते हैं,एवं इन्हीं के पास त्रिशङ्कुनामक नक्षत्र,दक्षिणर्क्ष और अगस्त्य आदि हैं । ये सब नक्षत्र अनादिकाल से हैं । जिस प्रकार सूर्य, चन्द्रमा, एवं अन्यान्य नक्षत्र, ग्रह, उपग्रह आदि हैं ॥

विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर दक्षिणभागस्थ सप्तर्षिनामक नक्षत्र,एवं अन्यान्य नक्षत्र की रचना करते हुवे कहा कि मैं "दूसरा इन्द्र (त्रिशङ्कु) रचूंगा या इन्द्र ही को लोक से निकाल डालूंगा, इस प्रकार नक्षत्रों की रचना करते देख महर्षिगण और देवलोग विश्वामित्र के पास आकर बोले कि हे तपोधन ! यह राजा (त्रिशङ्कु) गुरु (वसिष्ठ) के शाप से पापी हो रहा है । इस लिये शरीर सहित स्वर्ग को जाने योग्य नहीं है ॥

इन की बात सुन विश्वामित्र बोले कि "त्रिशङ्कु शरीरसहित स्वर्ग को जावे" इत्यादि प्रकार मैं प्रतिज्ञा करचुका हूं, यह मिथ्या नहीं हो सकती ।

इस लिये सशरीर त्रिशङ्कु राजा के वास्ते शाश्वत स्वर्ग हो और ध्रुव नक्षत्र एवं अन्यान्य नक्षत्र जब तक सहित वर्त्तमान रहे,राजा के साथ रहें । इस प्रकार देवतों ने उन की बातें सुन कहा कि ऐसा हो हो। सो आकाश में वैश्वानर पथ (अश्वादि राशिचक्र) के बाहर दक्षिणस्थ सब नक्षत्र बड़े प्रकाश वालों के बीच नीचे की ओर शिर किये त्रिशङ्कु देवतों की भाई ठहरे उस के साथ अन्यान्य सब नक्षत्र भी जावें ॥

इसी प्रकार महाभारत के श्लोक का भी आशय है और श्री रामचन्द्र जी ने युद्धकाण्ड में कहा कि देखो किस प्रकार त्रिशङ्कु नक्षत्र प्रकाशित होरहा है । एवं सप्तर्षि और ब्रह्मराशि (अभिजित्) नक्षत्र ध्रुव नक्षत्र के पास प्रकाशित हो रहे हैं ॥

उत्तर गोलार्ध की " देवलोक " या " देवयान " (पथ) और दक्षिण गोलार्ध की पितृलोक या"यमलोक"वा"पितृयान"संज्ञा है । इस का प्रमाण–

वसन्तो ग्रीष्मोवर्षाः । ते देवा ऋतवः शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरः स (सूर्यः) यत्रोदगावर्त्तते । देवेषु तर्हि भवति ... यत्र दक्षिणो वर्त्तते पितृषु तर्हि भवति ॥ शतपथ ब्रा० २ । १ । ३ ॥

अर्थात् जब सूर्य उत्तरायण में होता है , वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा ऋतुओं में तो देवभाग में दिन एवं शरद्, हेमन्त, शिशिर ऋतुओं में जब सूर्य दक्षिणायन होता है तब पितृलोकस्थ (दक्षिण गोलार्द्ध के) प्राणियों का दिन होता है ।

इस प्रमाण से सिद्ध हुआ कि उत्तर गोलार्ध, देवलोक एवं दक्षिण गोलार्ध पितृलोक है । अब हम नक्षत्रों की संख्या कहां तक लिखें अनेक स्थल में वेदों में उपलक्षण मात्र से कहीं लाख, कहीं सहस्र कहीं कोटिपर्यन्त नक्षत्रों का वर्णन है । याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि–

पितृयानोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम् । तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति स्वर्गकामा दिवं प्रति ॥ १८४ ॥
तत्राष्टाशीतिसाहस्रा मुनयो गृहमेधिनः । सप्तर्षिनागवीथ्यन्ते देवलोकं समाश्रिताः ॥१८७ ॥ प्रायश्चित्ताऽध्याय

रूपकालङ्कार से आकाश में नक्षत्रों को घर, एवं अल्पपुञ्ज वाले समुदाय को ग्राम, इसी प्रकार नगर, एवं नगर के अन्तर्गत वीथी (मुहल्ला, वा पङ्क्ति) का वर्णन वेद एवं अन्यान्य शास्त्रों में किया है । उत्तर गोलार्ध में "नाग"

के आकार की वीथी है जहां सप्तर्षि नक्षत्र हैं एवं अगस्त्य नक्षत्र के पास दक्षिणगोलार्ध में "अज" बकरी की नाईं वीथी (नक्षत्रपुञ्ज) है। इस दक्षिण-खण्ड में प्रायः ८८०१० मुनितुल्य स्थिर नक्षत्र हैं—एवं अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्म करने वाले इन्हीं दो मार्गों से अर्थात् देवयान और पितृयान से जाते हैं—देखो उपनिषद्। वस्तुतः पुराणों में जो ८८००० मुनियों की कथा है वह इन्हीं नक्षत्रों को लेकर कल्पना कर ली गई है।

. धनिष्ठा, देवयानी, आदि नक्षत्रपुञ्ज जिन का प्रमाण संस्कृत ग्रन्थों का नहीं दिया गया है उनका उल्लेख बृहत्संहिता वराहमिहिरकृत ग्रन्थ में है विस्तारभय से यहां नहीं लिखा गया॥

अगस्त्य नामक नक्षत्र का उदय प्रायः वर्षाऋतु की समाप्ति और शरद्-ऋतु के आरम्भ में होता है। और इस के पास ही इस से न्यून दीप्तिवाला "लोपामुद्रा" नामक नक्षत्र है। ये दोनों राशिचक्र के दक्षिण दिशा में हैं। इस का वर्णन वेद में भी पाया जाता है। जैसेः—

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः।१।
लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्"।४।
(ऋ० म० १। १७९)

अर्थः—इस मन्त्र से ईश्वर उपदेश करता है कि हे मनुष्यो! जिस प्रकार लोपामुद्रा नामक नक्षत्र अगस्त्य नामक नक्षत्र के पास अनेक शरदृतु दिन रात से स्त्री पुरुष की नाईं विराजती है। इसी प्रकार तुम अपनी स्त्री के साथ अटल प्रीति करो॥

"प्रससादोदयादम्भः कुम्भयोनेर्महौजसः" ॥
(कालिदास)

अर्थः—घड़े की नाईं आकारवाले अगस्त्य नामक बड़े प्रकाशमान नक्षत्र के उदय होते ही जल घटा जाता है। आशय यह है कि जिस कारण अगस्त्य नक्षत्र के उदय होने से वर्षा की समाप्ति होती है इसी से लोगों में इस की कहावत प्रसिद्ध है कि "अगस्त्य" ऋषि ने अगूठे में समुद्र को रख कर सोख लिया "इत्यादि"॥

राशिचक्र।

सूर्य को ज्येष्ठ और आषाढ मास में पृथ्वी के उत्तरांश में और पौष मास में दक्षिणांश में जाते देखते हैं, उसको देख कर ऐसा समझना उचित नहीं कि सूर्य एकबार उत्तर और एकबार दक्षिण इस प्रकार जाया आया

करता है। वस्तुतः पृथ्वी की गति के अनुरोध से जिस समय उस का उत्तरमेरु सन्निहित प्रदेश सूर्य के सामने होता है उस समय हमको बोध होता है कि सूर्य ही कुछ उत्तर की ओर जाता है, उसी समय का हम लोग "उत्तरायण" कहते हैं। अनन्तर जब पृथ्वी का दक्षिणमेरु सन्निहित प्रदेश सूर्य के सामने होता है, तब सूर्य को पृथ्वी के कुछ दक्षिण ओर जाते देखते हैं। उस समय को सब लोग दक्षिणायन कहते हैं। प्रतिवर्ष सूर्य को इस प्रकार उत्तरायण और दक्षिणायन जाते देखते हैं—इस सीमा को चिन्हित करने के लिये विद्वानों ने भूपृष्ठ के ऊपर के भाग में दो रेखा कल्पना की हैं—उसकी उत्तररेखा को नाम उत्तरक्रान्ति वा 'अयनान्तवृत्त'। दक्षिणरेखा का नाम दक्षिणक्रान्ति वा दक्षिण अयनान्तवृत्त कहते हैं। ये दोनों क्रान्तिरेखा विषुवरेखा से उत्तर दक्षिण

की ओर २३, २८ अन्तर में है। (संस्कृत के ग्रन्थों में २४, लिखा है बहुत दिन होने से इतना अन्तर है) इन्हीं दो रेखाओं के बीच में पृथ्वी के मार्ग का जो अंश पड़ता है—मेषादि १२ राशि उसके अन्तर्गत होती हैं इसी कारण गगनमण्डल के इस अंश को 'राशिचक्र' कहते हैं॥

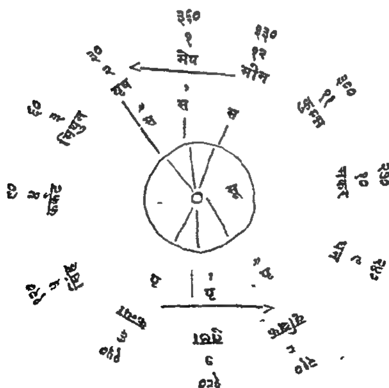
राशिचक्र की परिधि प्राय. नौ सौ अठासी अर्बुद माईल, एवं उसका व्यास प्रायः उन्नीस वृन्द माईल, इसी चक्र के भीतर सूर्य अवस्थिति करता है। पृथ्वी सूर्य से नौ कोटि पचास लाख अन्तर में रह कर प्रति वत्सर एकबार सूर्य की प्रदक्षिणा करती है।

पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है,पर बोध होता है कि सूर्य ही १२ राशियों में क्रम २ से गमन करता है। आपाततः बोध होता है कि सूर्य प्रत्येक राशि को २८ दिन से न्यून एवं ३१ दिन अनधिक काल पर्यन्त भोग कर ३६५ दिन ६ होरा ९ मिनट १० सेकण्ड में वार्षिकगति समाप्त करता है। वस्तुतः सूर्य पृथ्वी को परिभ्रमण नहीं करता। पृथ्वी अपनी कक्षा में घूमती २ उसकी चारों ओर भ्रमण करती है। इसी से जब पृथ्वी राशिचक्र के उत्तरांश में मेष, वृष, मिथुन प्रभृति राशियों में जाती है तो उस समय सूर्य को राशिचक्र के दक्षिणांश में तुला, वृश्चिक, धन, आदि राशि में अवस्थित देखते हैं अर्थात् पृथिवी की गति ठीक विपरीत दिशा में सूर्य की गति अनुमान होती है। जिस समय पृथ्वी कन्या राशि में रहती है, उस समय सूर्य मेष राशि में, जिस समय पृथ्वी वृश्चिक राशि में, उस समय सूर्य वृष राशि में है, ऐसा लोग समझते हैं। इसी कारण जिस समय पृथ्वी दक्षिणअयन उस समय सूर्य उत्तर अयन हुआ बोध होता है। पृथ्वी के उत्तरअयन अर्थात् पृथ्वी के मेष राशि में प्रवेश करने पर सूर्य तुला राशिस्थ जान पड़ता

है। मेष राशि के परे पृथ्वी जब वृष राशिमें आती है, सूर्य को वृश्चिक राशि में, एवं पृथ्वी जब मिथुन राशि में आती है तब सूर्य धनराशि में उपस्थित होता दीखता है। एतद्देशीय आधुनिक ज्योतिष में यह बात स्पष्ट नहीं, उस में केवल इतना ही लिखा है कि जिस राशि में जिस ग्रह का उदय होता उसके सप्तमराशि में उसका अस्त होता है। अर्थात् पृथ्वी जिस राशि में रहती है, उस से सप्तम राशि में सूर्य अवस्थित दीखता है॥

सूर्य का इस प्रकार विपरीत दिशा मे जाते दीखने का कारण यह है कि चल पदार्थ में अवस्थित होकर अचल वस्तु को देखने पर जिस प्रकार अपनी गति अनुभूत नहीं होती। एवं स्थिर पदार्थ ही की गति का भ्रम होता है। इसी प्रकार पृथिवी राशिचक्र में घूमती है, परन्तु हम लोगों को अनुभव होता है कि सूर्यपर्याय क्रम से एक २ राशि भोग करता है॥

राशिचक्र ज्ञापक चित्र



उपरोक्त चित्र में सू० सूर्य, पृ पृ पृ पृथिवी का कक्षा प्रदेश। पृथिवी से कोई दर्शक सूर्य को पृथिवी के गमनपथ के विपरीत दिशा में दर्शन करने पर पृथिवी जिस प्रकार पृ स्थान से पृ और पृ की ओर आयेगी तो बोध होगा कि सू सूर्य स स्थान से स और स स्थल में आता है। इस प्रकार राशिचक्र के जिस स्थान में पृथिवी घूम आवेगी उस अंश से सूर्य राशिचक्र के सम्मुख अंश में आता सा जान पड़ेगा। नक्षत्रगण के बीच होकर जो बड़े वृत्ताकार पथ में सूर्य की सांवत्सरिक गति सम्पादित होती है, अनुभव होता है, उस को रविमार्ग कहते हैं। वस्तुतः यही पृथिवी का वार्षिक भ्रमणमार्ग है, जिस को पृथिवी की कक्षा कहते हैं॥

यह वृत्त निरक्ष वृत्त को वक्रभाव से छेद करता है। एक छेद कोण २३ २८ परिमित॥

रविमार्ग और राशिचक्र १२ समानभाग में विभक्त हैं। इस प्रत्येक भाग को राशि कहते हैं। प्रत्येक राशि ३० आयत। सूर्य प्रतिदिन राशिचक्र के माप एक १ अंश करके गमन करता है॥

राशि चक्र

पहिले कहा जाचुका है कि आकाश के मध्यस्थल में १२ राशि(पुञ्ज वा ढेर) और उस के भीतर लगभग १०१६ नक्षत्र हैं। इस मध्यस्थल में जो सब नक्षत्र हैं वे अचल हैं। प्राचीन ज्योतिर्विद् पण्डितों ने इन नक्षत्रों की एक २ आकृति कल्पना कर १२ राशियों में विभक्त किया है। इसी को राशिचक्र कहते हैं। १२ राशियों के नाम ये हैं.-मेष (भेड़सा आकार) वृष (बैलसा आकार) मिथुन (स्त्री, पुरुष-जोड़ा) कर्कट (केकड़ा) सिंह (शेर) कन्या (कन्या की नाईं) तुला (तराजू) वृश्चिक (बिच्छू) धनु (बाण) मकर (घड़ियाल) कुम्भ (घड़े की नाईं) मीन (मछली की नाईं) हैं। इस की संस्था सब से ऊपर है अर्थात् इसी में सब ग्रहादिकों का भ्रमण होता है। वेदों में राशियों के नाम स्पष्टतया नहीं पाये जाते परन्तु १२ विभाग और नक्षत्रों की आकृति का वर्णन है। एवं राशिचक्र को वेद में अचल लिखा है, परन्तु वेदोत्तरकालीन ज्योतिष के ग्रन्थों में आर्य भट को छोड़ सबों ने राशिचक्र को चल और पृथिवी को अचल माना है। अब प्रथम राशिचक्र

का नाम तथा इस का अवलम्ब वेदादि सच्छास्त्रों से दिखला कर पुनः राशिचक्र में सूर्य द्वारा क्योंकर दिन रात होते हैं लिखेंगेः—

वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद्रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभिषष्ठमन्हः ॥
(अथर्व० ८ । ५ । ९ । ६)

अर्थात्—राशिचक्र (वैश्वानर) के ऊपर जो स्थान है उस से छः भाग सूर्य एक ओर दृश्य होता है, एवं छः भाग दूसरी ओर दृश्य होता है। जिस से एक छः भाग में एक बार दिन होता है (छः भाग तक एव दूसरे भाग में रात और दूसरे भाग में जब दिन तब पहिले भाग में रात होती है) वैश्वानर शब्द से जो राशिचक्र अर्थ ग्रहण हुआ उस का प्रमाणः—

गगने तान्यनेकानि " वैश्वानर " पथाद्बहिः ।
नक्षत्राणि मुनिश्रेष्ठ ! तेषु ज्योतिःषु जाज्वलन् ॥२१॥
(वाल्मीकीय रा० बा० सर्ग ६०)

इस पर राम नामक टीकाकार ने लिखा है कि "अनादिज्योतिष चक्र मार्ग से बाहर में नक्षत्र सब प्रकाशित हैं" यह त्रिशङ्कु तारा के वर्णन में है, देखो त्रिशङ्कु वर्णन ॥

विश्वेदेवा द्वादशारेण जगतीमुदजयंस्तामुज्जेषम् ॥
(यजु० पू० अ० ९ । ३३)

अर्थात्—जितने नक्षत्र ग्रह तारादि हैं सब ही राशिचक्र (द्वादशारेण) में अवस्थित होकर उदय और अस्त सम्पादन करते हैं ॥

भपञ्जरः स्थिरो भूरेवावृत्त्यावृत्त्य प्रातिदैवसिकौ
उदयास्तमयौ सम्पादयति नक्षत्रग्रहाणाम् ॥
(पृथूदकस्वामिकृतार्यभट्टवचनम्)

आर्यसिद्धान्त नामक ज्योतिषग्रन्थ का वचन है । अर्थात् राशिचक्र स्थिर है और इस में पृथिवी के भ्रमण के कारण गगन मण्डलस्थ नक्षत्रादिकों का दैनिक उदयास्त प्रतीत होता है। इस का विशेष प्रमाण पृथिवी के भ्रमण में देखो । अब इस राशिचक्र में २७ नक्षत्र हैं (सर्वसाधारण जानते हैं) परन्तु वेद में २८ नक्षत्र हैं, एवं इस समय अश्विनी नक्षत्र से आरम्भ होकर रेवती पर

समाप्त करते हैं, परन्तु वेद में कृत्तिका से आरम्भ होकर रेवती पर समाप्त हुआ है। प्रमाण –

चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि ॥ १ ॥ सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ॥ पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥२॥ पुण्यं पूर्वाफाल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वातिः सुखो मे अस्त ॥ राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम् ॥३॥ अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्तु । अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥४॥ आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म । आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आवहन्तु ॥५॥ अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सहयोगं भवन्तु मे ॥ अथर्व वे० सं० १९। १। सू० ७। ८।

इन नक्षत्रों के नाम ही से इन के आकार का भी बोध होता है जो महाकवि कालिदासकृत ज्योतिर्विदाभरण नामक ग्रन्थ में नक्षत्रों की आकृति विधायक श्लोक लिखकर तब इन नक्षत्रों को अर्थात् इकट्ठा एकचक्र द्वारा लिखेंगे –

तारका त्रयमिते शराकृतौ केशवे गगनमध्यवर्त्तिनि । मत्तवारणगतेऽजलग्नतो निर्यगुर्गजमहीध्रलिप्तिकाः॥१॥ मस्तकोपरि समागते घने मर्दलाकृतिनिपञ्चतारके । यान्ति कान्तिमति मेषलग्नतः सारसाक्षि रसधात्रलिप्तिकाः ॥२॥ मण्डलाभशततारकाकुले मध्यभाजिनभसः प्रचेतसि ॥ वाणशैलधरणीमिताः कलाः शारदेन्दुमुखि ताधुरेयेयुः ॥ ३ ॥ मारमूर्त्तिभृतिकोपरिस्थिते पूर्व-

भाद्रपदभे द्वितारके। लिप्तिकाः करिकराक्षि सम्मिता निःसरन्ति वृषभोदयात् प्रिये॥४॥ उत्तरे सुमुखि भारमूर्त्ति भृत्युत्तमाङ्गमिलिते द्वितारके। नीलचामरकचे नृयुग्मतो लोचनाचलकलाः पलायिताः ॥५॥ दन्तसंख्यभगणे भ्रपा-कुलावस्त्यभे लसदनन्तमध्यगे। कोमलाङ्घ्रि जिमुमोद्-यात्तदा कालखानलकलाः प्रियेऽचलन्॥६॥ तन्वि घोटक-मुखाकृति त्रिते मस्तकोर्ध्व भाजि वाजिनि। चारु चन्द्र-मुखि कर्कटोदयान् निर्गता गगननन्दलिप्तिकाः ॥ ७ ॥ तारकात्रययुते त्रिकोणके मध्यगे द्विविपदध्वनो यमे। पङ्कजाक्षि मिलिताः कुलीरतः शायकाक्षि भुज लिप्ति-काः ॥ ८ ॥ हव्यवाहनशिखाकृतौ स्थिते मस्तकोपरि पङ्क्षकेऽनले। सिन्धुसिन्धुरमिताः कला गताःकुन्त-दन्ति मृगनायकोदयात् ॥ ९ ॥ कम्बुकण्ठि शकटाकृतौ नभोमध्यमागतवति प्रजापतौ। पञ्चभे गजकुपक्षलि-प्तिका निःसृताः सुमुखि सिंहलग्नतः ॥१०॥ मूषिकाशन-पदाकृतौ विधौ व्योममध्यमिलिते त्रितारके। शार-देन्दुमुखि कन्यकोदयादीक्षणानलकलाःकलावति ॥११॥ उज्ज्वलैकशतपत्रसुन्दरे शूलिनि त्रिदशवर्त्ममध्यगे। निर्गताः खचरघसलिप्तिकाः पूर्णचन्द्रमुखि कन्यल-ग्नतः ॥ १२ ॥ मध्यवर्त्तिनि शरासनाकृतिन्यम्बरस्य सुरमातृभे गताः। लिप्तिकाः सुमुखि पञ्चतारके पक्षपा-वकमिता घटोदयात् ॥ १३ ॥ रासपीठकठिनीरजःप्रभे मध्यमृच्छति विहायसो गुरौ। तौलिनःप्रपतमार-

लोचने लोचनाद्रिकुमितागताः कलाः ॥ १४ ॥ मौलिगे भुजगभे श्वपुच्छवद्भङ्गुराकृतिनि पञ्चतारके। मारकेलिरसिके तुलोदयादत्ययुर्जलधियाक्षि लिप्तिकाः ॥ १५ ॥ लाङ्गलाकृतिनि पञ्चतारके चारुकेशि पितृभे शिरोगते। नीलनीरजविनिंद्रलोचने वृश्चिकाद्विगलितं कलाशतम् ॥१६॥ दक्षिणोत्तरगते द्वितारके योनिभे मिलति मस्तकोपरि। कीटतः स्फुटसरोरुहानने निःसृता गजरसाक्षि लिप्तिकाः ॥ १७ ॥ अर्यमण्यमरवर्त्ममध्यगे सौम्ययाम्यमिलिते द्वितारके। चापतश्चपललोचनाञ्चले कालपावकमिताः कला गताः ॥१८॥ मस्तकोपरि कराकृतौ करे तिष्ठतीन्दुमुखि बाणतारके। लिप्तिकाःशरकुपक्षसंख्यकाः शायकासनविलग्नतो गताः ॥१९॥ एकमौक्तिकसमुज्ज्वलप्रभे त्वष्टरीन्दुवदने खमध्यगे। आदितो मृगविलग्नमादिशत्युल्लसन्मदनबाणलोचने ॥२०॥ कुङ्कुमारुणतरैकतारके वायुभे सुदतिमध्यमागते। शायकाम्बरचराधराः कलाश्चञ्चलाक्षि विययुर्मृगोदयात्॥२१॥ तोरणाकृतिनिपञ्चतारके तारकेशवदने विशाखभे।तन्वि यान्ति वियुधाध्वमध्यगे कुम्भतो रसभुजाः कलाःप्रिये ॥ २२ ॥ पन्नगाकृतिनि सप्ततारके मित्रभे सुदति मध्यगे दिवि। वन्हिबाहुपृथिवीमिताः कला निर्गता घटकुचे घटोदयात् ॥ २३ ॥ तन्विकोलरवदनाकृतौ त्रिभे वासवे वसति मस्तकोपरि। कालबाणवसुधा कलाश्च खञ्जनाक्षि कलशोदयाद्ययुः ॥ २४ ॥ मौलिभाजि नवतार-

काङ्किते मूलभे सुदति शङ्कुमूर्त्तिनि । लिप्तिकाष्टकमराल-कुन्तले निर्ज्जगाम पृथुलोमलग्नतः ॥ २५ ॥ सूर्यमूर्त्तिनि शिरोगते चतुस्तारके करिकरोरुतोयभे । अन्त्यभाद्-मृतवाणि निर्गताः खेचराम्बरशशाङ्कलिप्तिकाः ॥ २६ ॥ शीर्षभाजि भचतुष्टयाङ्किते विश्वभे तरुणि सूर्पका-कृतौ । भूतिरस्कृतमनोजकार्मुके यान्ति कालशरचन्द्र-लिप्तिकाः ॥ २७ ॥ (ज्योतिर्विदाभरणे) ॥

रात्रिसमय जो नक्षत्र जिस समय ठीक माथे पर दीखेगा तदनुसार जिस राशि के जितने दण्ड पलादि बीतेंगे उन का भी ज्ञान इसी चक्रद्वारा होगा। ३६० अंशों का एक चक्र होता है और प्रत्येक राशि ३० तीस तीसअंशों की एवं

एक एक राशि में सवा दो दो नक्षत्र एवं प्रत्येक नक्षत्र १३° २०' में अवस्थित हैं॥

वेदमन्त्रों में नक्षत्रों के नामों के साथ योग तारा का भी उल्लेख है। परन्तु प्रत्येक योगतारा की संख्या नहीं है, किन्तु कालिदास ने ताराओं की संख्या दी है ॥ नक्षत्रभोग का प्रमाण वेद में-

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टपरःसहस्रा

ऋ० सं० ८।२।४१

अर्थात् ४८०००० विकला जिस में ६० से भाग करने पर ८०० कला होती हैं। देखो सूर्यसि० अ० १। ६४

पूर्वोक्त श्लोक और अथर्ववेदीय मन्त्रों का अर्थ चक्र द्वारा किया गया है।

राशिचक्र

संख्या	नक्षत्रों के नाम	योगतारा संख्या	क्षेत्र		नक्षत्रों की आकृति	राशियों के नाम	क्षेत्र अंश	उदय लग्न का भुक्त		जिस राशि के काल बीते हैं
			अंश	कला				दण्ड	पल	
१	अश्विनी	३	१३	२०	घोड़ा	मेष १	३०	१	३०	कर्कट
२	भरणी	३	१३	२०	त्रिकोण	,,		३	४५	,,
३	कृत्तिका	६	१३	२०	अग्निशिखा	वृष २	३०	१	२४	सिंह
४	रोहिणी	५	१३	२०	गाड़ी (शकट)			३	३८	,,
५	मृगशीर्ष	३	१३	२०	बिडालपद	मिथुन ३	३०	०	३२	कन्या
६	आर्द्रा	१	१३	२०	उज्ज्वल			२	३९	,,
७	पुनर्वसु	५	१३	२०	धनुष्	कर्कट ४	३०	०	३२	तुला
८	पुष्य	१	१३	२०	माणिक्य वर्ण			२	५२	,,
९	आश्लेषा	५	१३	२०	कुत्ते का पुच्छ			३	२४	,,
१०	मघा	५	१३	२०	हल की नाईं	सिंह ५	३०	१	४०	वृश्चिक
११	पूर्वाफाल्गुनी	२	१३	२०	दक्षिण उत्तर दिशा			४	२८	,,
१२	उत्तराफाल्गुनी	२	१३	२०	,, ,,	कन्या ६	३०	०	३६	धनु
१३	हस्त	५	१३	२०	हाथ की नाईं (पञ्जे की नाईं)			३	३५	,,

राशिचक्र

संख्या	नक्षत्रों के नाम	योगतारा संख्या	क्षेत्र अंश	क्षेत्र कला	नक्षत्रों की आकृति	राशियों के नाम	क्षेत्र अंश	उदय लग्न मा भुक्त दण्ड	उदय लग्न मा भुक्त पल	जिस राशि के काल बीते हैं
१४	चित्रा	१	१३	२०	मुक्ताकी नाई उज्ज्वल			०	०	मकर
१५	स्वाती	१	१३	२०	कुङ्कुम वर्ण	तुला ७	३०	३	१५	,,
१६	विशाखा	५	१३	२०	तोरण			०	३६	कुम्भ
१७	अनुराधा	७	१३	२०	शूर्प	वृश्चिक ८	३०	२	३	,,
१८	ज्येष्ठा	३	१३	२०	सर्प			२	३६	,,
१९	मूल	९	१३	२०	शंख	धनु ९	३०	०	८	मीन
२०	पूर्वाषाढा	४	१३	२०	सूर्प			१	४९	,,
२१	उत्तराषाढा	४	१३	२०	सूर्प	मकर १०	३०	२	३६	,,
२२	अभिजित्	१								यह पूर्वाषाढाके भीतर है इसलिये २७ही नक्षत्र अब गिनते हैं
२३	श्रवणा	३	१३	२०	वाण			१	१८	मेष
२४	धनिष्ठा	५	१३	२०	मर्दल(मानरबाजा)	कुम्भ ११	३०	२	३६	,,
२५	शतभिषक्	१००	१३	२०	मण्डलाकार			२	५५	वृष
२६	पूर्वभाद्रपदा	२	१३	२०	खाट की नाईं		३०	३	४६	,,
२७	उत्तर भाद्रपदा	२	१३	२०	दो मस्तक	मीन १२		१	१२	मिथुन
२८	रेवती	३२	१३	२०	मछली			५	६	,,
			३६०				३६०			

उल्लिखित नक्षत्रों के अतिरिक्त और भी नक्षत्र इस मध्यखण्ड में हैं। जिन का वर्णन वेदों में है परन्तु विस्तरभय से हम यहां नहीं लिखते। अंग्रेजों ने जो इस खण्ड में केवल १०१८ ताराओं का निश्चय किया है। उस से भी अधिक ताराओं का उल्लेख वेदों में पाया जाता है। एक नक्षत्र जिस को अंग्रेजी में ओरायन (orion) (इस से मिलता हुआ संस्कृत शब्द अग्रहायण है) कहते हैं इस का वर्णन ब्राह्मणग्रन्थ में है। जिस प्रकार अङ्गरेजों ने इस को अनुसन्धान से यथावत् जाना है, उसी प्रकार वर्णन है। और वेद में भी ठीक ऐसा ही शब्द नक्षत्र वर्णन प्रसङ्ग में आया है –

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे वैश्वानरश्च मे ।

यजुर्वेद० पूज्य० १८ । २१

अर्थात् ओरायन या अग्रहायण (मृगशीर्ष) राशिचक्र के पास के सब नक्षत्र एवं राशिचक्र॥

तमभ्यायत्याविद्धत्स विद्ध ऊर्ध्वउद प्रपेत तमेतं मृग इत्याचक्षते पर उ एव मृगव्याधः स उ एव सयो रोहित् सा रोहिणी यो एवेषुस्त्रिकाण्डासो एवेषुस्त्रिकाण्डा तद्वा इदं प्रजापते रेतसिक्तमधावत् तत्सरोभवत् ॥ ऐ० ब्रा०१३ । ९ ॥

अर्थात् रोहिणी ऊपर को कुदे इस कारण रोहिणी नाम, एवं मृगशीर्ष नक्षत्र रोहिणी से विद्ध होकर रहा इसलिये मृगशीर्ष हुआ एवं जो दोनों के बाण से विद्ध हुआ वह–व्याध वा लुब्धक हुआ। आशय यह है कि प्राय. वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में रूपकालङ्कार से गगनमण्डलस्थ विषय पदार्थों का वर्णन है। रोहिणी और मृगशीर्ष नक्षत्र जो व्याध के ऊपर हैं उन की आकृति बाण की नाईं है इस से उक्त प्रकार वर्णन है। रोहिणी नक्षत्र के विषय में एक मनोहर रूपकालङ्कार में ब्राह्मण ग्रन्थ में वर्णन है कि ब्रह्मा ने अपनी ३३ कन्यायें चन्द्रमा को दीं परन्तु चन्द्रमा का अधिक स्नेह रोहिणी नामक कन्या से देखकर अवशिष्ट कन्यागण ब्रह्मा के पास जाकर कहने लगीं कि भगवन्! चन्द्रमा हम लोगों से अधिक स्नेह रोहिणी में करता है। इस पर ब्रह्मा ने चन्द्रमा और कन्यागणों को परस्पर शपथ देकर कहा कि सब में समान प्रीति रक्खो, सब ने स्वीकार किया। अनन्तर चन्द्रमा फिर भी रोहिणी से अधिक स्नेह करने लगा। यह देख प्रजापति ने चन्द्रमा को

शाप दिया। इस से चन्द्रमा को यक्ष्मा-रोग हुआ, पुनः चन्द्रमा शापमर्षण का प्रार्थी हुआ और ब्रह्मा ने कहा कि सूर्य को चरु दो तो शाप से मुक्त होगे, इत्यादि। ऐतरेय ब्राह्मण १३।९।१,१,१०॥

अब उक्त आख्यायिका का सारांश यह है कि कृत्तिका, रोहिणी, पुष्य, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, शतभिषक्, रेवती इन १२ नक्षत्रों के साथ कभी २ चन्द्रमा का पिधान (ढक लेता है) होता है। इन १२ नक्षत्रों में जो अत्यन्त सूक्ष्म है, उसी का चन्द्रमा अधिक पिधान करता है। इस प्रकार के नक्षत्र केवल मघा, ज्येष्ठा, चित्रा, रोहिणी इन में भी उत्तरोत्तर तेजस्वी हैं। अर्थात् मघा से ज्येष्ठा अधिक प्रकाशवाला, ज्येष्ठा से चित्रा, एवं चित्रा से भी अधिक रोहिणी तेजस्वी है। चन्द्रमा का पिधान सौ प्रायः उक्त सब नक्षत्रों के साथ होता है, परन्तु सब से तेजस्वी तारा रोहिणी का पिधान अतिमनोहर होता है। इसी सुन्दरता के कारण केवल रोहिणी का पिधान अधिक प्रसिद्ध है। इसी के वर्णन में उक्त आख्यायिका है। यहां अश्विनी आदि २७ नक्षत्र और कृत्तिका की योग-तारा मिल कर ३३ कन्या हुईं। चन्द्रमा को शाप क्या उस में जो काला सा चिह्न दीखता है, उसी का वर्णन है। सूर्य को चरु क्या देना सूर्यद्वारा प्रकाशित होता है, सो कृष्णपक्ष में सूर्य अपना तेज ले लेता है। और शुक्ल में देता है। इसी का इस प्रकार वर्णन है। इसी कथा को मूल रूप से लेकर पुराणों में चन्द्रमा और रोहिणी विषयक अनेक खटपटाङ्ग कथा रची गई हैं। अब कृत्तिका नक्षत्र से पौराणिक माया फैली है। उस को लिखते हैं:-

कृत्तिका नक्षत्र की छ: योगतारायें हैं और यह नक्षत्र कार्त्तिक मास में अवश्य प्रातःकाल उदित होता है। इस को कार्त्तिक स्वामी नामक देवता मान कर कार्त्तिक (स्नान) पूजादि का विधान पुराणों में लिखा है। कार्त्तिक स्वामी का नाम षाण्मातुर, शक्तिधर, शरजन्मा आदि। छः योगतारा मानों उस की माता है। इसलिये "षाण्मातुर" नाम जान कर आडम्बर रचे हैं। वास्तविक यह पोपलीला मात्र है। अविद्या के प्रभाव से यह सब जाल फैला है॥

नक्षत्रों की देवता

तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं यजुर्वेद ज्योतिष में अश्विनी आदि २७ नक्षत्रों की भिन्न २ देवतायें लिखी हैं, परन्तु सूर्यसिद्धान्तादि ज्योतिष ग्रन्थों में इस

का कुछ भी वर्णन नहीं है। देखने से महाभारत, मिताक्षरा एवं वाल्मीकीय-रामायण आदि ग्रन्थ और मिलाने से खगोल के नक्शे को अनुमान होता है कि एक सौर जगत् (जिस में हम लोग हैं) में बुध, शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति आदि अनेक लोक हैं और एक २ लोक में अनेक छोटे विभाग हैं । हमारे शास्त्रों में ऐसे विभागों के अनेक उल्लेख पाये जाते हैं और ये विभाग नक्षत्रों की आकृति नक्षत्रपुञ्ज और दिशा आदि के अनुसार हैं । जैसे प्रत्येक अश्विनी आदि नक्षत्रों का नाम घोड़ा आदि आकृति के अनुसार है और पुनः प्रत्येक सवा दो दो नक्षत्र की एक एक राशि (पुञ्ज) रूप १२ विभाग हैं (जिन की मेष आदि आकृति है) इसी प्रकार प्राचीन रीति से कृत्तिका नक्षत्र की देवता "अग्नि" है । सो वास्तविक दूरबीन से देखने से इस की आकृति अग्नि की नाईं मालूम होती है। इसी प्रकार अन्यान्य कई नक्षत्रों की देवता हैं । यह तो आकृतिपरक देवता हुई । अब खगोल के विभाग के अनुसार देवयान आदि सज्ञा । खगोल के उत्तरीय भाग की देव वा देवयान सज्ञा है और दक्षिण प्रदेश की पितृयान और यम सज्ञा हैं। और अगस्त्य नक्षत्र के प्रदेश की "वीथी" संज्ञा है । किसी की सर्प सज्ञा है । इसी विभाग के अनुसार जिस २ विभाग में जो २ नक्षत्र पड़ा है, उस २ की वह २ देवता (आकाशस्थ समस्त चमकीले पदार्थ की देव) सज्ञा है । इस विभाग के विषय में प्राचीन प्रमाण है:—

पितृयानोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चान्तरम् । तेना-
ग्निहोत्रिणो यान्ति स्वर्गकामा दिवं प्रति॥ १८४ ॥
तत्राष्टाशीतिसाहस्रं मुनयोगृहमेधिनः । सप्तर्षिना-
गवीथ्यन्ते देवलोकं समाश्रिताः ॥ १८७ ॥

(याज्ञवल्क्यस्मृतौ)

आशय—जिस प्रकार एक भारतवर्ष के भीतर अनेक सूबे (बङ्गालादि) हैं । प्रत्येक सूबों में अनेक कमिश्नरी वा जिला वा कस्बे हैं। एक कस्बे में अनेक बड़े २ मुहल्ले हैं । एक २ मुहल्ले में अनेक बड़ी एव छोटी गलियां हैं । इसी प्रकार खगोल में सौर जगत् के विभाग हैं । पितृयान, अजवीथी, देवयान, नागवीथी आदि । और भी प्रमाण:—

स (सूर्यः) यत्रोदगावर्त्तते देवेषु तर्हि भवति यत्र दक्षिणा वर्त्तते तर्हि पितृषु भवति ॥ शत० ब्राह्मणे २ । १ । ३ ॥

अर्थ-यह सूर्य जब उत्तरायण होने पर उत्तर की ओर जाता दीखता है तो देवयान प्रदेश में होता है। एवं जब दक्षिणायन होता है तो पितृमान प्रदेश मे होता है॥

इसी प्रकार सूर्य के जो १२ नाम हैं वे भी आकाश के विभाग के अनुसार जिस २ मास मे आकाश के जिस जिस प्रदेश में सूर्य दीखता है, उस २ विभाग के अनुसार सूर्य के १२ नाम है। इन का वर्णन महाभारत के आदिपर्व मे है, हम यहा विस्तारभय से उन श्लोको का उल्लेख नहीं करते हैं। इसी के अनुसार नक्षत्रो की देवता लिखी है। प्रमाण –

कृत्तिका नक्षत्रमग्निर्देवताग्नेरुचस्थ प्रजापतेर्धातुः सोमस्यर्चे त्वा रुचे त्वा द्युते त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा रोहिणी नक्षत्रं प्रजापतिर्देवता मृगशीर्षं नक्षत्रं सोमो देवतार्द्रा नक्षत्रं रुद्रो देवता पुनर्वसू नक्षत्रमदितिर्देवता तिष्यो नक्षत्रं बृहस्पतिर्देवताऽऽश्लेषा नक्षत्रं सर्पा देवता मघा नक्षत्रं पितरो देवता फल्गुनी नक्षत्रमर्यमा देवता फल्गुनी नक्षत्रं भगो देवता हस्तो नक्षत्रं सविता देवता चित्रा नक्षत्रमिन्द्रो देवता स्वाती नक्षत्र वायुर्देवता विशाखे नक्षत्रमिन्द्राग्नी देवताऽनुराधा नक्षत्रं मित्रो देवता रोहिणी नक्षत्रमिन्द्रो देवता विधृतौ नक्षत्रं पितरो देवताषाढा नक्षत्रमापो देवताषाढा नक्षत्रं विश्वे देवा देवता श्रवणा नक्षत्रं विष्णुर्देवता श्रविष्ठा नक्षत्रं वसवो देवता शतभिषङ् नक्षत्रमिन्द्रो देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमज एकपाद्देवता प्रोष्ठपदा नक्षत्रमहिर्बुध्न्यो देवता रेवती नक्षत्रं पूषा देवताऽश्वयुजौ नक्षत्रमश्विनौ देवता भरणीर्नक्षत्रं यमो देवता पूर्णापश्चाप्यन्ते देवा अदधुः। तैत्तिरीय ब्राह्मणे ४। ४। १०

इन मन्त्रो का अर्थ यकद्वारा किया गया है –

नक्षत्रों की देवता ज्ञापक चक्र

कृत्तिकादि	नक्षत्र	देवता	कृत्तिकादि	नक्षत्र	देवता
१	कृत्तिका	अग्नि	१५	अनुराधा	मित्र
२	रोहिणी	प्रजापति	१६	ज्येष्ठा	इन्द्र
३	मृगशीर्ष	सोम	१७	मूल	निर्ऋति
४	आर्द्रा	रुद्र	१८	पूर्वाषाढ़	आपः
५	पुनर्वसू	अदिति	१९	उत्तराषाढ़	विश्वेदेव
६	पुष्य	बृहस्पति	२०	श्रवण	विष्णु
७	आश्लेषा	सर्प	२१	श्रविष्ठा	वसु
८	मघा	पितर	२२	शतभिषक्	वरुण
९	पूर्व फल्गुनी	भग	२३	पूर्व भाद्रपदा	अजएकपात्
१०	उत्तर फल्गुनी	अर्यमा	२४	उत्तरभाद्रपदा	अहिर्बुध्न्य
११	हस्त	सविता	२५	रेवती	पूषा
१२	चित्रा	त्वष्टा	८	अश्वयुज्	अश्विनी
१३	स्वाती	वायु	२७	भरणी	यम
१४	विशाखा	इन्द्राग्नी			

गति

एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने का नाम गति है। जड़ पदार्थ निश्चेष्ट स्वयं एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं जा सकता। परन्तु इस में भी एक प्रकार की गति है। चला देने से चलता है। यही नियम संसार में अत्यन्त अद्भुत है, किसी जड़ वस्तु का चलना और रुक जाना तीन कारणों से होता है॥

१—अपेक्षाकृत गुरुतर वस्तु के आकर्षण, वायुद्वारा अवरोध, एवं दूसरे वस्तु के साथ घर्षण। गुरुतर वस्तु का धर्म यह है जो अपने से छोटे वस्तु को आकर्षणद्वारा अपनी ओर ले आता है। जिस के द्वारा कोई वस्तु चालित होता है, उस को शक्ति कहते हैं। बिना शक्ति के गति नहीं होती। कोई वस्तु किसी निर्दिष्ट काल में जितनी दूर जाता है, उसको उस वस्तु का वेग कहते हैं। जड़ पदार्थ की गति का नाम "कार्य" है और जिस शक्ति से गति होती है, उस को "कारण" कहते हैं॥

"चक्रावर्त्त" या "वृत्ताभास"

जिस समय किसी वस्तु को चक्राकार या तदनुरूप पथ में चलते देखते

हैं तो उस समय अवश्य विचारना होगा कि इस वस्तु में दो शक्ति दी गई हैं। एक शक्तिद्वारा नियत निक्षिप्त एवं अपरशक्ति से नियत आकृष्ट होता है। इस में पहिली शक्ति अर्थात् जिस से केन्द्राभिमुख गति होती है, उस को केन्द्राभिकर्षणशक्ति और दूसरी शक्ति अर्थात् जिस से केन्द्र छोड़ कर उस को लाना पड़ता है उस को "केन्द्रप्रसारणी" शक्ति कहते हैं ॥

केन्द्राभिकर्षणी शक्ति वा मध्याकर्षण शक्ति

सूर्य की गुरुता के कारण पृथिवी उस केद्रद्वारा आकृष्ट होकर सूर्य की ओर जाती है। दूसरी ओर नहीं जा सकती, इसी को केन्द्राभिकर्षणी शक्ति कहते हैं ॥

केन्द्रप्रसारणी शक्ति

जिस धर्म (स्वभाव) के प्रभाव से कोई पदार्थ स्वयंचालित नहीं चल सकता, एवं अन्यकर्तृक चालित होने पर अपने आप स्थिर नहीं हो सकता उस का नाम "जड़त्व" है। पृथिवी जड पदार्थ है, सुतरां इस में सृष्टिसमय ईश्वर ने जो ऋजुगमन शक्ति दी है, उसी के प्रभाव से यह सीधी चलती, परन्तु वह शक्ति सूर्य के आकर्षण से प्रतिहत होकर वक्रगति या वृत्ताभासपथ में चलती है। पृथिवी के ऋजुगमनार्थ शक्ति ऊपर कही गई है वही "केन्द्रप्रसारणी शक्ति है॥

पृथिवी का गोलचक्र

पृथिवी का आकार गोल है जो अनेक युक्तियों और प्रमाणों से सिद्ध है, परन्तु किन्हीं आधुनिक ग्रन्थकारों ने पृथिवी को समतल और चतुष्कोण लिखा है जो प्राचीन शास्त्रों एवं युक्ति से विरुद्ध होने से मानने योग्य नहीं। गोल होने में जो युक्तियां दी जाती हैं वे प्रायः स्कूल एवं छोटी २ पाठशालाओं के पाठ्य पुस्तकों में भी दी हुई हैं। इस लिये मैं केवल यहां प्रमाणों का उल्लेख करता हूं॥

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः। नहिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परिस्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ऋग्वेदे १।३३।८॥

आशयः-पृथिवी गोलाकार है, एवं इस का आधा भाग अर्थात् व्यास गोल होने के कारण सूर्य से प्रकाशित रहता, एवं आधा भाग अन्धकारावृत रहता है और सूर्य के आकर्षण पर यह भूगोल ठहरा है। पुनः—

आ प्रा रजांसि दिव्यानि पार्थिवा श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे। प्रबाहू अस्राक् सविता सवीमनि निवेशयन्प्रसुवन्नक्तुभिर्जगत् ॥ ऋग्वेदे ४।५३।३॥

आशयः–सूर्य द्युलोक एवं भूलोक आदि लोकों को अपने २ नियमों में रखता हुआ और दिन रात करता हुआ अपनी कील पर अवस्थित है। पुनः–

स वा एप न कदाचनास्तमेति नोदेति तं यदस्तमेतीति मन्यन्तेऽह्न एव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यते रात्रीमेवावस्तात् कुरुतेऽहः परस्तादथ यदेनं प्रातरुदेतीति मन्यन्ते रात्रेरेव तदन्तमित्वाथात्मानं विपर्यस्यतेऽहरेवावस्तात् कुरुते रात्रीं परस्तात् स वा एप न कदाचन निम्लोचति। ऐतरेय ब्राह्मणे १४। ६॥

इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण में भी लिखा है:–

सवा एप न कदाचनास्तमेयति। नोदयति। तद्यदेनं पश्चादस्तमयतीति मन्यन्ते। अह्न एव तदन्तं गत्वाथात्मानं विपर्य्यस्यतेऽहरेवाधस्तात् कृणुते रात्रीं परस्तात्। स वा एप न कदाचनास्तमयति नोदयति। तद्यदेनं पुरस्तादुदयतीति मन्यन्ते। रात्रेरेव तदन्तं गत्वात्मानं विपर्य्यस्यते रात्रिमेवाधस्तात् कृणुतेऽहः परस्तात्। सवा एप न कदाचनास्तमयति न ह वै कदाचन निम्लोचति। गोपथ ब्राह्मणे ९। १०॥

अर्थ–सूर्य न कभी छिपता (अस्त) और न निकलता (उदय) है। जो लोग सूर्य का अस्त होना मानते हैं वे दिन के अन्त होने पर अर्थात् रात्रि में पृथिवी के घूमने से पश्चिम से पुनः पूर्व में सूर्य को देखते हैं और सूर्य पृथिवी के इस भाग में दिन और दूसरे भाग में रात्रि को करता है। तब लोग सूर्य का उदय मानते हैं। इसी प्रकार जब दिन के अन्त को प्राप्त होकर सूर्य पश्चिम में दिखलाई देता है और भूमि के इस भाग में रात्रि और दूसरे भाग में दिन करता है तो लोग सूर्य का अस्त मानते हैं। इन्हीं उपरोक्त दोनों प्रमाणों से पृथिवी का गोलत्व, निराधारत्व एवं दिन रात का होना सिद्ध होता है। पुनः–

वृत्तभपञ्जरमध्ये कक्षापरिवेष्टितः खमध्यगतः। मृज्जलशिखिवायुमयो भूगोलः वर्त्तते सर्वतोवृतः॥ ६॥

कुसुमैस्तद्वद्धि सर्वसत्त्वैर्जलजैः स्थलजैश्च
भूगोलः । आर्यसिद्धान्ते गोलपादे ॥ ७ ॥

अर्थ-नक्षत्र चक्र के भीतर कक्षा से घिरा हुआ आकाश में पञ्चभूतात्मक (मृत्तिका, अग्नि, वायु, जल, आकाश) भूगोल अवस्थित है ॥ ६ ॥ एवं इस की सब ओर जिस प्रकार कदम्ब के फूल के सब ओर पंखड़ी होती हैं, उसी प्रकार पृथिवी के सब भाग में जल और स्थल में उत्पन्न होने वाले प्राणी रहते हैं ॥ ७ ॥ इसी प्रकार वराहमिहिर ने लिखा है-

पञ्चमहाभूतमयस्तारागणपञ्जरे महीगोलः ।
खेऽयस्कान्तान्तःस्थो लोह इवावस्थितवृत्तः ॥ १ ॥
तरुनगनगरारामसरित्समुद्रादिभिश्चितः सर्वः ॥

(पञ्चसिद्धान्तिका अ० १३)

अर्थ-मृत्तिका, वायु, जल, आकाश और पानी यह पञ्चतत्त्वात्मक भूगोल राशिचक्र के भीतर आकाश में गोलाकार अवस्थित है। जिस प्रकार चुम्बक के भीतर लोहे का गोला रहता है। इस भूगोल के चारों ओर पृष्ठ भाग वृक्ष, पर्वत, नगर, वाटिका, नदी और समुद्रादिकों से आच्छादित है। भास्कराचार्य ने भी लिखा है-

सर्वतः पर्वतारामग्रामचैत्यचयैश्चितः ।
कदम्बकुसुमग्रन्थिःकेसरप्रसरैरिव ॥

(सिद्धान्तशिरोमणि भुवन कोषे)

अर्थ-पृथिवी की सब ओर पर्वत बाग और ग्रामादि हैं जिस प्रकार कदम्ब के फूल की सब ओर पंखड़ी होती हैं ॥ पुनः-

समो यतः स्यात्परिधेः शतांशः । पृथ्वी च
पृथ्व्या नितरां तनीयान् ॥ नरस्य तत्पृष्ठग-
तस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा ॥

(सिद्धान्तशिरोमणी)

अर्थ-परिधि का शतांश (१०० वां हिस्सा) जिस प्रकार पृथिवीस्थ पुरुष को समतल दीख पड़ता है। इस का कारण यह है कि पृथिवी मनुष्य की

अपेक्षा बहुत बड़ी है। पुराणों में जो पृथिवी को चपटी लिखा है। उस का खण्डन भास्कराचार्य ने लिखा है–

यदि समा मुकुरोदरसन्निभा भगवती धरणी तरणिः क्षितेः। उपरि दूरगतोऽपि परिभ्रमन् किमु नरैरमरैरिव नेक्ष्यते॥ यदि निशाजनकः कनकाचलः किमु तदन्तरगः स न दृश्यते। उदगयन्ननु मेरुरथांशुमान्कथमुदेति च दक्षिणभागके॥ ११॥

अर्थ–यदि पृथिवी दर्पणोदर धरातल के तुल्य चपटी है तो मनुष्यों को ऊपर को भ्रमण करता हुवा सूर्य (सायङ्काल के पीछे) क्यों नहीं दीखता? यदि सूर्य मेरु की ओट में आजाता है तो मेरु क्यों नहीं दिखलाई देता? और यदि मेरु की आड़ से निकल कर सूर्य उदय होता है तो पूर्व उत्तर दिशा ही से सूर्योदय होना चाहिये क्योंकि मेरु उत्तर की ओर है। फिर (शीतकाल में) दक्षिणभाग से सूर्य का उदय क्यों होता है?

इस से यह मानना पड़ेगा कि पृथिवी ही की आड़ में सूर्य आजाता है। अर्थात् पृथिवी का जितना भाग सूर्य के सामने होता है उतने में दिन और जो ओट में आता है उतने में रात्रि होती है। इसी आशय का मन्त्र ऋग्वेद में आया है जिस पर सायणाचार्य ने भी ज्योतिषशास्त्र के अनुकूल ही भाष्य किया है–

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥ ऋ० सं० मं १। सू० ५० मं ५

भाष्यम्–हे सूर्य त्वं देवानां विशः मरुन्नामकान्देवान्मरुतो वै देवानां विश इति श्रुत्यन्तरात्। तान्मरुत्संज्ञकान्प्रत्यङ्ङुदेषि प्रति गच्छन्नुदयं प्राप्नोषि तेषामभिमुखं यथा भवति तथेत्यर्थः। तथा मानुषान् प्रत्यङ्ङुदेषि तेऽपि यथा अस्मदभिमुख एव सूर्य उदेतीति मन्यन्ते तथा विश्वं व्याप्तं स्वः स्वर्लोकं दृशे द्रष्टुं प्रत्यङ्ङुदेषि यथा स्वर्लोकवासिनो जनाः स्वस्वाभिमुख्येन पश्यन्ति

तथा उदेपीत्यर्थः। एतदुक्तं भवति लोकत्रयवर्तिनो जनाः सर्वे-ऽपि स्वस्वाभिमुख्येन सूर्यं पश्यन्तीति तथा चाम्नायते-तस्मात्सर्व एव मन्यते मां प्रत्युदगादिति (तै० ब्रा० ६।५।१)

आशयः-पृथिवीस्थ समस्त लोग जानते हैं कि सूर्य मेरे प्रति उदित हुआ अगर पृथिवी गोल न होती एवं सूर्य अपनी ही धुरी पर न घूमता तो ऐसी घटना कदापि न होती कि उत्तर मेरुनिवासी (देवता) लोग दक्षिण मेरु निवासी एवं अन्यान्यप्रदेशस्थ व्यक्तिगण को प्रतीत होता कि सूर्य का उदय मेरे सम्मुख होता है। लल्लाचार्य ने लिखा है कि:-

समता यदि विद्यते भुवस्तरवस्तालनिभा बहूच्छ्रयाः।
कथमेव न दृष्टिगोचरं नुरहो यान्ति सुदूरसंस्थिताः॥

अर्थ-यदि पृथिवी चपटी होती तो बहुत दूर स्थित ताड़ के समान ऊंचे ऊंचे पेड़ पूरे दृष्टिगोचर क्यों नहीं होते? अर्थात् दूरस्थित वृक्षों के केवल ऊर्ध्व भाग दृष्टि पड़ने का कारण यही है कि उन का नीचे का भाग पृथिवी की गोलाई की ओट में आजाता है॥

पृथिवी का आधार

पृथिवी किस के आधार पर ठहरी है इस में अनेक मत हैं-कोई कहता है कि पृथिवी शेषनाग के ऊपर है कोई बैल पर बतलाता है। एवं कोई कूर्म के पीठ पर कहता है इत्यादि। परन्तु वेदादि सत्य शास्त्रों में एवं आधुनिक विद्वानों ने निश्चय किया है कि सूर्य के आकर्षण से अपनी कक्षा में आकाश में अवस्थित है। प्रमाणः-

सत्येनोत्तभिता भूमिः। अथर्ववेदे कां० १४।१।मं १।

अर्थ-परमेश्वर ने भूमि को धारण किया है। पुनः-

स दाधार पृथिवीम्। यजुर्वेदे

अर्थः-उसी परमेश्वर ने पृथिवी को धारण किया है।

"उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम्। ऋग्वेदे"

सूर्य (उक्षा) की आकर्षण शक्ति पर पृथिवी आकाश में है। इसी का अर्थ न समझ कर किन्हीं लोगों ने लिखदिया है कि पृथिवी बैल के सींग पर है॥

"स नेमिचक्रमजरं विवावृत्त उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति।
सूर्यस्य चक्षुरजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥

ऋग्वेदे १। १६४। १४

आशयः-सूर्य को केन्द्र (मध्य) करते हुवे जितने लोक एवं पृथिवी दशों दिशा युक्त भ्रमण करती हुई अवस्थित है। इसी प्रकार सूर्य के अत्यन्त निकट बुध और शुक्र भी परिक्रमा करते हैं॥

मित्रो जनान्यातयति प्रजानन्मित्रो दाधार
पृथिवीमुत द्याम्। तैत्तरीय ब्रा० ३। ४। ११

आशयः-सूर्य सब लोकों को(सौर जगत्)अपनी आकर्षण शक्ति से नियम में रखता हुवा एवं पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है॥ पुनः-

मूर्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्यास्ततोऽन्यस्तस्याप्यन्योऽस्यै-
वमत्रानवस्था। अन्त्ये कल्प्या चेत्स्वशक्तिः कि-
माद्ये किन्नोभूमेः साष्टमूर्त्तेश्च मूर्त्तिः॥

(सिद्धान्त शिरोमणि भुवन कोषे)

अर्थः-यदि पृथिवी का कोई(जैसा कि पौराणिक लोग शेषनाग,मुसलमान लोग बैल पर मानते हैं)मूर्तिमान् धर्त्ता माना जावे तो उस धर्त्ता का कोई अन्य धर्त्ता मानना पड़ेगा और फिर उस का कोई दूसरा इसी प्रकार इस का कहीं अन्त न मिल पावेगा अर्थात् इस में अनवस्था दोष लगेगा एवं अन्त में यही मानना पड़ेगा कि पृथिवी अपनी ही शक्ति से स्थित है॥

आकृष्टिशक्तिश्च मही तया यत्स्वस्थं गुरु स्वाभिमुखं
स्वशक्त्या। आकृष्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात्
क्वपतत्वियं खे ॥ (सिद्धान्तशिरोमणि भुवनकोषे)

अर्थात्-पृथिवी अपनी आकर्षण शक्ति से भूतल के सब पदार्थों को अपनी ओर खींचती है इस लिये वे पदार्थ पृथिवी पर गिरते हुवे दिखलाई देते हैं? जब पृथिवी के समीप के सब पदार्थ उस की अपेक्षा बहुत छोटे होने के कारण उस की आकर्षण शक्ति से पृथिवी पर गिरते हैं तो पृथिवी कहां को गिर जावे? इस लिये यह शङ्का कि पृथिवी बिना आधार के कैसे रह सकती है? सर्वथा निर्मूल है॥

पृथिवी का भ्रमण

पृथिवी की गति दो प्रकार की है—आन्हिक और वार्षिक । रथचक्र जिस प्रकार मेरु दण्ड के ऊपर नियत घूमता है, उस की इस गति का नाम दैनिक गति है । एवं वह इस प्रकार प्रतिदिन अपनी धुरी पर घूमती २ सूर्य के चारों ओर एक वर्ष में पुनः जहां से चली थी वहीं आजाय इस को उस की वार्षिक गति कहते हैं ॥

इन्हीं दो प्रकार की गतियों से दिवा, रात्रि, ऋतु परिवर्तनादि नाना प्रकार के नैसर्गिक व्यापार सम्पन्न होते हैं। पृथिवी का जो भाग जिस समय सूर्य के सम्मुख होता है उसी भाग में दिन होता है एवं उसके विपरीत भाग में रात्रि होती है । वह प्रतिदिन पश्चिम से पूर्व को अपनी धुरी पर घूमती है, परन्तु लोग कहते हैं कि गगनस्थ सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि पूर्व दिशा में उदित होते हैं एवं पश्चिम दिशा में अस्तमित होते देखे जाते हैं वस्तुतः सूर्यचन्द्रादि नक्षत्रों को जिस प्रकार उदित एवं अस्तमित होते देखते हैं, उन का उस प्रकार उद्यास्त नहीं होता । केवल पृथिवी की गति के कारण ऐसा बोध होता है । किन्तु पृथिवी की यह गति हमारे दर्शन, श्रवण, स्पर्शन आदि किसी इन्द्रिय द्वारा अनुभूत नहीं होती । कोई उस को आंख से घूमता नहीं देखता, कान से भी कोई उस की गति के शब्द को नहीं सुनता, एवं उस की गति को कभी कोई स्पर्शेन्द्रिय द्वारा स्पर्श नहीं करता । इसी कारण कितने ही अनभिज्ञ लोग पहिले इस की गति को स्वीकार नहीं करते थे, एवं इस समय भी बहुत से लोग नहीं मानते । जो लोग किसी भी इन्द्रियद्वारा पृथिवी की गति का बोध नहीं करते वे पृथिवी की गति से दिवा, रात्रि, मास ऋतु आदि न मान कर, सूर्यादि आकाशस्थ अगण्य पदार्थ की प्रात्यहिक गति स्वीकार कर उन्हीं के पर्याक्रम से दिवा, रात्री, ऋतुपरिवर्तनादि मानते हैं। जिस कारण इन दो मतों के भिन्न दूसरा कुछ नहीं कहा जा सकता। अब विचारना चाहिये कि पृथिवी की गति से दिन रात्रि आदि स्वाभाविक घटना होती हैं या सूर्य एवं नक्षत्रादि आकाशस्थ पदार्थ प्रतिदिन पृथिवी की प्रदक्षिणा करते, इस से दिन रात आदि होते हैं किन्तु इन दोनों मतों को देखना चाहिये कि कौनसा मत असल (प्राकृत) है एवं कौनसा अप्राकृत है । एवं बहुत से ज्योतिर्विदों ने प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा इस की मीमांसा करके सत्यसंस्थापन करने के लिये पदार्थ विद्या द्वारा जिन प्रमाणों का आश्रय लिया है उन में से कतिपय प्रमाण उल्लिखित किये जाते हैं ॥

(१) यदि पृथिवी को स्थिर मान के सूर्यादि पदार्थ की प्रात्यहिक गति स्वीकार की जावे तो प्रत्येक नक्षत्र, ग्रह, उपग्रहादि की भिन्न २ प्रकार की गति न मानने से दिन रात का पर्याक्रम से होना सम्पन्न न हो सकेगा। सूर्यादि जो गगनस्थ पदार्थ २४ होरा में पृथिवी की प्रदक्षिणा करते जान पड़ते हैं वे पृथिवी के समान स्थित नहीं हैं। सुतरां तब सब समानगति से एक ही समय में पृथिवी की प्रदक्षिणा नहीं कर सकते। ग्रहगण व नक्षत्रगण पृथिवी से जो जितनी दूरी पर हैं उन की परस्पर की गति तत्तत्परिमाण सत्वर वेग से सम्पन्न होती है। एक समय में आकाशस्थ सकल नक्षत्रादि पृथिवी की प्रदक्षिणा कर सकते हैं। किन्तु भिन्न भिन्न नक्षत्रादि की इस प्रकार भिन्न भिन्न गति सिद्ध होने से कैसा असङ्गत व कहां तक असम्भव है, इस की ओर ध्यान देने से पृथिवी को अवश्य भ्राम्यमाण ही मानना पड़ेगा। नक्षत्रादि पृथिवी से इतनी दूर पर हैं जो उन की गति मन में विचारना व संख्या द्वारा निर्देश करना कठिन है। किन्हीं ज्योतिर्विद् पण्डितों ने गणित द्वारा देखा है कि जो ये सब दूरस्थित नक्षत्र जितने वेग से गमन करके पृथिवी की प्रदक्षिणा एक दिन में कर सकेंगे। उस से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड चूर्ण होकर परमाणुरूप होजावे। अति दूरस्थित नक्षत्रादि की बात अलग रहे, निकटस्थ सम्पूर्ण नक्षत्र सूर्यादि प्रतिदिन पृथिवी को प्रदक्षिण करें, इस में जितने वेग की आवश्यकता है उस को मन में विचारना कठिन है। एवं सृष्टि की प्रणाली के विरुद्ध है। ज्योतिर्विद्या द्वारा निश्चित हुआ है कि पृथिवी सूर्य से प्रायः ९५०००००० मैल दूर स्थित है। एवं अति निकटस्थ नक्षत्र प्रायः ३०००००००००००००० मैल दूरस्थित हैं। अत एव यदि सूर्य २४ घण्टे में पृथिवी को एक बार परिभ्रमण करे तो एक मिनट में उस को चार लाख मैल भ्रमण करना पड़ेगा। एवं अति निकटस्थ नक्षत्र को एक मिनट में १६०००००००००० मैल पथ पर्यटन न करने से किसी प्रकार सम्भव नहीं जो पृथिवी को एक बार परिभ्रमण कर सके। इसी प्रकार जो नक्षत्र जितनी दूर पर है वह यदि उतने वेग से न चले तो वह नक्षत्र किसी प्रकार पृथिवी को एक दिन में परिभ्रमण नहीं कर सकता। परन्तु वस्तुतः यदि नक्षत्रादि उस प्रकार महावेग से प्रतिदिन पृथिवी को प्रदक्षिण करता तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी तेज से चूर्ण २ होजाता। किन्तु इस प्रकार अमूलक कल्पना जो सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की सुशृङ्खल सृष्टि प्रणाली के साथ कितना असङ्गत एवं कहां तक असम्भव है सो कहना अत्युक्ति होगी। जो व्यक्ति इस सुनियम सृष्टिप्रणाली के प्रति एक बार किंचित्

दृष्टिपात करके देखें तो वे पुनः कभी उक्त प्रकार अमूलक कल्पना नहीं कर सकते। जिस असीम ज्ञानवान् अनन्त शक्तिमय पुरुष ने अनिर्वचनीय सुशृङ्खल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है वह क्या इस क्षुद्र पृथिवी की क्रिया सम्पादन के लिये उलटा नियम करेगा ? यह किसी प्रकार विश्वास योग्य नहीं। जब केवल एक पृथिवी की आन्हिक गतिद्वारा अनायास दिन रात मास ऋतु आदि सब घटना संघटित हो सकती हैं तो उस के लिये असीमस्थलस्थ असंख्य भयानक प्रकाण्ड नक्षत्रादि की भयङ्कर गति कल्पना करे यह आश्चर्य है। जो कार्य अनायास सिद्ध हो सकता है कोई उस की सिद्धि के लिये आडम्बर नहीं रचता। एव एव जो सामान्य बुद्धि वाले पुरुष के लिये नितान्त अकर्तव्य व असङ्गत कह कर बोध हो'ता है उस को किस प्रकार सर्वशक्तिमान्, ज्ञानाकर, आदि पुरुष, विश्वकर्मा, जगन्निर्माणक में असम्भव दोष आरोपण करके अपराधी होने का साहस करेगा॥

(२) सूर्य यदि पृथिवी को प्रतिदिन परिभ्रमण करता तो वह प्रति नियत भूमण्डल के मध्यभाग अर्थात् निरक्ष प्रदेश को वेष्टनपूर्वक भ्रमण करता। पदार्थ विद्या द्वारा विशारद पण्डितगण ने परीक्षापूर्वक निश्चय किया है कि जब तक एक जड़ पदार्थ अन्य जड़ पदार्थ को परिभ्रमण करता है उस समय दोनों पदार्थ समतलस्थित अर्थात् परस्पर इस प्रकार संस्थित रहते हैं जो सूत्र पात करने से दोनों एक ही रेखा में पतित होते हैं, एव वेष्टनकारी भ्राम्यमाण पदार्थ मध्यस्थित स्थिर पदार्थ को नियत एक निर्दिष्ट स्थान में होकर परिभ्रमण करता है। अत एव सूर्य यदि पृथिवी को प्रतिदिन परिभ्रमण करता तो उस की कक्षा अवश्य ही भूमण्डल के ठीक मध्यस्थान के ऊपर होकर जाती एवं उस को प्रतिदिन पृथिवी के ठीक पूर्व ओर उदित होता और पश्चिममें अस्त होता देखा जाता। परन्तु वस्तुतः प्रतिदिन ऐसी घटना नहीं होती। एक वत्सर में केवल दोही दिन सूर्य को भूमण्डल के ठीक मध्यभाग से उदित होकर ठीक मध्यभाग में अस्तमित होते देखते हैं। तद्भिन्न उस को छः महीना पृथिवी के दक्षिण पश्चिमांशमें अस्तमित होते देखते, एव अपर अर्धांश में पृथिवीके पूर्व उत्तरमें उदित एव पश्चिम उत्तरमें अस्तमित होते देखते हैं॥

सूर्य की प्रात्यहिक गति मानने से कभी उस का उदयास्त उक्त प्रकार से सिद्ध नहीं किया जा सकता। एवं तद्भिन्न विस्तर ध्रुव नक्षत्र का भी सूर्य की तरह उत्तरायण व दक्षिणायन देखा जाता है। अत एव यह सम्पूर्ण ध्रुव नक्षत्रगण के उत्तर दक्षिणायनद्वारा भी पृथिवी को प्रात्यहिक गति सिद्ध होती है॥

(३) वृहत वस्तु क्षुद्र वस्तु को कभी परिभ्रमण नहीं करता। जड़ पदार्थ की गति का ऐसा नियम है। बड़ा पदार्थ छोटे पदार्थ को क्यों नहीं परिभ्रमण करसकता, पदार्थ विद्यावित् पण्डितों ने चक्रावर्त्त गति प्रसङ्ग में विधि पूर्वक सिद्ध किया है कि पृथिवी की अपेक्षा सूर्यमण्डल तेरह लाख गुण से भी अधिक बड़ा है। अत एव सूर्य को पृथिवी का परिभ्रण करना किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत पृथिवी की ही गति अनायास सिद्ध होजाती है। एवं पृथिवी की गति स्वीकार न करने से दिन रात्रि आदि घटना सूर्य को पृथिवी की परिक्रमा से सिद्ध नहीं होती। पृथिवी वृत्ताभास पथ में वर्ष में एक बार भ्रमण करती है। इसी लिये ऋतुपरिवर्त्तन होता है। पृथिवी की कक्षा यदि मण्डलाकार होती तो वर्ष में भिन्न २ प्रकार ऋतु की घटना न होती। सूर्य के चारों तरफ परिभ्रमणकाल में पृथिवी सूर्यसम्बन्ध में भिन्न २ स्थान अवस्थित होने से भी भिन्न२ प्रकार ऋतु की घटना होती॥

(४) पण्डित लोगो ने साधारण गति के नियमों को समझ कर पृथिवी की आन्हिक गति का एक प्रत्यक्ष प्रमाण दिखलाया है कि जब कोई पदार्थ घूमता है तो उस का वेग अपने केन्द्र प्रदेश (बीच) की अपेक्षा दूरतर प्रदेश में अधिक होता है। इसी कारण जब किसी पर्वत पर से कोई वस्तु नीचे को गिराई जावे तो वह कुछ दूर पूर्वांश में गिरेगी। इस से स्पष्ट सिद्ध होता है कि यदि पृथिवी पश्चिम से पूर्व को भ्रमण न करती हो तो उच्चस्थान से द्रव्यादि फेंकने से वह ठीक नीचे न पड़कर क्यों कुछ पूर्व ओर गिरता है॥

(५) बुध ग्रह सूर्य से कभी२८ अंश से अधिक दूर नहीं जाता। एवं शुक्र ग्रह कभी ४८ अंश से अधिक दूर नहीं जाता। किन्तु यद्यपि वे पृथिवी को मध्य में रखकर परिभ्रमण करते तो भी कभी २ सूर्य से १८०० पर्यन्त दूर में जाते किन्तु ऐसी घटना क्या पहिले क्या अब कभी किसी ने नहीं देखी॥

(६) ग्रहगण कभी पूर्व ओर कभी पश्चिम ओर चलते देखते हैं और उन के गगनीय मार्ग में किसी किसी अंश में वे जिस प्रकार स्थिर हो जाते हैं, ऐसा बोध होता है किन्तु उन की गति की इस प्रकार विचित्रता क्या यथार्थ ही होती है सो नहीं। पृथिवी बुध शुक्र के गमन भाग के बहिर्भाग में रह कर सूर्य को परिभ्रमण करते हैं। इस लिये ऐसा बोध होता है। पृथिवी की गति हमारे इन्द्रियगोचर नहीं होती। ऐसा समझ कर इस को अचला

समझ लेना किसी प्रकार युक्तियुक्त नहीं । यदि कोई क्षुद्र जीव किसी बड़े वस्तु पर सवार होतो बड़े पदार्थ के घूमने या चलने से चढ़ा हुवा क्षुद्र जीव अपने आप किसी प्रकार उस की गति अनुभव नहीं कर सकता। जब कोई जहाज़ पर चढ़ा हुवा पुरुष जहाज़ में बैठा है और जब जहाज़ समुद्र गमन करता है तो उस समय नौकास्थ पुरुष उस की गति को नहीं जान सकता। समुद्रतीरस्थ अपर किसी स्थिर पदार्थ को लक्ष्य न करके आरोही कभी अपने जहाज़ की गति नहीं जान सकता है। इस लिये हम लोग पृथिवी की दैनिक गति अनुभव नही कर सकते, इस से उस को स्थिर मानना किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता॥

पृथिवी की आह्निक गति के कारण जो सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रादि प्रति दिन पूर्व दिशा में उदित होकर पश्चिम में अस्तमित देखे जाते हैं इस के अनेक प्रमाण हैं॥

जब कोई तरणी वा शकटादि यान द्रुत वेग से गमन करते हैं तो तन्मध्यस्थित आरोही तीरस्थ वा पार्श्वस्थ किसी वृक्षादि स्थिर पदार्थ के प्रति दृष्टिपात करने से वह अवश्य ही उन स्थिर वृक्षादि को अपनी विपरीत दिशा में जाते देखते हैं, इस में सन्देह नहीं। और सचल पदार्थ गति द्वारा जो अचल पदार्थ की गति का भ्रम होता है, इस में सन्देह नहीं॥

कोई २ कहते हैं कि यदि पृथिवी प्रतिदिन घूमती होती तो भूमण्डलस्थ जितने पदार्थ जीवजन्तु आदि हैं सब उस की गति से उलट पड़ते। यह शङ्का व्यर्थ है। वृहत् वस्तु सदैव छोटे वस्तु को आकर्षित करता है। पृथिवीस्थ जितने पदार्थ हैं उन की अपेक्षा पृथिवी बड़ी है इस सब वस्तु पृथिवी में आकृष्ट होकर रहते हैं। पृथिवी घूमते समय चाहे जिस अवस्था में रहे उस के ऊपर अवस्थित जीव जन्तु व अन्यान्य पदार्थ नियत उस में आकृष्ट होकर रहेगा। पृथिवी घूमती २ चाहे जिस दिशा में जावे हम लोग सदा अपने पैरों के नीचे पृथिवी व मस्तकोपरि आकाश को देखते रहेंगे। सुतरां पृथिवी की आह्निक गति द्वारा किसी प्रकार हमारा अवस्थान्तर अनुभूत या घटने की सम्भावना नहीं॥

कोई २ यह कहते हैं कि "पृथिवी की गति होने से एक बड़ा भयानक शब्द होता" यह शङ्का एक मात्र अमूलक है॥

हम लोग जो किसी वस्तु की गति का शब्द सुनते हैं उस का कारण यह है कि उस वस्तु का वायु के साथ घर्षण व अभिघात होने से यह शब्द उत्पन्न होता है। वह शब्द उसी वायु के सहकार से हमारे कानों में सुन

पड़ता है। पृथिवी शून्य के ऊपर अवस्थित है, वहां वायु या अन्य कोई पदार्थ नहीं। सुतरां उस का किसी के साथ घर्षण वा अभिघात की सम्भावना नहीं एवं घर्षण वा अभिघात होने से भी वायु का प्रभाव होने से तज्जनित शब्द हमारे कर्णगोचर नहीं होता। शून्य में बाधकता शक्ति नहीं। यदि यह शक्ति रहती तो शून्य में पृथिवी न ठहर सकती। जब पृथिवी के अवस्थान में शून्य प्रति बाधकता नहीं उत्पन्न होती है। वह उस गति का प्रतिवादी नहीं हो सकता। एवं गाड़ी, घोड़ा, नौका प्रभृति सवारी द्वारा गमन काल में जो प्रबल वायु का शब्द सुन पड़ता है। ऐसा समझ कर यह कहना कि पृथिवी की गति से भी शब्द होना चाहिये, यह असम्भव है। कारण यह है कि वायु की प्रचण्ड गति समय पर्वत, अट्टालिका, वृक्षादि जितने वस्तु हैं, अपनी २ अवस्थानुसार वायु की गति का अवरोधक (रोकने वाले) होते हैं-तो उस से अवश्य ही परस्पर द्रव्यों के संस्पर्शजनित शब्द उत्पन्न होते हैं। उस का प्रमाण यह है जो जिस स्थान में अधिक वृक्षादि रहते हैं, वहां वृक्ष के साथ वायु के अभिघात से अधिक शब्द होता है। जहां वृक्षादि थोड़े होते हैं, वहां शब्द भी कम होते हैं॥

पुनः लोग कहते हैं कि "यदि पृथिवी में गति होती तो पृथिवी के गति मार्ग के विपरीत ओर वायु की गति का अतिशय पराक्रम होता" यह शङ्का भी अग्राह्य है। यदि भूवायु स्थिर रहता और पृथिवी उस के बीच होकर या उक्त भूवायु की स्वतन्त्रगति एवं पृथिवी की स्वतन्त्रगति होती किंवा भूवायु पृथिवी के आकर्षण के आधीन न होता तो पृथिवी की गति मार्ग के विपरीत वायु का वेगवान् प्रवाह होना सम्भव होता। पृथिवी की मध्याकर्षण शक्ति में अन्यान्य वस्तु उस में जिस प्रकार आकृष्ट होती हैं उसी प्रकार वायु भी आकृष्ट होता है। पृथिवी के आकर्षणाधीन होने से पृथिवी की गति जिस प्रकार हो जाती है वायु की भी गति उसी प्रकार नित्य होने पर भी क्षिति की गति के विपरीत दिशा में वायु गति नहीं होती॥

जब कोई पैदल या गाड़ी आदि पर चढ़ कर जाता है, उस समय जो गाड़ीआदि की गति प्रतिकूल वा अनुकूल में वायु की गति है अनुभव होती है उस का कारण यह है कि गाड़ी आदि की एवं वायु की भिन्न२ गतिय परस्पर में एक दूहरे के आधीन नहीं॥

कोई २ यह कहता है कि "यदि पृथिवी प्रति सेकेण्ड एवं प्रति मिनट बहुत मील पथ पर्यटन करती तो पृथिवीस्थ बड़े २ मन्दिर तथा मकानादि वा स्तम्भादि एवं किसी उच्च स्थान से कोई पदार्थ फेंकने से वह उस के जड़ में नहीं गिरता। पृथिवी की गति वशात् अवश्य ही वह उच्च स्थान से बहुत दूर अलग गिरता। एवं पक्षी प्रभृति उड़ने वाले खेचर जीव सब जिस प्रदेश होकर उड़ते हैं, पृथिवी द्रुत वेग के अनुरोध से वे वहां से बहुत दूर पीछे पड़ जाते, जिस कारण वह फेंका हुआ पदार्थ उड्डीयमान खेचर जीवगण पृथिवी के साथ समान वेगमें किसी प्रकार नहीं चल सकते। किन्तु वस्तुतः कभी ऐसी घटना दृष्टिगोचर नहीं होती। स्तम्भादि उच्च स्थानसे कोई पदार्थ गिरने या किसी पदार्थ के फेंकने से वह उस की जड़ में गिरता है। एवं पक्षी प्रभृति खेचर प्राणी सब आकाश मार्ग में उड़कर अनायास पृथिवीके साथ २ चले जाते हैं।"

यह अमूलक आपत्ति किसी काम की नहीं। जब दो पदार्थ एकत्र रहते हैं, तब एक की गति से दूसरे की गति सिद्ध होती है। घोड़े के गमन से अश्वारूढ़ का गमन सिद्ध होता है। जहाज़ के गमन से जहाज पर चढ़े व्यक्ति का गमन सिद्ध होता है। एवं शकट की गति से गाड़ी पर सवार का गमन सिद्ध होता है। घोड़ा रथ नौका आदि से यदि कोई पदार्थ भूतल में या जल में गिर पड़े तो जब तक वह भूतल या जल में नहीं गिरता तब तक अश्व रथादि के साथ २ समान गति से चला जाता है, इसी कारण स्थिर रथ व अचल नौका से कोई पदार्थ फेंकने से जैसे वह इस रथ व नौका के ठीक नीचे गिरता है। इसी प्रकार सचल नौका व गमनशील रथ से कोई वस्तु गिरने या फेंकने से भी वह ठीक उस के नीचे पड़ता है। इस लिये पृथिवी प्रतिहोरा पश्चिम से जितनी दूर पूर्व की ओर जाती है, पृथिवीस्थ सम्पूर्ण पदार्थ के प्रति होरा उतना ही दूर गमन सिद्ध होता है, स्तम्भ से गिरी हुई ईंट उस के मूल में गिरती है, एवं आकाशस्थ खेचर जीव जन्तु पीछे नहीं पड़ते॥

पृथिव्यादि लोकों का भ्रमण

पृथिवी के भ्रमण में युक्तियां लिखी जा चुकी हैं, अब प्रमाण लिखे जाते हैं—

वि सामना मिषिरामिन्द्रभूमिं महीमपारां सदने ससत्थ।
अस्तभ्नाद्द्यां वृषभोअन्तरिक्षमर्षन्त्वा पस्त्वयेऽमसूताः॥
(ऋग्वेदे ३। ३०। ९)

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरोवसन्तः। ऋ-
तवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम्॥

(अथर्ववेद १२ । १८ । ३६)

आशय-हे भूमे ! तुम्हारी वार्षिक गति के कारण ग्रीष्म, वर्षा, शरत, हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतु होते हैं ॥ और भीः-

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ यजुर्वेदे अ० ३ । मं० ६ ॥

आशय-यह पृथिवी जल को प्राप्त होकर अर्थात् जल के सहित अन्तरिक्ष में आक्रमण करती है, अर्थात् अपनी धुरी पर घूमती है और सूर्य के भी चारों ओर घूमती है ॥ पुनः-

या गौर्वर्त्तनिं पर्य्येति निष्कृतं पयोदुहाना व्रतनीर-
वारतः । सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्ध-
विषा विवस्वते ॥ ऋग्वेदे अ० ८ । २ । व० १० मं०१ ॥

आशय-जो पृथिवी सदा अनन्त रस फल फूलादि पदार्थों से प्राणियों को करती तथा अपने नियम का पालन करती, परमेश्वर की महिमा का उपदेश करती, दानी और अच्छे लोगों को और विद्वानों को नाना प्रकार के सुख देती, अपनी कक्षा में सूर्य की चारों ओर घूमती है ॥

पृथिवी के अन्यान्य नामों में "गौ" भी नाम है । जिस की निरुक्ति निरुक्त में की गई है-

गौरिति पृथिव्या नामधेयं यद्दूरं गता भवतीति ॥

(निरुक्ते २ । २१)

आशय-"गौ" पृथिवी का नाम है, जो दूर तक चलाई जाती है (सूर्य के आकर्षण से) । इसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि-

भ्रमतां सर्वजगतां नाभिभूतेन भास्वता । समुद्रादिवनो-
पेता सा रुरोह मही नभः ॥ गगनं चाखिलं ब्रह्मन् स-
चन्द्रग्रहतारकम् । अधोगतं महाभाग बभूवाक्षिप्रमा-
कुलम् ॥ मा० पु० अध्याय १०६ श्लोक ४२

अर्थ–सूर्य इस समस्त विचरणशील ज्योतिष्क गणो के नाभि (केन्द्र) स्थान में है और वह जब अपने केन्द्र पर भ्रमण करता है, तब अन्यान्य ज्योतिष्कगण इस की आकर्षण शक्ति से आकृष्ट हो,अपने २ हिसाब पर घूमते हैं। अतएव समुद्र पर्वत और वनादि समेत यह समस्त पृथिवी घूम के आकाश में चढ जाती है और चन्द्र ग्रह तारागण विशिष्ट गगनमण्डल आक्षिप्त और आकुल होके नीचे के भाग में चला आता है ॥ इसी प्रकार आर्यभट्ट ने तो अन्यान्य ग्रहो के भगण वर्णन मे पृथिवी का भी भगण लिखा है –

युगरविभगणा.ख्युघृशशिचयगियिङुशुछ्लृ कुङिशि
बुणलृख्षृप्राक ॥ (आर्यसिद्धान्ते देशगीतिकायाम्)

अर्थ–एक महायुग मे पृथिवी के १५८२२३७ भगण पूर्व से पश्चिम चलने मे होते है ॥ यदि पृथिवी न भ्रमण करती होती तो आर्यभट्ट इस के भगण क्यो लिखते । इस प्राचीन ज्योतिषशास्त्र के विरुद्ध अन्यान्य आधुनिक ज्योतिष के ग्रन्थो में उक्त पृथिवी के भगण को "भू भगण" के स्थान में "भ भगण" (नक्षत्रभगण) लिखे हैं अर्थात् पृथिवी को अचला एव राशिचक्र वा भचक्र को सचल सिद्ध करने के लिये ॥

इसी प्रकार आगे चलकर आर्यभट्ट फिर लिखते हैं कि–

प्राणेनैति कलां भूः । आर्यसि० देशगी० आर्या ४ ॥

अर्थ–पृथिवी की गति कलात्मिका (Minute) होती है अर्थात् कला २ करके चलती है । इस पाठ को आधुनिक ज्योतिष के ग्रन्थकारो ने बदल कर अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये ऐसा पाठ कर दिया है–"प्राणेनैति कला भ" अर्थात् राशिचक्र (भ=राशिचक्र) कला २ करके चलता है ॥

यह पाठ ब्रह्मगुप्त के समय तक ठीक था,क्योकि ब्रह्मगुप्त ने अपने ब्रह्म सिद्धान्त में पृथिवी के भ्रमण का खण्डन किया है, उस में लिखा है कि–

प्राणेनैति कलां भूर्यदि कुतो व्रजेत् कमध्वानम् ।
आवर्त्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात् ॥
(ब्रह्मसिद्धान्त अध्याय ११)

अर्थात्–यदि पृथिवी कला २ करके चलती है तो किस रास्ते से कहा जाती है ? यदि पृथिवी चलती है तो कोठे आदि उच्च स्थान क्यों नहीं गिर जाते ? ॥ पुन आर्यभट्ट लिखते है कि –

अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत् ।
अचलानि भानि तद्वत् सपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥
(आर्यसि० गोलपाद)

अर्थ–जिस प्रकार नौका में बैठा हुआ मनुष्य किनारे की स्थिर चीजो को दूसरी ओर को चलते हुये देखता है । ऐसे ही मनुष्यो को सूर्यादि नक्षत्र जो स्थिर हैं, पश्चिम की ओर चलते हुए दीखते है और पृथिवी स्थिर मालूम होती है, परन्तु वास्तव में भूमि ही चलती है। पुन आर्यभट्ट लिखते हैं–

भपञ्जरः स्थिरोभूरेवावृत्यावृत्य प्रातिदैवसिकौ उदयास्तमयौ सम्पादयति ग्रहनक्षत्राणाम् । (आर्यसिद्धान्त गोलपाद)

अर्थ–सूर्यादि सब नक्षत्र स्थिर है, पृथिवी ही बार २ अपनी धुरी पर घूम कर प्रति दिवस इन के उदय और अस्त का सम्पादन करती है और अमरकोष में(अङ्गारक कुजो भौमो लोहिताङ्गे महीसुत) मङ्गल ग्रह के नामो में "महीपुत्र" वा "महीज" नाम लिखा है, इस का कारण यही जान पड़ता है कि पृथिवी की कक्षा (भ्रमण मार्ग) के बाद मङ्गल की कक्षा है । इसलिये मही से उत्पन्न मङ्गल को लिखा है, यदि पृथिवी न चलती होती तो उस के भ्रमणमार्ग की व्यवस्था ऐसी क्यो लिखी जाती ।।

पृथिवी भ्रमण में अर्वाचीन ग्रन्थकारो की सम्मति

वराहमिहिर ने लिखा है –

भ्रमति भ्रमस्थिते क्षितिरित्यपरे वदन्ति नोडुगणाः ।
यद्येवं श्येना न खात्पुनः स्वनिलयमुपेयुः ॥ ६ ॥

अन्यच्च–

भवेद्भूमेरह्नाभ्रमरंहसाध्वजादीनाम् । नित्यं पश्चात् प्रेरणं यथाल्पगा स्यात् कथं भ्रमति ॥७॥ पञ्चसि०अ०१३॥

अर्थ–जिस प्रकार लोहार के भ्रमयन्त्र स्थित लोहे का गोला घूमता है। उसी प्रकार भ्रमयन्त्र में ठहरी हुई सी पृथिवी घूमती है, नक्षत्रगण नही । इस प्रकार बहुत से आचार्यो का मत है, (खण्डन) परन्तु यदि पृथिवी भ्रमण करती है तो आकाशगामी पक्षिगण अपने २ घोंसले को नहीं पाते अर्थात्

पृथिवी को घूमती मानते तौ पक्षियो के घोसले (पृथिवी के भ्रमण से) अपनी पहिली जगह को छोड कर दूसरी जगह मे होजावें, इस लिये पक्षिगण अपने घोसले को नहीं पा सकते और यदि एक ही दिन मे पृथिवी का भ्रमण हो तौ भ्रमण वेग से कोठे मन्दिरादि की पताकादि का नित्य पश्चिमाभिमुख गमन हो। यदि कहो कि पृथिवी की मन्द गति के कारण ऐसा होता है तो एक ही दिनमे मन्द गति से पूरा भ्रमण क्यो कर होता है ॥

इस के टीकाकार श्री महामहापाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी प्रोफेसर (ज्योतिष के) संस्कृत कालिज बनारस लिखते हैं कि –

एतेन वराहमिहिरेण भूवायुसहितायाः
पृथिव्याः प्राग्भ्रमणं न युद्धमिति ज्ञायते ॥

पुन –

ध्वजादीनां पश्चिमाभिमुख सञ्चलनमिदमपि खण्डनं भूवायु सहितायाभूमेः प्राग्भ्रमणेन व्यर्थमेवास्तीति ज्ञेयमिति ॥

अर्थात्–इस से मालूम होता है कि वराहमिहर को पृथिवी का भूवायु के सहित भ्रमण करना समझ में नहीं आया ॥

और यह जो पताका का पश्चिमाभिमुख सचलन रूप खण्डन किया है यह भी पृथिवी भूवायुस हित घूमने के खण्डन में व्यर्थ ही है ऐसा जानना इत्यादि॥

इस से पाठकगण भली भांति समझ जायेंगे कि उक्त महामहोपाध्याय जी भी पृथिवी का भ्रमण युक्ति और प्रमाण युक्त समझते हैं एव इस के पक्षपाती हैं और यह प्राचीन सिद्धान्त है ॥

जयति स जगदीशो यस्य नानाविधानामचरचरच-
यानां निर्मितौ क्वापि नाभूत्। कथमपि लघु साध्यं क-
र्हिचिद् गौरवेण विरचितमिह नूनं चेतनं वा जडं वा ॥



अथ प्राचीन ज्योतिःशास्त्राचार्याशयवर्णनम्

इह खलु ग्रहभ्रमणविषये द्वे मते तावत् सुप्रसिद्धे। एकं भूः स्थिरा तामभितश्च सूर्यादयोग्रहा भ्रमन्तीति। अन्यच्च-

रविरचलस्तं परितः सभूमयः सर्वे ग्रहाः पर्ययं कुर्वन्ति ॥

तत्राद्यमतवादिनः प्रत्येकं ग्रहः पूर्वदिशं चरन् यावता कालेन भुवमभित एकं भगणं पूरयेत् तस्मात् कालादनुपातेन ग्रहस्यैकदिनसम्बन्धिनीं समानां गतिं निश्चित्य तां मध्यमामभिदधानास्तस्याः सकाशादभीष्टकाले खेटस्य भचक्रेऽवगतं स्थानं मध्यमग्रहशब्देन व्यवहरन्ति। एतन्मते रविज्ञशुक्राणां वसुमत्याः समन्तादेकेनैव हायनेनैकं भ्रमणं भवतीति तेषां मध्यमा गतिस्तुल्यैव जायते। तथैव मध्यमं स्थानमपि

अन्त्यमतवादिनस्तु प्रत्येकं खेटस्य सूर्यमभितः परिभ्रमणकालमवगम्य तत्र मते बुधशुक्रयोर्मध्यमे गती स्थाने चाद्यमतीयाभ्यां गतिभ्यां स्थानाभ्यामन्योन्यं च भिद्येते। सूर्यमभितो भगणपूर्तिकालस्य भेदात्। सूर्यभूम्योरन्तरे कदाचिदप्यसंचरतां कुजजीवरविजानां तु मध्यमगतयः स्थानानि चाद्यमतीयाभ्योगतिभ्यः स्थानेभ्यश्च न भिद्यन्ते यतस्ते प्रत्येकं तरणिं धरणिं च तुल्येनैव कालेन परिभ्रमन्ति॥

तत्र भारतवर्षीयाः सकलमूलग्रन्थकाराः सर्वे ग्रहास्तरणिं परितोभ्रमन्तीत्यभिप्रेत्य ग्रहपातभगणान् निरणायिपतेत्येतदुपपादनार्थमुच्यते ॥

द्वयोरपि मतयोर्वादिभिर्विक्षेपकेन्द्रार्थं मन्दस्पष्टे ग्रहे पातस्य योजनमङ्गीक्रियते । ग्रहाणां विक्षेपकेन्द्रमप्युभयत्र समानम् । तत्र ये मध्यमा ग्रहा उभयमतेऽपि समाना अत एवस्वस्वमन्दफलसंस्कृताअपि–

भाषार्थ–

प्राचीन ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों का आशय वर्णन

इस भारतवर्ष में ग्रहो के भ्रमण विषय में दो मत हैं। एक पृथिवी अचला और इस की चारो ओर सूर्य एव अन्यान्य ग्रह भ्रमण करते हैं। दूसरा सूर्य अचल और उस की चारो ओर सब ग्रह भ्रमण करते हैं॥

इन में प्रथम वादिगण प्रत्येक ग्रह पूर्व दिशा को चलते हुवे जितने काल में भूमि की चारो ओर एक भगण पूरा करते हैं, उस काल से अनुपातद्वारा ग्रह के एक दिन सम्बन्धि समानगति का निश्चय कर, उस की "मध्यमगति" सज्ञा रक्ख एव उस से इष्ट काल में ग्रह का राशिचक्र में स्थान निश्चय करते हैं। जिस को "मध्यग्रह" कहते हैं। इस मत के अनुसार सूर्य बुध,शुक्र,पृथिवी का एक ही वर्ष में पूरा भ्रमण होता है। उन की मध्यमगति तुल्य ही बोध होती है। इसी प्रकार मध्यम स्थान भी॥

और अन्त्य मतवादिगण सौ प्रत्येक ग्रह का सूर्य की चारो ओर काल को जान कर इस मत में बुध, शुक्र के मध्यमगति और स्थान प्रथम वादिगण के गति और स्थान में एक दूसरे से भेद पड़ता है। सूर्य की चारो ओर भ्रमण पूर्तिकाल के भेद के कारण से सूर्य और भूमि के अन्तर कभी भी बिना चले मङ्गल, बृहस्पति और शनि के मध्यमगति और स्थान प्रथम वादिगण के गति और स्थान से नहीं भेद पड़ता। जिस कारण प्रत्येक ग्रह सूर्य और पृथिवी इन दोनो की चारो ओर परिभ्रमण समान ही काल में करते हैं।

उन में से भारतवर्षीय सब मूल ग्रन्थकारो का यह मत है कि सब ग्रह सूर्य की चारो ओर परिभ्रमण करते हैं। इसी अभिप्राय से यह पात भगणो का निर्णय करने के विचार से इस की उपपत्ति कही जाती है। दोनो मत वादिगण विक्षेप केन्द्र के लिये मन्द स्पष्ट ग्रह में पात का योग करना स्वीकार करते हैं। ग्रहो के विक्षेप केन्द्र भी दोनो मतो में समान हैं। उन में जो मध्यम ग्रह हैं, वे दोनो मत में तुल्य हैं। अतएव अपने २ मन्द फल सस्कृत ग्रह भी–

साम्यं न जहति तेषां पाता मतद्वये तुल्या एव स्युः। विक्षेपकेन्द्रस्योभयत्र तुल्यत्वात्। यथा कुज गुरु शनीनाम्। अतएव तेषां पठिताः पातभगणा अप्युभयत्र समानाः। मध्यमौ बुधशुक्रौ त्वाद्यमते मध्यमसूर्यतुल्यौ। अन्त्यमते च मूलग्रन्थोक्तशीघ्रोच्चसमानौ यत

एं तन्मते बुधस्य किंचिदूनाष्टाशीति सावनदिनैरेकं भगणं पूरयतः प्रत्यहं स्वकक्षायां द्वात्रिंशद्विकलाधिकपञ्चचत्वारिंशदुत्तरशतद्वयमितकलारूपा गतिः शुक्रस्य चेपन्न्यूनैः पादोनतत्त्वदस्रैः कुदिनैरेकं पर्ययं कुर्वतोऽनुदिनं निजमार्गे विकलाष्टकाधिकपणवतिकलात्मिका मूलग्रन्थेषु तत्तच्छीघ्रोच्चगतित्वेनोपन्यस्तेति तयोः पातौ नोभयमते तुल्यौ। विक्षेपकेन्द्रस्य तुल्यत्वेऽपि मध्यमस्य भेदात्। अतएव तयोः पातभगणाभ्यां मध्येनोभयत्र तुल्याभ्यां भाव्यम्। तावेतौ पातावस्मन्मूलग्रन्थकारैर्मन्दस्पष्टयोर्बुधशुक्रयोर्न प्रक्षिप्येते। अपि तु मन्दफलसंस्कृते तत्तच्छीघ्रोच्च इत्यतः स्फुटमेतदवगम्यते यत् पठितेभ्यः सूर्यकेन्द्रकभ्रमणभगणाविरुद्धेभ्यो भगणेभ्य उत्पन्नेषु मध्यमेषु कुजजीवरविजेषु प्रक्षेपयोग्यं तद्विरुद्धेभ्य उत्पन्नयोश्च बुधभार्गवयोः प्रक्षेपायोग्यं तत्तच्छीघ्रोच्चे च प्रक्षेपयोग्यं पातं साधयन्तः पठिता ग्रहपातभगणा मूलोक्तबुधशुक्रशीघ्रोच्चरूपमध्यमबुधशुक्रसम्पादकतरणिकेन्द्रकभ्रमणवादिमतीया इति। कथमन्यथा मध्यमबुधशुक्रप्रक्षेपयोग्यापातसम्पादकाः शीघ्रकेन्द्रभगणाधिकाः पातभगणा न पठेरन्। अतएव भौमादीनां पञ्चानामपि ग्रहाणां सूर्यकेन्द्रकं भ्रमणं मूलकाराणामभिमतमित्यवसीयते। अन्यथा तन्मतीयपातभगणपठनानौचित्यात्॥

ननु ज्ञशुक्रयोः सूर्यकेन्द्रकं भ्रमणमस्तु मूलकाराणा-

मभिमतम् । आद्यमतविरुद्धानां तयोः पातभगणानां पठनात्। कुजजीवरविजानां तु भूमिकेन्द्रकमेव स्यान्न सूर्यकेन्द्रकम्। तत्पातभगणानामाद्यमताविरुद्धत्वादिति चेन्न । रविकेन्द्रकभ्रमणास्वीकारे सूर्यस्य भौमादिशीघ्रोच्चत्वानुपपत्त्या रविकेन्द्रकभ्रमणस्यैव मूलकाराभिप्रेतत्वात् ॥

भावार्थः-तुल्यता नहीं छोड़ते उन के पात दोनों मतों में तुल्य ही हैं। विक्षेप केन्द्र दोनों मतों में तुल्य होने के कारण। जिस प्रकार मङ्गल, गुरु, एवं शनि का। अतएव उन के कहे हुवे पात भगण भी दोनों मतो में तुल्य हैं। मध्यम बुध और शुक्र तो आद्य मत में मध्यम सूर्य के तुल्य हैं और अन्यमत में तो मूल ग्रन्थोक्त शीघ्रोच्च के समान हैं। जिस कारण इस मत में बुध का कुछ न्यून ८०सावन दिन में एक भगण पूरा होता है। प्रतिदिन अपनी कक्षा में २४५ कला ३२ विकला चलता है और शुक्र तो कुछ न्यून २४२ सावन दिन में एक वार घूम आता है और प्रतिदिन अपने मार्ग में ९६ कला ८१ विकला चलता है (अपनी धुरी पर) मूल ग्रन्थों में उस को शीघ्र च गति कहकर लिखा है उन के पात दोनों मतों में तुल्य नहीं है। विक्षेप केन्द्र के तुल्यत्व में भी मध्यम के भेद के कारण। अतएव दोनो के पात एवं भगणद्वारा भी दोनों मतो से दोनों तुल्य नहीं होना चाहिये। ये दोनों पात हमारे मूल ग्रन्थकारों द्वारा मन्द और स्पष्ट के बुध और शुक्र के प्रक्षिप्त नहीं किये जाते हैं, अर्थात् इन का विक्षेप नहीं होता ॥

प्रत्युत मन्दफल संस्कृत में उस २ शीघ्रोच्च में साफ़ २ जान पड़ता है जो कहे हुवे सूर्यकेन्द्रक भ्रमण भगण अविरुद्ध भगण से उत्पन्न मध्यम मङ्गल बृहस्पति, सूर्य में प्रक्षेप योग करना और उन के विरुद्ध उत्पन्न बुध और शुक्र के प्रक्षेप को नहीं जोड़ना और उस के शीघ्रोच्च में प्रक्षेप योग करना पात को स्थिर करता हुवा कहे हुवे ग्रहपात भगण मूलोक्त बुध, शुक्र शीघ्रोच्च रूप मध्यम बुध, शुक्र सम्पादक सूर्यकेन्द्रकभ्रमणवादिगण के मतानुसार हैं। नहीं तो क्यों नहीं मध्यम बुध, शुक्र प्रक्षेप योगपात सम्पादक शीघ्रोच्च केन्द्र भगण

अधिक पात, भगण कहने चाहियें। इस लिये भौमादि ५ ग्रहों के सूर्यकेन्द्रक भ्रमण मूलग्रन्थकारों का अभिप्राय था। नहीं तो उन के मतानुसार पात-भगण लिखना अनुचित था। मान लो कि बृहस्पति शुक्र का सूर्यकेन्द्रक भ्रमण मूलग्रन्थों का अभिप्राय हो। आद्यमत के विरुद्ध उन के पातभगण पाठ से। मङ्गल बृहस्पति एव शनि का तो भूमिकेन्द्रक ही हो, सूर्य केन्द्रक नहीं, यदि इस पातभगण के आद्यमत के अविरुद्ध हो सो नहीं। सूर्यकेन्द्रक भ्रमण न मानने से सूर्य का भौमादि शीघ्रोच्चत्व की अनुपपत्ति द्वारा सूर्यकेन्द्रक भ्रमण का॥ तथाहि–

भूमेरतिदूरोग्रहकक्षायाः प्रदेशो ग्रहस्य शीघ्रोच्चम्।
" उच्चस्थितो व्योमचरः सुदूरे
नीचस्थितः स्यान्निकटे धरित्र्याः "

इत्युक्तत्वात् कक्षान्तर्गताया भूमेर्निर्गतया केन्द्रं स्पृशन्त्या रेखया स्पृष्टः कक्षाप्रदेश एव च भूमेर्दूरतरः स च रवेः केन्द्रगतत्वाभावे रविसम्मुख एव किमिति स्यात्केन्द्राति-रिक्तस्थलस्थस्य रवेः केन्द्रसमानगतिकस्य मूलकृदभिप्रेतत्व-कल्पनमपेक्ष्य तु रवेरेव केन्द्रत्वकल्पनाया लघीयस्या मूलकृ-दभिप्रेतत्वकल्पनमुचितम्॥

न च सूर्यमभितो ग्रहभ्रमणमभिमतमाद्याचार्याणां भूमिं परितो भ्रमणप्रदर्शनमसंगतमिति वाच्यम्। लोक-प्रतीत्यनुसृतये लाघवेन गोलस्थित्यवगतये च सूर्यधर्माणां धरण्यामारोपणस्य तैरङ्गीकरणात्॥

तदेवमारोपरसिका आचार्या बोधलाघवं लोकप्रतीतिं चानुसरन्त एव कल्पनालाघवेन सिद्धेऽपि तरणिसहितस्य भपञ्जरस्य धरण्याश्चाचलत्वचलत्वे अन्योन्यस्मिन्ना-रोप्यैव तरणिं भचक्रं च चलं धरणिं चाचलां प्रदर्शया-

चक्रुरित्यपि प्रतीयते। भवति हि लाघवमयं रविः प्रातस्तत्रस्थ इदानीमत्रास्तीति बोधयितुम्। जानन्ति चैवमेव लोकाः। एवं रवेराश्यन्तरसंचारमपि। कल्पनायां तु भवत्येव तरणेर्धरणिं परितो भ्रमणस्याङ्गीकरणे तरणिं परिभ्रमतां व्योमचारिणामपि भुवमभिभ्रमणमनायत्या स्वीकृतमिति गौरवम्। मतान्तरे च धरणेरेकस्या एवेति लाघवम्॥

तदेवं भूमेर्मूलोक्तस्य भचक्रभ्रमणस्य सजातीयं स्वाक्षं परितो भ्रमणं रविभ्रमणस्य सजातीयं क्रान्तिवृत्ते भ्रमणं च मूलकाराणामभिप्रेतमिति सिद्धम्॥

स एष विषयोऽर्वाचीनैर्ग्रन्थकारैर्न व्यज्ञायि। यतस्तेषु केचन कुजगुरुरविजेषु पातं संयोज्य साधिताद्‌ विक्षेपकेन्द्राच्छरस्यानयनमुपलब्ध्यतिरिक्ता—

भावार्थ—मूलग्रन्थकारो के अभिप्राय से उसी प्रकार, भूमि से अतिदूर ग्रहकक्षा का प्रदेश ग्रहो का शीघ्रोच्च होता है॥

"उच्चस्थित आकाशगामी अत्यन्त दूर मे एव नीचस्थित होने पर पृथिवी के निकट" ऐसा करने पर कक्षान्तर्गत भूमि से निकला केन्द्र को छूती हुई रेखा से स्पर्श करता हुवा कक्षाप्रदेश में भी भूमि अधिकतर दूर और वह सूर्य के केन्द्र गतत्व के अभाव से सूर्य सम्मुख ही क्या हो। केन्द्रातिरिक्तस्य स्थल कर सूर्य के केन्द्र समानगतिक का मूलग्रन्थकार के अभिप्राय की कल्पना की अपेक्षा करके सूर्य ही केन्द्रत्व थोड़ी कल्पना करके मूलग्रन्थकार का अभिप्राय कल्पना उचित था और॥ सूर्य की चारों ओर ग्रहभ्रमण प्रदर्शन असंगत है, ऐसा कहना चाहिये। लोक की प्रतीति का अनुसरण करने के लिये एवं थोड़े उपाय से गोलस्थिति समझने के लिये सूर्यधर्म (अचल होना) पृथिवी में आरोपण करके उन के मानने से। इस प्रकार आरोपण करने वाले आचार्य बोधलाघव और लोकप्रतीति को अनुसरण करते हुवे लघुकल्पनामात्र से सिद्ध हुवे सूर्यसहित राशिचक्र और पृथिवी के अचलत्व और चलत्व में एक

दूसरे में आरोपण कर सूर्य एवं राशिचक्र को सचल और पृथिवी को अचला वर्णन किया है ऐसा जान पड़ता है। यह लाघव भी है कि प्रातःकाल सूर्य यहां है, अब वहां है इत्यादि। इस प्रकार समझना सहज है। लोकभी ऐसा ही जानते हैं। इसी प्रकार एक राशि से दूसरी राशि में जाना (लोक में व्यवहार है कि इस मास में सूर्य मेष राशि में है पुनः वृषमें जावेगा इत्यादि) कल्पना की जाती है (वस्तुतः नहीं) कल्पना करलेने से कि पृथिवी के चारों ओर सूर्य भ्रमण करता और सूर्य के चारों ओर ग्रहादिक भ्रमण करने वाले पृथिवी के चारों ओर भ्रमण करते हैं। इस प्रकार अङ्गीकार करने से "गौरव" (समझना कठिन) है। किसी के मत में पृथिवी ही का भ्रमण लाघव है। सो इस प्रकार भूमि का मूलग्रन्थोक्त भचक्र भ्रम का सजातीय अपने अक्ष पर परिभ्रमण करना और सजातीय क्रांति वृत्त में भ्रमण करना मूलग्रन्थकार का अभिप्राय सिद्ध है। सो इस विषय को नवीन ग्रन्थकारों ने नहीं समझा जिस कारण उन में कोई २ मङ्गल, गुरु, शनि में पात को जोड़ कर साधित विक्षेप केन्द्र से शर का लाना--

उपपत्तिसहितं मन्यमाना बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चे पातक्षेपेण शरानयनमुपलब्ध्यतिरिक्तोपपत्तिरहितमवगम्य बुधशुक्रयोः शीघ्रोच्चस्थाने यावान् विक्षेपस्तावानेव यत्र कुत्र स्थितयोरपि तयोर्भवतीत्यत्रोपलब्धिरेव वासनेत्याहुः। अन्ये च बुधशुक्रयोर्मूलग्रन्थेषु पठितान्वास्तवानपि पातभगणानवस्तुभूतान्स्वल्पतया सुखमात्रार्थकांश्चाहुः। दैवगत्यार्यभटस्य बुद्धिपथमारुढम्--

"अनुलोमगतिर्नौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।
अचलानि भानि तद्वत्समपश्चिमगानि लङ्कायाम्"

इत्यादिना प्रकाशितमपि भचक्रस्याचलत्वं क्षोण्याश्च स्वाक्षं परितो भ्रमणम् ब्रह्मगुप्तः

"आवर्तनमुर्व्याश्चेन्न पतन्ति समुच्छ्रयाः कस्मात्"

इत्यनेन भ्रमणप्रारम्भोत्तरकाले संयुक्तानां पृथ्व्याकृष्टानां

वस्तूनां पतनाभावमजानन् प्रारम्भकालिकभ्रमणस्वभावमेवावगच्छन्नपालपत् । लल्लश्च–

"यदि च भ्रमति क्ष्मा तदा स्वकुलायं कथमाप्नुयुः खगाः ।
इषवोऽपि नभः समुज्झिता निपतन्तः स्युरपांपतेर्दिशि ॥
पूर्वाभिमुखे भ्रमे भुवो वरुणाशाभिमुखो व्रजेद्घनः ।
अथ मन्दगमात्तथा भवेत्कथमेकेन दिवा परिभ्रमः" ॥

इत्यनेन भूवायुसहितायाः क्षितेर्भ्रमणमजानन् श्रीपतिश्च–

"यद्येवमम्बरचरा विहगाः स्वनीडमासादयन्ति न खलु भ्रमणे धरित्र्याः । किञ्चाम्बुदा अपि न भूरि पयोमुचः स्युर्देशस्य पूर्वगमनेन चिराय हन्त ॥ भूगोलवेगजनितेन समीरणेन केत्वादयोऽप्यपरदिग्गतयः सदा स्युः । प्रासादभूधरशिरांस्यपि संपतन्ति तस्माद्भ्रमत्युडुगणस्त्वचलाऽचलैव"॥

इत्यनेनोभयमप्यजानन् ॥

भावार्थः–उपलब्धि को छोड़कर उपपत्ति सहित मानने वाले बुध शुक्र के शीघ्रोच्च में पात प्रक्षेपद्वारा शर का लाना उपलब्धि को छोड़ कर उपपत्ति-रहित जान कर बुध शुक्र के शीघ्रोच्च स्थान में जितने विक्षेप हैं उतना ही विक्षेप जिस किसी स्थान का हो उन दोनों का होता ही है । इस में उपलब्धि ही उपपत्ति है ॥

बहुत से लोग बुध शुक्र को मूलग्रन्थ में पढ़े हुये वास्तविक पातभगणों को न्यूनतया सुखपूर्वक समझने के लिये कहा है । दैवगति से आर्यभट्ट बुद्धिपथ पर आरूढ लिखते हैं–

"जिस प्रकार नौका में बैठे हुवे मनुष्य को पर्वतादि किनारे की अचल (ठहरी हुई) वस्तुए उलटी ओर को चलती हुई दिखलाई देती हैं । ऐसे ही पूर्व की ओर को चलती हुई पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों को अचल (स्थिर) तारे भी पश्चिम को जाते हुवे दिखलाई देते हैं ॥"

इत्यादि द्वारा पृथिवी का भ्रमण एवं राशिचक्र का अचलत्व प्रकाशित करने पर भी ब्रह्मगुप्त ने समझकर नहीं लिखा है कि–

"यदि पृथिवी भ्रमण करती तो कोठे आदिक ऊंची वस्तु क्यों नहीं गिरतीं"

इस से भ्रमण प्रारम्भोत्तर काल में पृथिवी के आकर्षणशक्ति से इस के ऊपर की वस्तु नहीं गिरतीं, इस बात को न समझकर प्रारम्भकालिक भ्रमण स्वभाव ही को केवल सुनकर लल्ल ने लिखा है कि–

"यदि पृथिवी भ्रमण करती है तो पक्षिगण अपने घोंसले को क्योंकर पहुंचते हैं? आकाश में छोड़े हुवे बाण पश्चिम दिशा में क्यों गिरते हैं। पूर्व की ओर पृथिवी का भ्रमण होता है तो पश्चिम में बाण गिरते हैं। यदि कहो कि पृथिवी की मन्दगति से ऐसी घटना होती है तो एक ही दिवस में अपने अक्ष पर क्योंकर भ्रमण करती है?"

इत्यादि द्वारा भूवायुसहित पृथिवी के भ्रमण को न समझकर श्रीपति ने लिखा है कि–

ननु तरणिमभितो धरणेः क्रान्तिवृत्ते भ्रमणं स्वीकृते रवेरिव नक्षत्राणामपि स्थिराणामुदग्दक्षिणायनं ध्रुवतारोन्नतिभेदश्चोपलभ्येत। न चापरिमेयां भचक्रदूरतामपेक्ष्य धरणिभ्रमणमार्गस्यात्यन्तमणुतया न तथोपलब्धिरिति वाच्यम्। भकक्षादूरतायाः षष्टिगुणरविकक्षादूरत्वतुल्याया एव।

"भवेद्भकक्षा तीक्ष्णांशोर्भ्रमणं षष्टिताडितम्"। इत्याद्यागमाभिहितत्वादिति चेन्न। छेद्यके कक्षावृत्ते प्रतिवृत्ते चैकस्यामेव दिशि मेषादिस्थितिमाद्याचार्याणामपरिमेयस्यैव भचक्रदूरत्वस्याभिमततया तद्विरुद्धमुपपत्तिशून्यं दूरत्वं बोधयतस्तस्य वचनस्यानभिज्ञप्रक्षिप्ततायाः स्फुटमेव प्रतीयमानत्वादिति शम्॥

प्राचीनज्योतिषाचार्यवर्याणामेवमाशयः।
वापुदेवाभिधानेन यथाबुद्धिप्रदर्शितः॥
इदमाशयवर्णनं मया गजनागाद्रिकुसम्मिते शके।
रचितं सुहृदां महीभ्रमभ्रमिणां गोलविदां विदां मुदे॥ इति

भावार्थः—सूर्य की चारों ओर पृथिवी का क्रान्तिवृत्त में भ्रमण मानने से सूर्य की नाईं स्थिर नक्षत्रों का भी उत्तरायण एवं दक्षिणायन एवं ध्रुव तारा की उन्नतिभेद प्रतीत होवे। और न भचक्र की अपरिमेय दूरता की अपेक्षा पृथिवी का भ्रमण मार्ग की तुलना अणुमात्र है इस लिये उस प्रकार प्रतीत नहीं होता ऐसा कहना चाहिये ॥

राशिचक्र की कक्षा की दूरता से ६० गुणा सूर्यकक्षा की दूरता की तुलना है। 'सूर्य की कक्षा भ्रमण ६० गुण भचक्र की कक्षा से होता है" इत्यादि शास्त्रोक्त होने से। यदि कहो सो नहीं। प्रवृत्त लेखक कक्षावृत्त में एक ही दिशा में मेषादि स्थिति आद्य आचार्यों का अपरिमेय भचक्र की दूरता के अभिप्राय—उस के विरुद्ध उपपत्तिशून्य दूरत्व समझाने के लिये यह वचन साफ २ प्रक्षिप्त है॥

यदि पृथिवी चलती है तो खेचर पक्षिगण अपने २ घोंसले को क्योंकर पहुंचते हैं? और मेघ वार २ नहीं वर्षता। देश के पूर्व गमन से भूगोल के वेग से वायुद्वारा पताका भी दूसरी दिशा में होजातीं और कोठे पहाड़ की चोटियां टूटकर गिरजातीं इस लिये नक्षत्रगण भ्रमण करते हैं, पृथिवी अचला ही है। इस से दोनों ने न ही समझकर॥ प्राचीन ज्योतिष शास्त्र के आचार्यवर्यों ही के आशय वर्णन में (बापूदेव शास्त्री) ने अपनी बुद्धि अनुसार दिखलाया और यह आशय वर्णन मैंने शाके १७९८ में गोलविद्यावित् सज्जनों के लाभ के लिये जिन्हें महीभ्रमण में भ्रम होता है लिखा॥

युग+कल्प

काल

यद्यपि बहुत लोग यह भी कह सकते हैं कि काल ही धर्म की हानि और वृद्धि का कारण है। जैसा कि अनेक संस्कृत के ग्रन्थों में लिखा है कि "कलि काल में सनातन आर्यधर्म नष्ट होके विविध पाखण्ड मत प्रवृत्त होंगे" इसी प्रकार इन दिनों देख भी रहे हैं कि आर्यधर्म उच्छिन्न होता जाता है सो कहिये क्या अब आर्यधर्म की उन्नति हो सकती है? इत्यादि कह कर कितने पण्डित धर्मोन्नति से उपेक्षा करते हैं, परन्तु यह एकमात्र उन की आलस्य-परायणता ही है और अपने आलसी चित्त को उक्त वचनों का झूठा सहारा दे कुपथ में गेरना है॥

हम पूछते हैं कि शास्त्र की किस बात को लेके कलिकाल में धर्म की हानि पुकार रहे हैं? क्या केवल काल ही धर्महानि का कारण है या और

भी कुछ ? यदि काल ही है तो यह साधारणरूप से धर्म का ह्रास करता है, अथवा कलित्व धर्म के संयुक्त होने से ? प्रथम तो काल कुछ एक स्वतन्त्र वस्तु ही नहीं है, जो उस की किसी कार्य के प्रति कारणता या अकारणता मानी जाय, क्योंकि "अधिक काल और न्यून काल" इत्यादि व्यवहार पृथिवी के भ्रमण-वशात् सूर्य द्वारा परिष्पन्द क्रिया ही की अधिकता वा न्यूनता हो जायगी। जो पृथिवी की चलनक्रिया अपेक्षाकृत कुछ अधिक हो गई है, वही अधिक काल एवं जब वह न्यून है, वही न्यून काल कहा जायगा। सुतरां और २ व्यवहार भी सब इसी प्रकार सम्पन्न हो जायगे, फिर कहिये काल क्या कुछ वस्तु शेष रहा ? सुतरां पृथिवी की चलनक्रिया समूह का नाम काल रहा और परिष्पन्द क्रिया तो सत्ययुग से आज तक सदा एक ही रूप से चली आती है, पुनः उस समय धर्महानि नहीं हुई और अब ही हुई, इस का विशेष कारण कुछ काल ही को नहीं कह सकते। हां, जिस प्रकार सभी पदार्थ जो जगत् में उत्पन्न होते हैं, उन के प्रति दिशा प्रागभाव एवं ईश्वरादि (वैशेषिकशास्त्रोक्त) कारण होते हैं। इस प्रकार काल भी एक साधारण कारण है। यह ईश्वरीय नियम अनादिकाल से एक प्रकार से चला आता है। क्या सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलि या मन्वन्तर और कल्प सब समयों में जिस प्रकार ईश्वरीय नियम से स्वभावतः जल में शीतलता, अग्नि में उष्णता आदि गुण हैं, इसी प्रकार जितने पदार्थ हैं सभी के लिये उस के अविचल नियम हैं। हम इस का प्रमाण देते हैं:-

कलिः शयानोभवति संजिहानस्तु द्वापरः। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन्। ऐ० ब्रा० ३३। १५॥

अर्थात्-धर्म के कामों में मनुष्य जब तक (शयान) आलस्य किये पड़ा रहता है तब तक उस मनुष्य की कलि संज्ञा है। जब आलस्य को त्याग देता है तब वह द्वापर कहलाता है। जब कमर बांध के धर्म के कामों में खड़ा होता है तब वह त्रेता कहलाता है और जब धर्म को यथावत् रीति से सेवन करता है तो वह सत्ययुग कहलाता है॥

पाठक! देखिये यहां उक्त प्रमाण से कलित्व आदि धर्म स्पष्ट २ मनुष्य ही में प्रतिपादन किये गये हैं कुछ काल में नहीं, तथा मनुष्यों ही के कारण उक्त धर्म काल में भी कहे जा सकते हैं। अतएव काल ही केवल धर्म का

कार्य की हानि वृद्धि में मुख्य कारण होता नहीं है,वरन मनुष्यों की शिथिलता आलस्य या उद्योग का अभाव ही हानि का कारण होता है ॥

अनेक लोगों का कथन है कि ऋतु के स्वाभाविक गुण ऋतु में अवश्य ही होते हैं, किसी के टाले नहीं टलते। इस लिये सत्ययुग आदि में जो धर्म-वृद्धि और ह्रास आदि गुण हैं वे अवश्य ही होंगे। हम कहते हैं कि कहने वाले को अपने आप में सोचना चाहिये कि ऋतुओं के परिवर्तन में भी सूर्य की गति एवं तत्तद्देश विशेष आदि अन्यान्य कारण हैं जिन की कार्य कारणता से ऋतुओं में तत्तद्गुण प्राप्त हो सकते हैं। साईबीरिया द्वीप में क्यों वसन्त ऋतु नहीं आता ? अथवा इङ्गलैण्ड देश में यहां की नाईं ग्रैष्मिक अन्न क्यों नहीं उत्पन्न होते ? अतएव सिद्ध हुआ कि कालकृत कार्यों में हानि वा वृद्धि नहीं होती। जिस प्रकार दिन रात महीना वर्ष आदि काल की संज्ञा है इसी प्रकार सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि आदि काल की संज्ञा है।प्राण, नाड़ी दण्ड आदि का वर्णन पूर्ण रीति से सू०अ०१मे किया गया है। इस लिये यहां उन के परिमाण का वर्णन नहीं होगा, परन्तु वेदों के प्रमाण मात्र दिये जावेंगे –

याओषधीः पूर्वाजाता देवेभ्यस्त्रियुगंपुरा ॥ ऋ० १०।९७।१

ऋग्वेद में अनेक स्थानों में (१।९२।८ १।११५।२ १।१४४।३, ३।२६।३, ३।३३ ८आदि) युग शब्द आया है, परन्तु कृत, त्रेता द्वापर,कलि (सपरिमाण) के विभाग क्रम से नहीं आया सामान्यतः कालवाची हैं। जो ओषधियां पूर्व तीनों युगों में विद्वानों द्वारा जानी गई हैं। अर्थात् वेद में युग का नाम तो नहीं आया है,परन्तु युगों के वर्ष संख्या परिमाण दिये है–

शतं ते अयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः॥
(अथर्व ८।२।२१)

अर्थात् १२००० दिव्य वर्षरूप युग के १०वें भाग को चार तीन दो एक से गुणा करने पर क्रम से सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की दिव्यवर्ष संख्या होगी। (देखो सूर्यसिद्धान्त अ० १)

मनुस्मृति में भी युग काल विशेष का नाम माना है जैसा –

कलिः प्रसुप्तो भवति सजाग्रत् द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम् ॥

मनुस्मृति ९। ३०१–३०२

अर्थ–इस का अर्थ उसी प्रकार है,जैसा कि ऐ०ब्रा०७।३३।१५ का किया गया है ॥

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुम् ॥

(यजुर्वेद अ० ३० । १८)

कृताय सभाविनं । त्रेताया आदिनमदर्शं । द्वापराय बहिस्सदं । कलये सभास्थाणुं ॥ तै० ब्रा० ४।३।१ ॥

भावार्थः-इसी प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में भी चार युगों का उल्लेख है, परन्तु द्यूतक्रीडार्थ पाशा का भिन्न २ अवस्थान मात्र है। एवं तैत्तिरीय ब्रा० ३।४।१।१६ में भी चारों युगों का नाम द्यूत क्रीडार्थ पाशा के नाम में आया है। छान्दोग्योपनिषद् ४।१।४ में केवल कृतयुग का उल्लेख है। सामवेदीय षड्विंश ब्राह्मण में लिखा है कि चन्द्रकला से युग चतुष्टय कहे ये प्राचीन नाम प्रचलित हुवे हैं। १००० सहस्र चतुर्युग का जो एक कल्प होता है उस का प्रमाणः—

एकं यदङ्गमकृणोत्सहस्रधा कियता स्कम्भः प्रविवेश तत्र ।

(अथर्व १० । २१ । ७)

एक कालरूपी अङ्ग १००० हिस्सों में विभक्त किया है। पुनः कल्प के बाद सृष्टि होती है उस का प्रमाण—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ॥

(ऋग्वेद १० । १९)

अर्थात् जिस प्रकार पूर्व (गत) कल्प में सूर्य चन्द्रमा आदि की रचना ईश्वर ने की थी उसी प्रकार इस वर्त्तमान कल्प में भी की है ॥

रूपकालङ्कार से-सृष्टि काल के परिमाण के वर्णन में ज्योतिष में लिखा है कि १४ मनु और १ सन्धि सहित १५ मन्वन्तर एक कल्प वा ब्राह्मदिन और उतने ही की रात्रि अर्थात् ३० मन्वन्तरों का एक ब्राह्म अहोरात्र होता है अर्थात् जिस प्रकार हमारे सौर मान से १५ मुहूर्त का दिन एवं १५ मुहूर्त्त की रात्रि होती है उसी प्रकार एक२ मन्वन्तर का एक २ ब्राह्म मुहूर्त्त होता है और जिस प्रकार हमारी आयु १०० वर्ष की है इसी नियम से ब्राह्म अहोरात्र के परिमाण से १०० ब्राह्मवर्ष सृष्टि की आयु होती है अर्थात् महाप्रलय होता है। प्रत्येक मन्वन्तर में जो सन्ध्या और सन्ध्यांश हैं, वह इस प्रकार समझना चाहिये कि जिस प्रकार ६० घड़ी का मानुषी दिनरात होता है इस का छठा भाग १० घड़ी हुवा जिस में ५ घड़ी प्रातःकाल सन्ध्यांश और साय-

काल ५ घड़ी सन्ध्या कहलाती है इसी प्रकार सत्ययुग आदि प्रत्येक युग में उस २ दिव्य वा मानुषवर्ष संख्या का छठा भाग सन्ध्या सन्ध्यांश कहाता है॥

प्रलय

सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के अनेक क्रम हैं, अर्थात् महाप्रलय के बीच में जितने २ प्रलय अवान्तर प्रलय होते हैं, उन सब का क्रम पृथक् २ है परन्तु जैसा एक महाप्रलय के अवान्तर प्रलय का क्रम होता है वैसा ही प्रत्येक महाप्रलय में उन उन अवान्तर प्रलय का क्रम रहता है। प्रत्येक मन्वन्तर की समाप्ति में जब जल से अवान्तर प्रलय होने पर आता है तब वर्षों तक बराबर मूसलाधार वृष्टि होती है जिस में पर्वतादि भी जलमय होजाते हैं। द्वितीय मन्वन्तर का फिर आरम्भ होता है तब फिर जल से पृथिवी, पृथिवी से ओषधियां, उन से अन्न,अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीरों की उत्पत्ति होती है अर्थात् यह प्रत्येक मन्वन्तर के आदि अन्त का प्रलय जल से होता है इस में पृथिवी और पार्थिव शरीर मात्र का प्रलय होजाता है। जल, अग्नि, वायु और आकाश बने रहते हैं। १७२८००० वर्ष में आधा समय पहिले मन्वन्तर की समाप्ति में सन्ध्या और आधा समय आगामी मन्वन्तर का सन्ध्यांश (प्रातः काल) समझा जाता है। इतने समय तक पृथिवी सर्वथा जलमय होजाती है॥

आशय यह है कि मन्वन्तरों की आरम्भ समाप्ति में अवान्तर प्रलय जल से और मन्वन्तर के आरम्भ में जल से ही सृष्टि का आरम्भ होता है और ब्राह्मकल्प में अग्नि से प्रलय होता है। अग्नि से ही सृष्टि का फिर आरम्भ होता है और महाप्रलय में वायु तथा आकाश से प्रलय होता है और महाकल्प के पश्चात् फिर वायु तथा आकाश से सृष्टि का आरम्भ होता है। आत्मा से आकाश और आकाश से वायु की उत्पत्ति जो शास्त्रों में दिखाई है उस का अभिप्राय परमेश्वर से सृष्टिक्रम दिखाने का है। वस्तुतः आकाश भी एक तत्त्व अग्नि, वायु आदि के समान ही उत्पन्न वा नष्ट होने वाला है। केवल भेद इतना ही है कि जैसे अग्नि की अपेक्षा वायु सूक्ष्म होने से देखने में नहीं आता वैसे वायु से भी अधिक सूक्ष्म आकाश तत्त्व है। इस कारण यह स्पर्शन इन्द्रिय से ज्ञेय नहीं। आकाश का गुण शब्द है यह शब्द जिस में रहता तथा जहां से प्रकट होता वही आकाश द्रव्य है। यद्यपि किन्हीं लोगों का यह सिद्धान्त है कि आकाश कोई द्रव्य नहीं, उस के उत्पत्ति नाश भी नहीं होते, इस पक्ष में वायु तक का ही प्रलय माना जायगा तथापि वायु आदि के तुल्य आकाश को द्रव्य वा तत्त्व मानकर उस के उत्पत्ति नाश

मानने का पक्ष ठीक मालूम होता है और वायु की गति का कारण प्रायः अग्नि है। वायु में हलकापन आजाता है इसी से ग्रीष्मकाल में वायु की गति अधिक और शीतकाल में भारीपन रहने से वायु की गति वैसी तेज नहीं होती है। हलका ही पदार्थ अधिक चलायमान होता और भारी पदार्थ अधिकांश में स्थिर होता है। जैसे भारी गम्भीर मनुष्य की बुद्धि स्थिर और हलके की चपल बुद्धि होती है। तृण उड़ जाते और पत्थर नहीं उड़ता है। तात्पर्य यह है कि यदि अन्य तत्त्वों का संघर्षण न हो और अग्नि वायु को हलका न करे तो वायु का चलना ही न हो तथा वायु सर्वत्र व्यापक है तभी पंखा हिलाने से चलने लगता है। जैसे जल सर्वत्र भरा हो और एक स्थल से जल लिया जावे तो उस स्थल में इधर उधर से जल गिरेगा ऐसे ही सर्वत्र भरे वायु को जहां २ अग्नि हलका करता है वहां २ अन्यत्र से वायु गिरता है इस लिये उस में गति होती है। जब अग्नितत्त्व का प्रलय होजावे तब वायु की गति होना भी दुस्तर है अर्थात् अग्नि के प्रलय में वायु अपने कारण आकाश में स्वयमेव लीन होजाता है। इस लिये जल, अग्नि, वायु, आकाश इन ही तत्त्वों से तीन ही प्रकार का प्रलय होता है। जब २ जिस २ तत्त्व से प्रलय होता है, तब २ उसी तत्त्व से फिर सृष्टि का आरम्भ होता है ॥

ऋतु

पृथिवी के परिभ्रमण काल में उस के मेरुदण्ड वा कल्पित व्यास सम्यक् लम्बमान रह कर कुछ तिर्यक्रूप से स्थिति करता है, इसी कारण समय २ पर पृथिवी पर सूर्य के तेज का न्यूनाधिक्य होता रहता है। अतएव ऋतु-परिवर्त्तन हुआ करता है ॥

पृथिवी स्वभावतः किञ्चित् वक्रभाव से नित्य ही भ्रमण करती है। किसी समय भी इस भाव अर्थात् वक्रता को नहीं छोड़ती। सुतरां सूर्य की चारों ओर भ्रमण करती २ किसी २ समय सूर्य सम्बन्ध में इस का मेरु देश एक बार उन्नत और एक बार अवनत होजाता है। कोई पदार्थ तिर्यक्रूप से एक भाव से निरवलम्ब होकर चक्राकार वा वृत्ताभास पथ में परिभ्रमण करने से वह चक्र वा वृत्ताभास के केन्द्र सम्बन्ध में उस का शिरोभाग और अधोभाग अवश्य ही एक बार उन्नत एवं अवनत होता है, ऐसी प्रतीति होती है।

पृथिवी अपनी कक्षा पर कुछ तिर्यक्भाव से नित्य भ्रमण करती २ इस का मेरु प्रदेश एकबार सूर्य के सम्मुख एवं एकबार सूर्य के परोक्ष में उपस्थित होजाता है इस से सिद्ध होता है जो पृथिवी के ईषत् तिर्यक्भाव से अवस्थिति करने एवं इस की वार्षिक गति द्वारा ऋतु सब बार२ प्रत्यागमन करते और परिवर्त्तित होते हैं ॥

यदि पृथिवी सूर्य को परिभ्रमण नहीं करती तो हम लोग ऋतुओं का वार २ आना, एवं इस के परिवर्त्तन को कभी नहीं देख पाते । पृथिवी यदि लम्बभाव से अवस्थित हो कर ठीक चक्राकार पथ में परिभ्रमण करती तो सूर्य का आलोक पात कभी तिर्यक्भाव से कभी सरलभाव से अथवा दिवा भाग में सूर्य के आकाशमण्डल कभी दीर्घकाल कभी अल्पकाल अवस्थिति इस प्रकार कभी नहीं पड़ता । सुतरां पृथिवी में उत्ताप का कभी तारतम्य न होकर वह सब समय सर्वत्र समभाव से अनुभूत होता ॥

सूर्यकिरण सरल रेखा की नाईं एक ही ओर विकीर्ण होता है । एवं पृथिवी के साथ सम सूत्रपात काल में जो स्थान ठीक सूर्य के सम्मुखवर्त्ती होता है, वही स्थान अधिक उष्ण होता है । इसी कारण दोनो अयनान्त-वृत्त के मध्यवर्त्ती देशों में ग्रीष्म ऋतु का प्रादुर्भाव होता है क्योंकि उस उस देश को छोड़ कर किसी अंश में सूर्य किरण लम्बभाव से पतित नहीं होता। उत्तर अयनान्तवृत्त के जितने उत्तर होगा या दक्षिण अयनान्तवृत्त के जितने दक्षिण होगा उतना ही शीत का आधिक्य होता है ॥

ग्रीष्म काल की उत्पत्ति सामान्यत: दो कारणों से होती है। प्रथमतः इस समय सूर्यरश्मि पृथिवी में लम्बभाव से पड़ती है । द्वितीय गगनमण्डल में सूर्य अधिक काल स्थिति करता है और जिस समय इन दो अवस्थाओं में वैपरीत्य होता है, उस समय हेमन्त काल का उदय होता है । ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में दो प्रहर के समय गगनमण्डल में दृष्टिपात करने से सूर्य को हम लोग अपने मस्तकोपरि देखते हैं, किन्तु पौष और माघ मास में इस प्रकार सूर्य के प्रति अवलोकन करने से उस को बहुत दक्षिणांश में अर्थात् आकाश के बहुत नीचे देखते हैं । अधिकन्तु ज्येष्ठ और आषाढ़ मास के दिन में सूर्य आकाशपथ में दीर्घकाल रहता है, किन्तु पौष और माघ मास में स्वल्प क्षण अवस्थिति करता है। इसी कारण ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में ग्रीष्म का एवं पौष और माघ मास में शीत का प्रादुर्भाव होता है ॥

इस प्रकार शीत और ग्रीष्म के तारतम्यानुसार भिन्न २ देश में भिन्न २ जातीय उद्भिज्ज और जन्तु सब उत्पन्न होते हैं,ये सब इस प्रकार ऋतु परिवर्त्तन न होने से जीवित नहीं रह सकते । विश्वकर्त्ता ने पृथिवी को जीव के योग्य और जीव को पृथिवी के योग्य बना कर अपनी अपारमहिमा प्रकट की है॥



वेदों में ऋतुओं का उल्लेख

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू इषश्चोर्जश्च शारदावृतू सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ॥ यजुर्वेदे पू० अ० १३ ॥ ५। ६। १५। १६। २५।२७।५७

भावार्थ-मधु,माधव,१ वसन्त ऋतु शुक्र,शुचि,२ ग्रीष्मऋतु,नभस्, नभस्य ३ वर्षाऋतु,इष,ऊर्ज,४ शरद्ऋतु,सहः,सहस्य ५ हेमन्तऋतु और तपस्,तपस्य ६ शिशिर ऋतु हैं अर्थात् मधु आदि दो २ महीनों के वसन्तादि छः ऋतु होते हैं॥

सामवेद में भी छः ही ऋतुओं का उल्लेख है-

वसन्तइन्नुरन्त्यो ग्रीष्म इन्नुरन्त्यः ।
वर्षाण्यनु शरदो हेमन्तः शिशिर इन्नुरन्त्यः ॥
(सामवेद प्र० ६ । अ० ३ । ६ । १३ । २)

सब ऋतुओं में वसन्त ऋतु को मुख्य मानते हैं । प्रमाणः-

मुखं वा एतदृतूनां यद्वसन्तः ॥
(तैत्तिरीय ब्राह्मणे ११ । २ । ६ । ३)

वेद या ब्राह्मण ग्रन्थों में १२ महीनों के नाम नक्षत्रों के नामानुसार चैत्रादि नहीं, वरन मधु माधवादि हैं । चैत्रादि नाम होने का नियम यह है कि जिस महीने की पौर्णमासी को जो नक्षत्र पड़ता है, उस नक्षत्र के नामानुसार उस महीने का नाम होता है । जैसे चित्रा नक्षत्र में जिस महीने की पौर्णमासी हुई उस महीने का नाम चैत्र, इसी प्रकार विशाखा नक्षत्र वाले का वैशाख, इसी प्रकार और भी जानो । परन्तु यह नियम अब नहीं रहा । अब तो चाहो उस २ महीने की पौर्णमासी को वह २ नक्षत्र न पड़े, परन्तु चैत्रादि नाम रूढ़ से हो रहे हैं । इसी कारण वेदों में इस अविचल नियम से १२ महीनों के नाम हैं । जो कभी उस का परिवर्तन नहीं हो सकता । जैसाकि चाहे जब वसन्त ऋतु हो, उस के प्रथम और द्वितीय नाम को क्रम से मधु, माधव, चाहे जब ग्रीष्म ऋतु हो उस के प्रथम और द्वितीय नाम को क्रमसे शुक्र, शुचि; चाहे जब वर्षा ऋतु हो उस के प्रथम और द्वितीय नाम को क्रम से नभस् नभस्य, चाहे जब शरद् ऋतु हो, उस के प्रथम और द्वितीय नाम

को क्रम से इष:, ऊर्ज, हेमन्त ऋतु चाहे जब हो उस के प्रथम एवं द्वितीय मास को क्रम से सह:, सहस्य और शिशिर ऋतु चाहे जब हो उस के प्रथम और द्वितीय मास को क्रम से तपस् एवं तपस्य कहते हैं ॥

अधुना जो लोग मधु आदि १२ महीनों को चैत्रादि के वाचक समझते हैं। यह मेरी समझ में उन की भूल प्रतीत होती है क्योंकि चैत्रादि मास नक्षत्रों के अनुसार और मधु आदि ऋतु के लक्षणानुसार हैं ॥

अर्थात् सूर्य के कारण ऋतु परिवर्तित होते हैं जो चैत्र, वैशाखादि इस समय वसन्तादि ऋतुओं में होते हैं, वे इस के कई सहस्र वर्ष पहिले ग्रीष्म वर्षा शरदादि में हुये हैं। इस का नियम यह है कि लग भग २१००० वर्ष में (अयन गति के कारण)प्रत्येक दो दो महीनों में सब ऋतु क्रम से होते गये हैं ॥

अर्थात् चैत्र में एक बार वसन्त ऋतु ४। सवा चार हजार वर्ष में। ग्रीष्म ऋतु ८॥ साढ़े आठ हज़ार वर्ष में। वर्षा ऋतु १७हज़ार वर्ष में। शरद् ऋतु २१। हज़ार वर्ष में। इसी प्रकार हेमन्त और शिशिर हुए हैं ॥

दिन और रात्रि

जिस प्रकार किसी प्रकाशमान वस्तु के सामने कोई निस्तेज वस्तु रहने से उस निस्तेज वस्तु का केवल सामने का आधा भाग प्रकाशित होता और उस का दूसरा आधा भाग अन्धकार में रहता है। इसी प्रकार प्रकाशमान सूर्य के किरणों से निस्तेज भूगोल का आधा भाग (सामने का) मात्र प्रकाशित होता एवं अपरार्द्ध भाग अन्धकार में रहता है। पृथिवी की यह अवस्था सतत इसी प्रकार रहती है अर्थात् एकार्द्ध प्रकाशित एवं अपरार्द्ध अन्धकारावृत रहता है,किन्तु इस की दैनिकगति के कारण से इस के सब स्थानों में क्रम २ से आलोक और अन्धकार का आविर्भाव होता एवं तद्द्वारा दिन रात होते हैं (जहां प्रकाश वहां दिन एवं जहां अन्धकार वहां रात्रि) पृथिवी के नियत आवर्त्तन (*Rotation*) से क्रमशः भिन्न २ समय में प्रत्येक स्थान ही सूर्य के सामने होता है,जिस समय जो स्थान सूर्य के सामने होता उस समय वहां के लोगों को बोधहोता है कि सूर्योदय हुआ। पीछे वही स्थान क्रम से पूर्व की ओर अग्रसर होने से उन लोगों को सूर्य ठीक अपने मस्तकोपरि (मध्याह्न) दृश्य होता है। निदान जब पृथिवी के आवर्त्तन द्वारा सूर्य मण्डल अदृश्य होता उस समय उन लोगों को बोध होता है कि सूर्यास्त

हुआ। इसी प्रकार जब एक स्थान मे दिन होता है तो दूसरे स्थान में सायङ्काल, एवं एक देश में जब मध्याह्न तब दूसरे देश (पाताल) मे आधीरात होती है। फलतः सूर्य का उदयास्त वास्तविक नहीं होता किन्तु पृथिवी की दैनिकगति से दिन, रात, मध्याह्न, सन्ध्या आदि होते हैं, पृथिवी के सब स्थानों में दिन रात एक परिमाण से नहीं होते,कहीं ३० मुहूर्त्त का दिन रात कहीं ६० का, कहीं हमारी अपेक्षा एक सप्ताह, एवं छः महीने का दिन इत्यादि होते हैं। अब हम वेदादि शास्त्रों के प्रमाण देते हैं। जिन से यह बात सिद्ध होगी कि दिनाधिपति, होराधिपति, मासपति, वर्षपति आदि फलितज्योतिष की कल्पनामात्र है,वस्तुतःसिद्धान्त ज्योतिष से इस का सम्बन्ध नहीं। वेदोत्तरकालीन अनार्य संस्कृत ग्रन्थों में एव इस समय की शिक्षित अशिक्षित दोनों मण्डली प्रायः"दिन"शब्द के स्थान में "वार" का व्यवहार करते (लिखते, पढ़ते) हैं। इसी प्रकार रविवार, सोमवार आदि लिखते पढ़ते बोलते हैं। परन्तु इस प्रकार का व्यवहार हमें वेद,ब्राह्मण, गृह्यसूत्र, व्याकरण, महाभारत और वाल्मीकीय आदि ग्रन्थों में नहीं मिलता, यहां तक कि अमरकोष जो बहुत थोड़े दिन का बना हुआ ग्रन्थ है उस में भी नहीं पाया जाता "घस्रो दिनाहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरौ"अर्थात् घस्र, दिन, अहन्, दिवस, वासर, ये दिन के नाम हैं। ऐसा अमरकोष के कालवर्ग में लिखा है। परन्तु "वार" शब्द दिन के अर्थ में नहीं आया॥

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति 'वासरम्'।

परो यदिध्यते दिवा॥ ऋ० सं० ८।६।३०

अर्थात् सूर्य का प्रकाश दिनभर रहता है॥

देवतों के दिन

एकं वा एतद्देवानामहः यत्संवत्सरः॥ तै० ब्रा० ३।९।२२

हमारे एक वर्ष की बराबर उत्तरमेरुनिवासियों (देवतों) का एक दिन होता है॥ दिन के पांच विभागः—

तस्मा उद्यन्त्सूर्यो हिङ् कृणोति संगवः प्रस्तौति 'मध्यन्दिनम्'।

उद्गायत्य 'पराह्णः' प्रति हरत्यस्तं यन्निधनम्॥

(अथर्व सं० ९।६।४६)

दिन के पांच भाग होते हैं–सूर्योदय, संगव, (मध्याह्न के पहिले और सूर्योदय के पीछे) मध्याह्न, अपराह्न और सूर्यास्त या सायङ्काल । इसी प्रकार शतपथब्राह्मण में भी लिखा हैः–

आदित्यस्त्वेव सर्वऋतवः। यदैवोदेत्यथ वसन्तो यदा संगवोथ ग्रीष्मो यदा मध्यंदिनोऽथ वर्षा यदापराह्णोऽथ शरद् यदैवास्तमेत्यथ हेमन्तः ॥

(शत० ब्रा० २ । २ । ३ । ९)

अर्थ–सूर्य ही सब ऋतुओं का कारण है और प्रतिदिन सब ऋतुयें बीतती हैं अर्थात् जब सूर्योदय होता है तो वसन्त ऋतु 'संगव' काल में, ग्रीष्म, मध्याह्न में वर्षा, अपराह्न में शरद् और सूर्यास्त समय हेमन्त ॥

दिनमान अर्थात् दिन का घटना बढ़ना-

सोम राजन् प्रणआयूंषि तारीरहानीव सूर्योवासराणि ॥

(ऋग्वेदे ८ । ४८ । ७)

भावार्थः–हे सोम राजन् ! वासर (जगद्वासक) इस को जिस प्रकार सूर्य बढ़ाता है इसी प्रकार तू मेरी आयु को बढ़ा ॥

द्युगणाद्दिनवारवाप्तिर्द्युगणोऽपि हि देशकालसम्बन्धात् । लाटाचार्येणोक्तो यवनपुरेऽर्द्धास्तगे सूर्ये ॥१८॥ रव्युदये लङ्कायां सिंहाचार्येण दिनगणोऽभिहितः । यवनानां निशि दशभिर्गतैर्मुहूर्त्तैश्च तद्गुरुणा॥१९॥लङ्कार्धरात्रसमये दिनप्रवृत्तिं जगाद चार्यभटः । भूयः स एव सूर्योदयात् प्रभृत्याह लङ्कायाम्॥२०॥देशान्तरसंशुद्धिं कृत्वा चेन्न घटते तथा तस्मिन् । कालस्यास्मिन्साम्यं तैरेवोक्तं यथाशास्त्रम् ॥२१॥ मध्यान्हं भद्राश्वेष्वस्तमयं कुरुषु केतुमालानाम् । कुरुतेऽर्द्धरात्रमुद्यन्भारतवर्षे युगपदर्कः ।२२।

उदयो यो लङ्कायां सोऽस्तमयः सवितुरेव सिद्धपुरे ।
मध्याह्नो यमकोट्यां रोमकविषयेऽर्द्धरात्रः सः ॥ २३ ॥
अधिमासकोनरात्रग्रहदिनतिथिदिवसमेषचन्द्रार्कः ।
अयनर्त्वार्क्षगतिनिशाः समं प्रवृत्ता युगस्यादौ ॥ २४ ॥
अन्यद्रोमकविषयाद्देशान्तरमन्यदेव यवनपुरात्लङ्कार्द्धरात्रसमयादन्यत्सूर्योदयाच्चैव॥२५॥सूर्यस्यार्द्धास्तमयात्प्रतिदिवसं यदि दिनाधिपं ब्रूमः । तत्रापि नाप्तवाक्यं न च युक्तिः काचिदन्यास्ति ॥ २६ ॥ क्वचिन्निशादिवसपतेः""क्वचित्क्वचित् । स्वल्पे स्वल्पे स्थाने व्याकुलमेवं दिनपतित्वम् ॥ २७ ॥ होरावार्त्ताप्येवं यस्माद्धोरा दिनाधिपस्याद्या । तस्याऽपरिनिष्ठाने होराधिपतिः कथं भवति ॥ २८ ॥ अविचार्यैवं प्रायो दिनवारे जनपदः प्रवृत्तोऽयम् । स्फुटतिथिविच्छेदसमं युक्तमिदं प्राहुराचार्याः ॥ २९ ॥ अ० १५ पञ्चसिद्धान्तिकायाम् ॥

वराहमिहिर ने उपरोक्त श्लोक लिखे हैं । एवं इस पर वासनानामक टीका श्री महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी प्रोफ़ेसर संस्कृत कालिज बनारस ने की है । पाठकों के अवलोकनार्थ भाषा में अर्थ किया गया है ॥

भाषार्थः–जिस कारण अहर्गणसे वारप्राप्ति होती है और अहर्गण भी देशकाल के सम्बन्ध से सिद्ध होता है । जैसेः–लाटाचार्य ने यवनपुर (जौनपुर) में सूर्यास्त समय में, सिंहाचार्य ने लङ्का में, सूर्योदय काल में मुसलमानों के गुरु यवनाचार्य ने रात्रि में १० मुहूर्त बीतने पर अहर्गण कहा है और आर्यभट्ट ने तो एकत्र लङ्का में अर्द्धरात्रि समय दिन प्रवृत्ति कही है । पुन. उन्हीं आर्यभट्ट ने दूसरे स्थान में लिखा है कि लङ्का में सूर्योदय से वार प्रवृत्ति होती है ॥१८।१९।२०॥ उस २ देश में देशान्तर की शुद्धि भी की जावेतो भी इसप्रकार काल की एकता नहीं होती तो काल साधनार्थ उन्हीं आचार्यों द्वारा शास्त्रसम्मत कहा गया है, उसी प्रकार इस विषय में काल की समता किस प्रकार की है यह समस्त आगे कही जाती है:–

भारतवर्ष में जब सूर्य उदित होता है उस समय भद्राश्व वर्ष में मध्याह्न, कुरुवर्ष में सूर्यास्त, केतुमाल वर्ष में आधीरात एवं लङ्का में जब सूर्य उदय तब सिद्धपुर में सूर्यास्त, यमकोटि में मध्याह्न, रोमक नगर में आधीरात। इस प्रकार गणक लोग देश की स्थिति जानकर अपने २ अभीष्ट देश अभीष्टकाल में अहर्गण साधते हैं और तदनुसार ग्रहों को सर्वत्र अपने २ समय में वास्तविक ही देखते हैं। दिन के आरम्भ भेद से इस में कोई हानि नहीं। ऐसा आचार्य का अभिप्राय है॥ २१। २२। २३॥ युग के आदि में अधिमास क्षय-तिथि, ग्रह, सावनदिन, तिथि, मेषराशि, चन्द्रमा, सूर्य, अयन, ऋतु, मास ग्रगति, रात्रि ये सब बराबर एक ही समय में प्रवृत्त हुवे अर्थात् सूर्यास्त समय में अधिमासादि सब एक साथ प्रवृत्त हुवे परन्तु किस स्थान में? सो आचार्य नहीं कहते परन्तु प्रायः सब सिद्धान्तों के अनुसार लङ्का ही में युगादि हुई॥ रोमक देश से जो देशान्तर लिया जाता है वह दूसरा है। एवं जौनपुर से जो देशान्तर लिया जाता है वह और ही है॥२४॥ लङ्का में आधीरात से वार-प्रवृत्ति हुई यह किसी का मत है और यहीं सूर्योदय समय वार प्रवृत्ति हुई यह औरों का मत है। अब यदि प्रतिदिन सूर्य के आधे अस्त समय ही से हम लोग दिनाधिप अर्थात् वारप्रवृत्ति को कहें, उस में भी कोई आप्तवाक्य प्रमाण नहीं और न कोई युक्ति ही है। सूर्य से किसी स्थान में सन्ध्या, किसी स्थान में दिन, किसी स्थान में रात्रि होती है इस प्रकार छोटे छोटे स्थानों में भी वार प्रवृत्ति की असङ्गति होती है॥ २५। २६। २७॥ जैसे पहिले वारप्रवृत्ति की बात कही गई उसी प्रकार "होराधिपति" की वार्त्ता भी जाननी चाहिये। जिस कारण दिन से पहिले होराधिपति होता है। इस कारण वारप्रवृत्ति के अनिश्चय होने पर होराधिपति का निश्चय नहीं हो सकता॥ २८॥ और यह देश प्रायः बिना विचार ही जिस दिन जो वार सुनता है उस दिन उस वार की प्रवृत्ति मानता है। अर्थात् आज कौन दिन है, यह परम्परा ही से जाना जाता है, इस में कोई गणित की युक्ति नहीं है जिस से वार ज्ञात किया जावे। अब जो आचार्यों ने जो यह गणित स्फुट तिथि आदि विचार के तुल्य हो वही गणितयुक्त समीचीन कहा है। अर्थात् जिस गणित से ग्रहगण तुल्यता को प्राप्त हों वही गणित समीचीन जानना, दिनपति चाहे जो हो इस में हम को आग्रह नहीं॥

मास

हमारे व्यवहार में अर्थात् शास्त्रों में एवं लोक में चान्द्रमास से व्यवहार

होता है (विशेष देखना हो तो सूर्यसिद्धान्त अ० १४ देखो) चान्द्रमास दो प्रकार का होता है। एक अमावास्या से दूसरी अमावास्या तक एक। इस को "अमान्त मास" कहते, एवं एक पौर्णमासी से दूसरी पौर्णमासी तक दूसरा। इस को "पूर्णिमान्त" मास कहते हैं। व्यवहार दोनों ही प्रकार के महीनों से होता है, परन्तु मुख्य कर "अमान्त" मास से होता है॥

चन्द्रमा जो पृथिवी को एक बार पूरा परिभ्रमण कर लेता है, इस में २७ दिन ७ होरा, ४३ मिनट ११.५ सेकेण्ड समय लगता है। यही पूर्णिमान्त मास होता है, एवं एक अमावास्या से दूसरी अमावास्या तक में सामान्यतः २९ दिन १२ होरा ४४ मिनट २.८७ सेकेण्ड समय होता है। इसी को अमान्त एवं मुख्य चान्द्रमास कहते हैं॥ अमान्त और पूर्णिमान्त मास कब से आरम्भ होता है। वह नीचे लिखा जाता है॥

अमान्त		पूर्णिमान्त
चैत्र	शुक्लपक्ष	चैत्र
	कृष्णपक्ष	वैशाख
वैशाख	कृष्णपक्ष	
	शुक्लपक्ष	ज्येष्ठ

अमान्त एवं पूर्णिमान्त मास होने का प्रमाणः—

अमावास्यया मासान् सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति। अमावास्यया हि मासान्संपश्यन्ति पौर्णमास्या मासान् सम्पाद्याहरुत्सृजन्ति पौर्णमास्यया हि मासान् संपश्यन्ति॥
(तै० ब्रा० ७। ५। ६। १)

स्पष्ट है। भाषा में अर्थ करने की आवश्यकता नहीं॥

अधिक मास

युग के आरम्भ से अमावास्या के अन्त तक एक चान्द्रमास शेष रहता है। इस चान्द्रमास के शेष होने से उस का ५४ दण्ड २९ पल ३१ विपल ५२ अनुपल १० प्रत्यनुपल के अनन्तर सूर्य वृषराशि में प्रवेश करता है अर्थात् वृष की सङ्क्रान्ति में एक सौरमास शेष रहता है। इस लिये सौर मास और चान्द्रमास इन दोनों के अन्तर ५४ दण्ड, २९ पल, ३१ विपल, ५२ अनुपल, १० प्रत्यनुपल हो जाता है, उस के अनन्तर मिथुन की सङ्क्रान्ति समय

द्विगुण अर्थात् १ दिन ४६ दण्ड, ५५ प०, ३ वि०, ४१ अ० प० बढ़ता है। एवं फर्कट सक्रान्ति में तीन गुण और सिंह की सक्रान्ति में चार गुण, इसी प्रकार क्रमशः बढ़ते २ मीन सक्रान्ति में अर्थात् १ वर्ष में दोनों का अन्तर १० दिन ५३ द०, ३० प०, २२ विपल, ३० अ० प० होता है। इसी प्रकार प्रत्येक सौर और चान्द्रमास में एक दिन का तारतम्य होता है। एवं १ वर्ष में प्राय ११ दिन अधिक होते हैं। अतएव ये दिन सब जब क्रमशः ३० दिन पूरे हो जाते हैं तो अधिक मास होता है, इसी को अधिमास कहते हैं। वेदों में भी अधिमास का उल्लेख है॥

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः। वेदाय उपजायते॥
(ऋ० सं० १। २५। ८)

अर्थात् यह जो काल के विभाग १२ महीने हैं। इन में प्राणिमात्र उत्पन्न होते हैं। एव इन बारह से अधिक महीना होता है। यानी अधिमास (उपजायते)॥

अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गं त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते।
(अथर्व० १३। ३। ८)

अर्थात् जिस परमात्मा ने दिन रात ३० दिन का महीना, १३ महीने (अधिमास गिन कर) रचे हैं॥

---

१५ तिथियों का वर्णन वेदों में

अग्नेः पक्षति (परिवा) र्वायोर्निपक्षति (द्वितीया) रिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै पञ्चमीन्द्राग्न्यै षष्ठी मरुतां सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्यम्णो नवमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यमस्य त्रयोदशी॥
(यजुर्वेद अ० २५। ४)

भावार्थ-पक्षति (परिवा) निपक्षति (द्वितीया) तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी इन की क्रम से अग्नि, वायु, इन्द्र, सोम, अदिति, इन्द्राग्नी, मरुत, बृहस्पति, अर्यमा, धाता, इन्द्र, वरुण, यम सज्ञा हैं॥

वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में अष्टका, उदष्ट, व्यष्टका तिथियों का भी वर्णन है॥

तस्य व्रात्यस्य । योस्य द्वितीयोऽपानः साष्टका ॥

(अथर्व सं० १५ । १६ । २)

पौर्णमास्यां पूर्वमहर्भवति । व्यष्टकामुत्तरम् अमावास्यायां पूर्वमहर्भवति । उदष्ट उत्तरम् ॥ तै०ब्रा०१।८।१०।२॥

अर्थात् कृष्ण प्रतिपदा से आठवीं तिथि को "व्यष्टका" और शुक्ल की परिवा से आठवीं तिथि को "उदष्ट" कहते हैं ॥

चन्द्रमा की कला की ह्रास वृद्धि

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आप्यायसे पुनः। वायुः सोमस्य रक्षिता समाना मास आकृतिः॥ ऋ० सं १०।८५।५॥

यमादित्या अंशुमाप्याययन्ति यमक्षितमक्षितयः पिबन्ति ॥

(तै० ब्रा० २ । ४ । १४)

हे चन्द्र ! तुम्हें सूर्य की किरणें (कृष्ण पक्ष में) शोष जाती हैं। एवं पुनः कला २ कर बढ़ाती हैं (शुक्ल पक्ष में)।

नवो नवो भवति जायमानोऽह्नांकेतुरुपसामेत्यग्रे। भागं देवेभ्यो विदधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरति दीर्घमायुः ॥

(ऋ० सं० १० । ८५ । १९)

अर्थात्–जिस प्रकार सूर्य किरणों से चन्द्रमा की कला प्रतिदिन २ बढ़ती बढ़ती पूर्णमासी को पूरी होजाती हैं। इसी प्रकार मेरे ऐश्वर्यों को मेरी आयुभर वृद्धि करो ॥

तिथि

6905

चन्द्रमा प्रतिदिन राशिचक्र में पश्चिम से पूर्व ओर १३ । १० । ५५ जाता है और सूर्य ५९ । ८ चलता है। इसी कारण चन्द्रमा प्रतिदिन सूर्य से १२ अंश, ११ कला, [illegible] विकला करके पूर्व की ओर आगे जाता है। चन्द्रमा की

इस प्रात्यहिक अग्रगति से एक २ तिथि बनती है। चन्द्रमा की कला (प्रकाश का १६ वां भाग) का वृद्धि का नाम शुक्लपक्ष और ह्रास का नाम कृष्णपक्ष। चन्द्रमा का आकाश के पक्षी भी कहते हैं। इसी कारण इस के दो पक्ष (डैने) लिखे हैं। चन्द्रमा जब सूर्य से १८० अंश वा छः राशि अन्तर में होता है तो पूर्णमासी तिथि कहते हैं। एव पूर्वोक्त रीति से चन्द्रमा जब १८० अंश से १२, ११, ४७ पूर्व से पश्चिम गमन पूर्वक९० अंश पहुंचने पर कृष्णाष्टमी तिथि होती है। एव क्रमश. सूर्य के निकट होने से (एक स्थान में) अमावास्या तिथि होती है। पुनः क्रम २ से चन्द्रमा सूर्य से जैसे २ दूर होता जावेगा वैसे २ चन्द्रकला बढ़ती आवेगी, एवं बढ़ते २ जब १८० अंश पर आजावेगा तो पूर्णमासी होगी। अब इस के प्रमाण दिये जाते हैं:-

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथिः॥ ऐ० ब्रा० ३२।१०॥

चन्द्रमा के एक उदय से दूसरे पर्यन्त काल की तिथि संज्ञा है॥

चन्द्रमा वै पञ्चदशः। एष हि पञ्चदश्यामपक्षीयते॥ पञ्चदश्यामापूर्यते॥ (तै० ब्रा० १।५।१०)

आशय वस्तुतः चन्द्रमा एक ही है, पर लोक में व्यवहार होता है कि परिवा का चन्द्र द्वितीया का चन्द्र आदि। यही एक चन्द्रमा कृष्णपक्ष में क्रमशः १५ दिन घटता है। एव पुनः शुक्लपक्ष में १५ दिन क्रम २ से बढ़ता है॥

तिथि भाग ७२०

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्त्ति चक्रं परि द्यामृतस्य। आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः॥ ऋ० सं० १।१६४।११॥

भावार्थ-एक चक्र (संवत्सर वा राशिचक्र) में १२ महीने वा राशि अविचल सनातन हैं और जिस में सूर्य के पुत्र (सूर्य से उत्पन्न) स्वरूप ३६० जोड़े (अहोरात्र) अर्थात् ७२० तिथि भोग हैं॥

अमावास्या और पौर्णमासी

तस्य व्रात्यस्य। यदादित्यमभिसंविशन्त्यमावास्यां चैव तत्पौर्णमासीं च॥ तस्य व्रात्यस्य॥१॥ यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्यमक्ष्यसौ स चन्द्रमाः॥ (अथर्व० १५।१३।९।१०)

भावार्थः—उस प्रात्म के अङ्गस्वरूप सूर्य और चन्द्रमा जब एक स्थान में होते हैं तब अमावास्या होती है ॥ १ ॥ उस प्रात्म की दहिनी आंख स्वरूप और बाईं आंखस्वरूप चन्द्रमा है ॥ पुनः—

चन्द्रमा अमावास्यायामादित्यमनुप्रविशति ।
आदित्याद्वै चन्द्रमा जायते ॥ ऐतरेयब्राह्मणे ४०।५

भावार्थः—चन्द्रमा अमावास्या को सूर्य के साथ (समसूत्रस्थ) होता है और पुनः उस से अलग होता है ॥ पुनः—

एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमा स यत्रैष एतां रात्रिं न पुरस्तान्न पश्चाद्ददृशे तदिमं लोकमागच्छति स इहैवापश्चौषधीश्च प्रविशति स वै देवानां वस्वन्नं ह्येषां तद्येषां रात्रिमिहामावसति तस्मादमावास्या नाम ॥
(शतपथ ब्राह्मणे १।६।४।५)

भावार्थः—यह चन्द्रमा जो देवों के अन्न(ओषधि)आदि करने वाला है सो जिस रात्रि में कुछ भी नहीं दीख पड़ता है उस रात्रि की अमावास्या संज्ञा है॥

पौर्णमासी

सोमावास्यायां रात्रिमेतया षोडश्या कलया सर्वमिदं प्राणभृदनुप्रविश्य ततः प्रातर्जायते ॥ बृहदारण्यके ॥

भावार्थः—वह चन्द्रमा जिस रात्रि में १६ कलाओं से प्रकाशित होता है तो सब प्राणियों को सुखप्रद होता है अर्थात् पौर्णमासी को ॥

शुक्ल या पूर्वपक्ष और कृष्ण वा अपरपक्ष

पूर्वपक्षं वै देवान्वजयन्त । अपरपक्षमन्वसुराः ।
ततोदेवा अभवन् । परा सुराः॥ तै० ब्रा० २।२।३।१

अर्थात्—जिस समय उत्तरमेरुनिवासियों को शुक्लपक्ष होता उस समय उस के विरुद्ध दक्षिणमेरुनिवासियों को कृष्णपक्ष होता है ॥

आश्रित्यताममावास्यां पश्यतः सुसमागतौ ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥

जिस तिथि में चन्द्रमा और सूर्य समसूत्रस्थ होता है उस को अमावास्या या "दर्श" कहते हैं ॥

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा ।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र! रविसंक्रान्तिरेव च ॥

चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा, सूर्य की संक्रांति इन का नाम "पर्व" है ।

या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राका ।
या पूर्वामावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ॥
(ऐ० ब्रा० ३२ । १०)

अर्थ–चतुर्दशीयुक्त पौर्णमासी को "अनुमति" एवं परिवायुक्त पौर्णमासी को "राका" कहते हैं। इसी प्रकार चतुर्दशीयुक्त अमावास्या को "सिनीवाली" एवं परिवायुक्त अमावास्या को "कुहू" कहते हैं । इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण में भी लिखा है । ६ । १० ॥

क्षयतिथि

कल्प या युग के आरम्भ में सौम और चान्द्रदिन एक ही समय आरम्भ होता है किन्तु सावनदिन से चान्द्रदिन न्यून होने से सावनदिन के शेष होने के पहिले वह शेष होजाता है अर्थात् उस के परदिवस में सूर्योदय से आगे शेष होजाता है, यही चान्द्र दिन के शेष एव पर दिवस में सूर्योदय के शेष इन्हीं दोनों के बीच के समय को "अवम" या क्षयतिथि वा तिथि की हानि आदि कहते हैं । यही अवशिष्टाङ्क प्रतिदिन बढ़ते २ जब ६० दण्ड पूरा होता है तब पूरी एक तिथि की हानि या क्षयतिथि होती है । इस का भी वेद में उल्लेख है.–

द्वौ च ते विंशतिश्च ते रात्र्येकादशावमाः॥ अथर्व २१।६।४७।५

अर्थात् १ वर्ष में ११ "अवम" एवं दो वर्ष में २२ इसी प्रकार और जानो। यहां स्पष्ट 'अवम' शब्द तिथि का वाचक है । जैसा भास्कराचार्य ने अपने सिद्धान्तशिरोमणि नामक ज्योतिषग्रन्थ में लिखा है ॥

सायन और निरयण

ग्रहगण, निरन्तर राशिचक्र में भ्रमण करते हैं । इस राशिचक्र के

किसी स्थान को आरम्भ नहीं कह सकते, तब सूर्य मार्ग के जो दो स्थानों में सूर्य के आगमन समय दिन रात का परिमाण बराबर होता है और जिन दो स्थानों में अयन शेष होगा, उन्हीं चारों स्थानों में से किसी स्थान से आरम्भ कहा जासकता है। किन्तु विषुवरेखा के जिस स्थान में सूर्य के आने से दिनमान वृद्धि और वृक्ष लता आदि का नूतन पल्लवादि उद्गम होते हुए हों, उसी स्थान को राशिचक्र का आरम्भ कह सकते हैं। इसी स्थान से सूर्यमार्ग को ३६० अंशों में विभक्त कर उस के प्रथम ३० अंश मेष, उसके बाद ३० अंश वृष इत्यादि क्रम से १२ राशि कल्पना कर जो लग्न स्फुट और ग्रह स्फुट गणना की जावे उस का नाम "सायन" है ॥

ज्योतिष गणना के प्रथम (आरम्भ काल में) आकाशमण्डल के चिह्नित मेष राशि स्थित अश्विनी नक्षत्र के प्रारम्भ में दिन और रात्रि मान समान स्थिर हुआ था। पीछे क्रम २ से नक्षत्रगण धसकता जाता है। विषुवरेखा से प्रतिवत्सर अश्विनी नक्षत्र जितनी दूर धसक जावेगा, उसी अश्विनी नक्षत्र में सूर्य के आगमन (समय) उसी दिन को वत्सर का पहिला दिन कल्पना कर लग्नस्फुट ग्रहस्फुट द्वारा उसी स्थान को राशिचक्र का आरम्भ कह कर जो गणना की जावे, उस को "निरयण" कहते हैं ॥

हमारे ज्योतिषशास्त्र के अनुसार राशिचक्र वा अयन प्रतिवर्ष ५४ विकला प्रतिमास ४ विकला ३० अनुकला और प्रतिदिन ९ अनुकला धसकता है। एवं ६६ वर्ष ८ मास में राशिचक्र विषुवरेखा से एक अंश करके चला है और इसी प्रकार राशिचक्र विषुवरेखा से चल २ कर समय २ पर उक्त विषुवरेखा के स्थान में मिल जाता है। सम्प्रति सूक्ष्मगणनानुसार लगभग २६००० वर्ष में राशिचक्र का विषुवरेखा पर पूरा एक फेरा होता है और प्रति वत्सर इस की गति ५०.३ विकला है। वेद में भी "अयन" का उल्लेख है:-

भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ अथर्व १९ । ७ । २ ॥

अर्थात्-आश्लेषा नक्षत्र के अन्त एवं मघा की आदि में "अयन" है ॥

भारतवर्ष में यद्यपि प्रमाण एवं युक्ति से "सायन" मत ठीक है, परन्तु अद्यावधि ज्योतिष के विद्वानों ने इस को स्थिर नहीं किया है और अधिकांश निरयण मत से "पञ्चाङ्ग" बनाते हैं। जिस लिये सायन और निरयण दो पक्ष चल रहे हैं, इस लिये दोनों में कौन सा प्रकृत शास्त्रसम्मत है, इस को हम प्रमाणों से सिद्ध करते हैं:-

यस्मिन्दिने निरंशःस्यात्संस्कृतोर्कोऽयनांशकैः ।
तद्दिनं च महापुण्यं रहस्यं मुनिभिःस्मृतम् ॥
(ज्योतिर्निबन्धे वसिष्ठः)
अयनांशसंस्कृतो भानुर्गोले चरति सर्वदा ।
अमुख्याराशिसंक्रान्तिस्तुल्यः कालविधिस्तयोः ॥
स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः ॥
सुकृतं चलसंक्रान्तावक्षयं पुरुषोऽश्नुते ॥ पुलस्त्यस्मृतौ ॥
चलसंस्कृततिग्मांशोः संक्रमो यः स संक्रमः ।
अजागलस्तनइव राशिसंक्रान्तिरुच्यते ॥
पुण्यदां राशिसंक्रान्तिं केचिदाहुर्मनीषिणः ।
नैतन्मम मतं यस्मान्नस्पृशेत् संक्रान्तिकक्षया ॥ वसिष्ठः ॥
संस्कृतायनभागार्कः संक्रान्तिस्त्वयनं किल ।
स्नानदानादिषु श्रेष्ठा मध्यमःस्थानसंक्रमः॥ सोमसिद्धान्तः॥
अयनांशसंस्कृतार्कस्य मुख्या संस्कृतिरुच्यते ।
अमुख्या राशिसंक्रान्तिस्तुल्यः कालावधिस्तयोः ॥ ४७ ॥
(रोमशसिद्धान्त स्पष्टाधिकार)

चलसंस्कृततिग्मांशोः संक्रमो यः स संक्रमः। नान्योन्यत्र च तत्क्षेत्रं नैति तत्क्रान्तिकक्षया ॥ ६२ ॥ शाकल्यसंहिता।तृतीयाध्याय सू०सि०अ० १४ श्लोक ७।८।९।१०देखो–

उपरोक्त सब वचनों का यही आशय है कि जितने वैदिक व शास्त्रीय यज्ञादिक संस्कार हैं, सायन गणनानुसार ही होना उत्तम है, निरयण से नहीं ॥

शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः । युगानां परिवर्त्तन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥ सू० सि० अ० १ । ९ ॥

इस पर रङ्गनाथ की टीका इस प्रकार है –

कालवशेन ग्रहचारे किंचिद्वैलक्षण्यं भवतीति तत्तदन्तरं

ग्रहचारे प्रसाध्य तत्तत्कालस्थितलोकव्यवहारार्थं शा-
स्त्रान्तरमिव कृपालुरुक्तवान् ॥

आशयः-कालवशात् ग्रहोंकी गति में भेद पड़ता है। इस लिये समय २ पर ग्रहों को वेधकर बीज देवे और लोक व्यवहारार्थ तिथ्यादि का निश्चय करे॥

अत्र गणितस्कन्धे उपपत्तिमानेवागमः प्रमाणम् ॥

(भास्कराचार्य, गोलबन्धाधिकारः)

अर्थ-इस गणित स्कन्ध में "उपपत्तिमान्" ही शास्त्र प्रमाण है ॥

यस्मिन्देशे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम् ।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात् तिथ्यादिनिर्णयम् ॥

अर्थ-जिस देश में जिस काल में जिस प्रकार दृग्गणितैक्य दीखे, उसी पक्षद्वारा तिथ्यादि का निश्चय करे ॥

"महाराज द्विजराज श्री ५ महेश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुराख्येन श्रीकाशीनरेशेन''' आदिष्टः पञ्चाङ्गकरणे प्रवृत्तोऽहम्। भवति यद्यप्यत्र सायनगणनैव मुख्या तथा-प्यस्मिन्भारतवर्षे सर्वत्र निरयणगणनाया एव प्रचारात् सामान्यजनप्रमोदायेदं तिथिपत्रं निरयणगणनयैव व्यरचयम्"

आशयः-महाराज द्विजराज श्री ५ महेश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर नामक काशी नरेश की आज्ञा से मैं पञ्चाङ्ग बनाने के लिये प्रवृत्त हुवा हूं। यद्यपि शास्त्रप्रमाण से सायन गणना ही मुख्य है, तथापि इस भारतवर्ष में सर्वत्र निरयणगणना के प्रचार से एवं सामान्यलोगों के प्रसन्न करने के लिये इस तिथिपत्र को निरयण गणना द्वारा मैंने रचा ॥

देखो भूमिका "ऋतुवर्णन" यजुर्वेद का प्रमाण सायनगणनानुसार ऋतुओं और मास का होना ॥

मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ॥ तै० ४ । ४ । ११
आश्वयुजामाश्वयुजीकर्म ॥१॥ आहिताग्नेराग्रा-
यणस्थालीपाकः॥४॥ आश्वलायन गृ०सू०अ०२खं०२

मार्गशीर्ष्यां प्रत्यवरोहणं चतुर्दश्याम् ॥१॥ पौर्णमास्यां वा॥२॥ हेमन्तं मनसा ध्यायेत् ॥५॥ आश्व० गृ० सू० २।३
अथातोध्यायोपाकरणम् ॥१॥ ओषधीनां प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावणस्य ॥ २ ॥ आश्वलायन गृ० सू० ३ । ५

इन वचनों का भी यही आशय है कि सायनगणना मुख्य है । इसी से वैदिक एवं स्मार्तकर्म होने चाहियें ॥

ग्रहण

चन्द्रमा अमावास्या को सूर्य और पृथिवी के मध्यस्थान में प्रवेश करता है और पृथिवी पूर्णिमा को चन्द्रमा और सूर्य के मध्यवर्तिनी होती है । पृथिवी स्वय निस्तेज एव गोलाकार है, इस हेतु इस का जो भाग सूर्यरश्मि से प्रकाशित होता है उस के विपरीत भाग (परली तरफ) में सूच्याकार (सूई की नोक की सी आकृति) इस भूच्छाया मे जब चन्द्रमा प्रवेश करता है तब वह क्रमश मलिन होने लगता है । इसी को "चन्द्रग्रहण" कहते हैं । ऐसी घटना केवल पूर्णमासी ही को होती है इस कारण पूर्णमासी ही को चन्द्रग्रहण हो सकता है । चन्द्रमण्डल सूर्य और पृथिवी के मध्यवर्ती होने से सूर्यरश्मि अवरुद्ध होती है उसी को "सूर्यग्रहण" कहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के सगमकाल में अर्थात् अमावास्या को जब सूर्य ग्रहण होने की सम्भावना होती है । यदि चन्द्रकक्षा और भूकक्षा समतल स्थित होती तो प्रति पूर्णमासी को चन्द्रग्रहण एव प्रति अमावास्या को सूर्यग्रहण होता । क्योंकि उस २ काल मे सूर्य चन्द्रमा और पृथिवी समसूत्र मे रहने से चन्द्रद्वारा सूर्यरश्मि आच्छन्न वा भूच्छायाद्वारा चन्द्रबिम्ब दीप्तिहीन होता । किन्तु चन्द्रकक्षा और पृथिवी कक्षा समतलस्थ नही है । इन दो कक्षाओं के दो बिन्दुमात्र में तिर्यग् भाव से सन्धि होती है । जिन (राहु, केतु) को चन्द्रपात कहते हैं, इसी पातस्थान मे चन्द्रमा जब आता है, चन्द्रमा सूर्य और पृथिवी समतलस्थ होती हैं । अतएव पूर्णमासी वा अमावास्या को चन्द्रमा अपने पातस्थ या निकटस्थ न होने से चन्द्र या सूर्यग्रहण नही होता ॥

चन्द्रग्रहण के नियम

१-पृथिवी की छाया के केन्द्र से चन्द्रबिम्ब के केन्द्र तक जो अन्तर है, वह भूच्छाया और चन्द्रमाके व्यासार्द्धके योगसे न्यून न होनेसे ग्रहण नही हो सक्ता॥

२–चन्द्रमा के केन्द्र से छायाकेन्द्र पर्यन्त जो अन्तर है,वह छाया और चन्द्रमा के व्यासार्द्ध वियोग फल की अपेक्षा न्यून अथवा दोनों समान न होने पर पूर्ण ग्रहण नहीं हो सकता ॥

३–पृथिवी से चन्द्रमा जितनी दूर, भूच्छाया उस के प्रायः साढ़ेतीन गुण अधिक दूर विस्तृत एवं इस छाया के जिस प्रदेश में चन्द्रमा प्रवेश करता है उस के परिसर चन्द्रव्यास के प्राय. तीन गुण । चन्द्रबिम्ब जब सम्यक् रूप से छाया में प्रविष्ट होता है, उस समय "पूर्णग्रहण" होता है । और जिस समय उस का एक अंशमात्र छाया में आच्छन्न होता है उस समय "आंशिकग्रहण" होता है ॥

४–एक वर्ष में दो बार भी चन्द्रग्रहण हो सकता है और चन्द्रग्रहण एकबार न हो यह भी सम्भव है । एक वर्ष में पांच सूर्यग्रहण और दो चन्द्रग्रहण का होना सम्भव है ॥

५–चन्द्रमा अमावास्या को १७ । २१ पातस्थान में निकटवर्ती होने पर सूर्यग्रहण, एवं पूर्णमासी को ११ । ३४ निकट होने पर चन्द्रग्रहण हो सक्ता है॥

६–चन्द्रपात यदि स्थिर रहता तो प्रतिवत्सर एक ही समय ग्रहण होता किन्तु यह पात पूर्व से पश्चिम को सूर्य को प्रायः १८ वर्ष २२८ दिन और ६ होरा में एक बार प्रदक्षिण करता है।इसी कारण इतने समय के अन्त में चन्द्रपात अपने स्थान में प्रत्यागत होता है । सुतरां प्रति १८ वर्ष २२८ दिन छः होरा में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण प्रायः समानरूप से होते हैं ॥

हमारे बहुत से फलितज्योतिषी और पौराणिकों का यह निश्चय है कि जब २ पृथिवी पर अधिक पाप होता है तब २ ग्रहण अधिक होता है । यह उन की भ्रान्तिमात्र है ।

सूर्यग्रहण के नियम

चन्द्रमा द्वारा सूर्य की किरणें अवरुद्ध होने से सूर्यग्रहण होता है । चन्द्रमा यद्यपि वस्तुतः सूर्य की अपेक्षा छोटा है,परन्तु दूरता में वह सूर्य की अपेक्षा पृथिवी के निकटस्थ होने से उस का भी बिम्ब के समान देख पड़ता है । सौरग्रहण तीन प्रकार के हैं:–आंशिक, माध्य, एवं सर्वग्रास ॥

१–सूर्य और चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध योगफल यदि सूर्य के केन्द्र से चन्द्रमा के केन्द्र की अपेक्षा न्यून होता है तो ग्रहण सम्भव होगा ॥

२–सूर्य के दृश्यमान व्यासार्द्ध से चन्द्रमा का दृश्यमान व्यासार्द्ध अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो "खण्डग्रास" होगा॥
३–सूर्य का दृश्यमान व्यासार्द्ध चन्द्रमा के दृश्यमान व्यासार्द्ध से अन्तर करने पर यदि वह सूर्य के केन्द्र से दूरता अपेक्षा न्यून हो तो "सर्वग्रास" ग्रहण होगा॥
४–सूर्यग्रहण कहीं न कहीं प्रतिदिन होता है, परन्तु स्थान विशेष से वह ग्रहण कहीं दीखता है कहीं नहीं दीखता। इस का प्रमाण आगे दिया जावेगा॥

ग्रहणविषयक वैदिक प्रमाण–

यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः। अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः॥५॥ स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन्। गूढं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाऽविन्ददत्रिः॥ ६॥ मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत्। त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा॥ ७॥ ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन्। अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत्॥८॥ यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुरः। अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन्॥ ९॥

(ऋग्वेदे ५। ४०। ५–९॥)

पुनः–

उद्घापतन्तमरुणं सुपर्णं मध्ये दिवस्तरणिं भ्राजमानम्। पश्याम त्वा सवितारं यमाहुरजस्रज्योतिर्यदविन्ददत्रिः॥

(अथर्ववेदे १३। २। २। ३६) पुनः–

स्वर्भानुर्ह वाऽआसुरः। सूर्यं तमसा विव्याध स तमसा विद्धो न व्यरोचत–तस्य सोमरुद्रावेवैतत्तमोऽपाहतां स एषोऽपहतपाप्मा तपति॥ शतपथब्राह्मणे ५। ३।२। २

पुनः–

स्वर्भानुर्वाआसुरः सूर्यं तमसा विध्यत्तदत्रिरपनुनोद तदत्रिरन्वपश्यत् ॥ गोपथब्राह्मणे उ० ३ । १९

पुनः–

स्वर्भानुर्वा आसुरः आदित्यन्तमसाऽविध्यत्तं देवाः स्वरसामानो भवन्त्यादित्यस्य स्तृत्यै॥ताण्ड्यब्राह्मणे ४ ।५।२

पुनः–

स्वर्भानुर्वाआसुर आदित्यन्तमसा विध्यत्तं देवा न व्यजानंस्तेऽत्रिमुपाधावंस्तस्यात्रिर्भासेन तमाऽपाहन्यत्। *प्रथममपाहन् सा कृष्णाविरभवद्यद्द्वितीयं सा रजता यत्तृतीयं सा लोहिती यया वर्णमभ्यतृणत्सा शुक्लासीत् ॥ (ताण्ड्यब्राह्मण ६ । ६ । ८) पुनः–

स्वर्भानुर्वा आसुर आदित्यं तमसा विध्यत् स न व्यरोचत्तस्यात्रिर्भासेन तमोऽपाहन्स व्यरोचत यदेतदभा अभवत्तद्भासस्य भासत्वम् ॥ ताण्ड्यब्राह्मणे १४ । ११ । १४॥

पुनः–

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः । अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्यन्ये अशक्नुवन् । आश्वलायन शाखा अष्टक ४

पूर्वोक्त ऋग्वेद, अथर्ववेद एवं ब्राह्मणग्रन्थों के ग्रहणविषयक मन्त्र और व्याख्यान का एक ही आशय है । इस लिये प्रत्येक प्रमाण का भिन्न २ अर्थ न करके एकत्र आशयमात्र लिखा गया है:–

आशयः–हे सूर्य ! चन्द्रमा ने जो तुझे अन्धकार से घेर लिया है इस से सब लोग अपने २ स्थान न जानकर मुग्ध हो रहे हैं ॥५॥ द्युलोक में तेरा प्रकाश है उस को चन्द्रमा ने आच्छादक होकर अन्धकार से तेरे रूप को एक

*विवरण–इस में ग्रहण के रङ्ग का वर्णन है । कृष्ण, चांदी का रङ्ग, लाल वर्ण और शुक्ल ये चार प्रकार के होते हैं । देखो सू० सि० ग्रहणाध्याय ॥

मात्र छिपा दिया है। इस बात को पूर्णविचार करने पर ज्ञान द्वारा जाना जाता है॥६॥ हे सूर्य ! तेरा नाम मित्र एवं वरुण अनेक स्थानों में लिखा गया है। ऐसे अनेक विशेषण होने पर भी ईश्वरीय नियम के बद्ध हो तुझे अन्धकार निगल गया (सर्वग्रासग्रहण का उपलक्षण है) ॥ ७ ॥ मानो ब्रह्मा ने मेघ की नाईं तुम्हारे लिये चन्द्रमा का आच्छादक अर्पण किया है। उन्मीलनकाल में द्युलोक में पुनः प्रकाश होने लगा ॥ ८ ॥ जिस सूर्य को चन्द्रमा (स्वर्भानु) ने आच्छादित कर लिया था, उस को केवल ज्ञानी लोग (ज्योतिषविद्यावित्) जानते, दूसरे नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

ग्रावण–मेघ। अत्रि=ज्ञानी। स्वर्भानु=चन्द्रमा। आसुर=अन्धकार। अन्वविन्दत्=जाना॥

वेदादि सत्यशास्त्रों में ग्रहण का कारण न तो राहु नामक दैत्य लिखा है और न उस समय स्नान दान एवं श्राद्धादि कुछ कर्तव्य ही लिखा है। जो उपरोक्त प्रमाणों से सिद्ध है॥

सूर्येन्दुभगणधात्री संस्थानविदोऽधिकृत्य कथयामि ।
ग्रहणं सदैव भानोः स्थानविशेषात् क्वचिद्दृश्यम् ॥१॥
अविदितसस्थानानां बोधोऽपि हि जायते यथाधान्यम् ।
क्षीरं शङ्खोपहितं दशनविनाशक्षमं भवति ॥ २ ॥
संक्षेपसूत्रवशतः शशिना भ्रियते दिवाकरो येषाम् ।
तेषां सूर्यग्रहणं स च देशं प्रतिदिनं क्वापि ॥ ३ ॥

भावार्थ–सूर्य चन्द्रमा नक्षत्रगण एवं पृथिवी की संस्था जानने वाले के मत के अवलम्बन से मैं कुछ ग्रहण की विशेषता कहता हूं। सूर्यग्रहण सदैव कहीं न कहीं प्रतिदिन होता है, परन्तु स्थान विशेष से वह ग्रहण कहीं २ दीख पड़ता, कहीं नहीं दीखता। अर्थात् सर्वत्र नहीं दीखता। यह बात गणित द्वारा जानी जाती है। जिस प्रकार भात, दूध को शंख में रख कर खाने से दांतों का नाश होता है यह ओषधि बल से जाना जाता है। उसी प्रकार गणितद्वारा अविदित संस्थान का ज्ञान होता है। जिस देश में दृष्टिरेखा के वश से चन्द्रमा द्वारा सूर्य आच्छन्न होता है उस २ देश में सूर्यग्रहण होता है। यह घटना प्रतिदिन कहीं न कहीं अवश्य होती है। १। २। ३॥

इसी प्रकार जिस समय पृथिवी पर सूर्यग्रहण होता है, उस समय चन्द्रलोक में पृथिवीग्रहण हो जाता है। क्योंकि जिस प्रकार सूर्यरश्मि द्वारा

चन्द्रमण्डल दीप्तिमान् होता है, इसी प्रकार पृथिवी भी सूर्य के आलोक से आलोकमय हो जाती है, इस कारण जब चन्द्रमा पृथिवी और सूर्य के मध्य स्थान में पूर्वोक्त प्रकार समावेशित होता है, उस समय चन्द्रमण्डल द्वारा सूर्य किरण अपवारित हो भूमण्डल अन्धकारमय होकर चन्द्रलोक में अदृश्य होता है, उसी को पृथिवीग्रहण कहते हैं ॥

पुन -वराहमिहिराचार्य ने लिखा है कि-

नीचस्थोऽस्माकमंशुमान्भवति । चन्द्रः परमोच्चस्थोयं-नवहुभानोर्भवति हेतुः ॥७॥ अस्माकमुदयसमये येषा-मल्पास्तगोदिवसनाथः । मध्याह्नो वा येषां तेषामपि न युगपद्ग्रहणम् ॥८॥ तदतीतमुदयगानां क्षणद्वये नैऽस्यद्स्तकेशानाम् । मध्याह्नदेशगानामनवरतं वर्त्तमानेन ॥९॥ उक्तश्च संहितायां मया प्रपञ्चोऽस्य राहुचाराद्यौ । ग्रहणस्य यन्निमित्तं विनैव राहुं रविहिमांश्वोः ॥१०॥

भावार्थ-हमारे उदयकाल या अस्तकाल में अर्थात् सम्पूर्ण दिन में सूर्य दूरस्थ और चन्द्रमा निकटस्थ रहता है। इसी कारण सूर्यग्रहण में चन्द्रमा मेघ की नाईं सूर्य को ढक लेता है। जिस से हम उस को उतने समय तक नहीं देखते। हमारे उदय समय में जिन देशों में सूर्य अस्तप्राय होता, उसी समय जिन देशों में मध्याह्न होता है उन देशों में एक ही काल में ग्रहण दृश्य नहीं होता। लम्बन और अवनति भेद से सूर्य के अदृश्य होने के कारण ॥

जिस कारण वर्त्तमान एक ही दिन में कभी उदय देशों में मनुष्यों को ग्रहण व्यतीत होवे, उस के अनन्तर दो क्षण में निरन्तर अस्त देशों में ग्रहण भावी होवे और मध्याह्न देशों में दो क्षण निरन्तर ग्रहण रहना चाहिये ॥

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण में राहु छोड़ कर जो अन्यान्य वास्तविक कारण है, उन्हें मैंने स्वरचित संहिता में कहा है ॥

नित्यमधस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोः सितं भवत्यर्द्धम् ।
स्वच्छाययान्यदसितं कुम्भस्येवातपस्थस्य ॥ १ ॥

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम् ।
क्षपयन्ति दर्पणोदरविहिता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥

(बृहत्संहितायाम्)

भावार्थ-धूप में रक्खे हुए घट के तुल्य चन्द्रमा का आधा भाग सूर्य की किरणों से प्रकाशित हो जाता है और दूसरा आधा अपनी छाया से अन्धकार में रहता है । सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर पड़कर प्रतिबिम्बित होकर लौट आती हैं और रात्रि के अन्धकार का नाश करती हैं । जैसे धूप में रक्खे हुवे दर्पण पर सूर्य की किरणें पड़ कर मन्दिर के भीतर चली जाती हैं॥पुनः-

भूच्छायां स्वग्रहणे भास्करमर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः ।
प्रग्रहणमतः पश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्धात् ॥

(बृहत्संहितायाम् अ० ५)

भावार्थ-चन्द्रमा अपने ग्रहण में भूमि की छाया में और सूर्यग्रहण में सूर्य और पृथिवी के मध्य में आजाता है,इस कारण ग्रहण होता है । पुनः-

एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः ।
राहुरकारणमस्मिन्नित्युक्तः शास्त्रसद्भावः ॥

(बृहत्संहितायाम् अ० ५)

भावार्थ-यह दिव्यदर्शी आचार्यों ने सत्यशास्त्रों के अनुकूल ग्रहण का कारण कहा है । इस में राहु कारण नहीं है॥ पुनः आर्यभट्ट ने लिखा है कि:-

चन्द्रो जलमर्कोऽग्निर्मृद्भूच्छायापि या तमस्तद्धि ।
छादयति शशी सूर्यं शशिनं च महती भूच्छाया ॥

(आर्यसिद्धान्ते गोलपादे ३७)

अर्थ-जलमय चन्द्रमा अग्निस्वरूप सूर्य को ग्रहणकाल में ढक लेता है और मृत्तिकामय पृथिवी जिस की बड़ी छाया चन्द्रग्रहण काल में चन्द्रमा को ढक लेती है,राहु नहीं ॥ इसी प्रकार भास्कराचार्य ने भी लिखा है कि:-

पूर्वाभिमुखो गच्छन् कुच्छायान्तर्यतः शशी विशति ।
तेन प्राक्प्रग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽस्य निस्सरतः ॥

(सिद्धान्तशिरोमणौ)

भावार्थ-जब चन्द्रमा पूर्व की ओर को जाता हुआ भूमि की छाया में चला जाता है, तब ग्रहण पड़ता है और जब छाया से निकलता है, तब मोक्ष या उपग्रह होता है ॥ ग्रहलाघवकार ने भी यही कारण लिखा है:-

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः ॥

भावार्थ-चन्द्रग्रहण में भूमि की छाया चन्द्रमा को और सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है। इसी प्रकार आदि कवि वाल्मीकि ने भी लिखा है:-

अभ्यधावत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ॥

(वाल्मीकीयरामायण युद्धकाण्ड सर्ग १०२ । ३)

भावार्थ-जिस प्रकार चन्द्रमा (स्वर्भानु) ग्रहणकाल में सूर्य को आच्छादन कर लेता है, उसी प्रकार रावण भी रामचन्द्र जी महाराज की ओर धावा करता है ॥



युक्ति एवं वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध ग्रहण में हेतु कल्पना

१-पुराणों में ग्रहण का विलक्षण कारण लिखा है। जिस समय विष्णु जी मोहनी का रूप धर अमृत बांट रहे थे, राहु नामक एक राक्षस देव वेष बनाकर उन की पङ्क्ति में आ बैठा। जब विष्णु भगवान् ने उस को अमृत दिया, वह उस को उसी समय पी गया। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा ने उस की चुगली खा दी कि यह देवता नहीं है, राक्षस है। इस पर विष्णु ने क्रोध कर चक्र से राहु का शिर काट डाला, परन्तु वह अमृत पी चुका था, इस लिये न मरा। इस कारण से वह सूर्य एवं चन्द्रमा को जहां पाता है वहीं ग्रस लेता है। परन्तु वह उस की गरदन के छेद में होकर निकल आता है। यद्यपि यह लेख महाभारतादि में भी समुद्रमथन प्रसङ्ग में आया है और उसी के अनुसार आलङ्कारिक वर्णन से इस का आशय भी ज्योतिषशास्त्र के अनुकूल ही है। परन्तु इस आलङ्कारिक लेख को न समझ कर लोक में ऐतिहासिक घटना मान कर अन्धपरम्परा चल रही है। हम इस विषय को "पुराण मीमांसा" नामक पुस्तक में लिखेंगे ॥

इस अन्धपरम्परा का कारण फलितज्योतिष एवं पुराण (वस्तुतः नवीन) ग्रन्थ हैं। इसी के अनुसार आधुनिक धर्मशास्त्रों में भी लिखा है कि यही काल राहु गगनगामी चन्द्रमा और सूर्य को स्पर्श करता है, इस कारण

पृथिवीस्थ मनुष्यों को भी अशौच होता है। ग्रासारम्भ काल में मरने का अशौच एवं मोक्ष काल में जन्माशौच करना चाहिये। इसलिये स्नान व्यतिरिक्त शुद्धि नहीं होती। इस के अतिरिक्त ग्रहण काल में राहु के वर्ण अनुसार भूमण्डल में अनेक प्रकार की शुभाशुभ घटना होती हैं। देखो मत्स्य पुराण अ० ६७॥

भारतवर्ष को छोड़ अन्यान्य देशों में ग्रहणकाल में पोपलीला

ग्रहण की उत्पत्ति विषय में अनेक अप्रकृत और भ्रममूलक मत हैं, उस के प्रभाव से अनेक लोगों के चित्त में ग्रहण घटित नाना प्रकार की आशङ्कायें होती हैं। किसी असाधारण कारण द्वारा इस की घटना होती है, एवं इस के द्वारा चन्द्रमा या सूर्य या पृथिवी को अमङ्गल होता है। अनेक जातियों में इस प्रकार विश्वास पहिले था और कहीं २ अब भी है॥

२-पूर्वकाल में रोम नगर में लोग चन्द्रग्रहण काल में चन्द्रमा को यातना-ग्रस्त समझ कर उन के क्लेशशान्त्यर्थ पित्तल यन्त्र बजाया करते थे। एवं ऊंचे स्वर से कोलाहल किया करते थे। उन में बहुतों को ऐसा विश्वास था कि कुहक जीवी लोग चन्द्रमा को आकाश से गिरा कर "दूवांसेत्र" में चराया था एवं उन्हीं लोगों के कुहक द्वारा चन्द्रग्रहण होता है। इस देश में ऐसा नियम था कि कोई व्यक्ति ग्रहण के वास्तविक कारण को प्रकाश रूप से आलोचना न करे॥

३-चीन देश में चीनियों को ऐसा विश्वास है कि भयङ्कर सर्प सब चन्द्रमा और सूर्य को ग्रास करते हैं, इसी कारण उन का ग्रहण होता है। ग्रहण समय में ग्रासकारी सर्प को ताड़ना के लिये चीनी लोग ढपका बजाया करते हैं॥

४-अमेरिका खण्ड के अन्तःपाती मेक्सीको देशीय लोग ग्रहणकाल में उपवास (खाते नहीं) करते हैं। उन का यह विश्वास है कि चन्द्रमा एवं सूर्य में आपस में विवाद हुआ है और चन्द्रमा को सूर्य ने मारा है। इसी निमित्त वे लोग विशेषतः उन की स्त्रियां आपस में एक दूसरे को कटुवचन आदि व्यवहार कर एवं बाहू और अन्यान्य अङ्ग प्रहार द्वारा शरीर से रुधिर बाहर करती हैं, इस विचार से कि जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्य संग्राम में लड़कर आपस में एक दूसरे को क्लेशित करता है, हम लोगों को भी उन के दुःख में सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये॥

५-यूरुप खण्ड में विद्या के प्रभाव से इस समय पूर्वोक्त प्रकार के अनेक

भ्रममूलक संस्कार लुप्तप्राय हो गये और अन्यान्य स्थानों में भी प्रकृत (असली) ज्योतिष सम्यग् रूप से प्रचरित हुआ। हे जगदीश्वर! हमारे देश से यह सायन फलित विद्या कब जावेगी। भगवन्! सिद्धान्त ज्योतिषरूप सूर्य प्रकाशित कर फलितरूपी तिमिर का शीघ्र नाश करो॥

पञ्चाङ्ग

किसी ज्योतिषी का वचन है कि जिस प्रकार हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल इन चार प्रकार की सेना (बल) से राजा पृथिवी को जीतकर अपने वश में कर लेता है। इसी प्रकार मैं भी पञ्चाङ्गरूपी बल से आकाश को वश में कर लेता हूं॥

> चतुरङ्गबलो राजा जगतीं वशमानयेत्।
> अहं पञ्चाङ्गबलवानाकाशं वशमानये॥

अर्थात् १ तिथि, २ वार, ३ नक्षत्र, ४ योग, ५ करण ये पांच अङ्ग हैं। प्राचीन समय में 'वार' और 'योग' पञ्चाङ्ग के अङ्ग नहीं थे और ऐसा भी न था कि इस में पांचों अङ्ग हों। तिथि, करण और सावनदिन (वार) एक ही अङ्ग में थे और योग का तो एकमात्र प्रचार ही नहीं था, क्योंकि सिद्धान्तज्योतिष में (आर्यभट्ट और वराहमिहिर ने भी इन का गणित प्रकार नहीं लिखा है) इन का गणित प्रकार लिखा है और न प्राचीनग्रन्थों में वार, योग, करण शब्द से किसी यज्ञादि का विधान पाया जाता है। भारतवर्ष में प्राय सब ही श्रौत एवं स्मार्त कर्म करने में प्रतिदिन आर्यमात्र को पञ्चाङ्ग व तिथि पत्र की आवश्यकता पड़ती है। तदनुसार प्राचीनकाल से इस तिथिपत्र या पञ्चाङ्ग का प्रचार चला आता है, परन्तु पहिले वेदोत्तरकालीनपञ्चाङ्ग भारतवर्ष भर के लिये एक ही बनता था और पांच वर्ष का पञ्चाङ्ग एकवार बनता था और उसी का प्रचार आर्यों में था। आपस में खेंचातानी नहीं थी, जैसी कि अब है॥

पांच संवत्सरों के नाम एवं प्रमाण –

> संवत्सरोसि परिवत्सरोसि इदावत्सरोसि इद्वत्सरोसि
> (तैत्तरीयब्राह्मण ३।१०।४)

अर्थात् १ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इदावत्सर ४ वत्सर, ५ इद्वत्सर ये पांच वत्सर हैं। और महाभारत में भीष्मजी ने दुर्योधन से कहा है –

> तेषां कालातिरेकेण ज्योतिषां च व्यतिक्रमात्।
> पञ्चमे पञ्चमे वर्षे द्वौ मासावुपजायतः॥ ३॥

एषाभ्यधिका मासाः पञ्च च द्वादशक्षपाः ।
त्रयोदशानां वर्षाणामिति मे वर्त्तते मतिः ॥ ४ ॥

(महाभारते विराट्पर्वणि अ० ५२ श्लोक)

अर्थात् राजा विराट् के गोहरण के पीछे कौरव पाण्डवों की युद्ध तैयारी के समय प्रथम इस बात का निश्चय किया गया कि पाण्डवों के १२ वर्ष वनवास के पूरे हुवे या नहीं ? ग्रहों की गति से प्रत्येक पांच वर्ष पर दो दो महीने अधिक होते हैं । इस हिसाब से वनवास के १२ वर्ष,५ महीने,१२ दिन हुवे । अर्थात् मेरी समझ में १३ वां वर्ष बीत रहा है । इस लिये पाण्डवों के प्रकट होने में (प्रच्छन्न से) कोई सन्देह नहीं है ।। अब तो पांच वर्ष के पञ्चाङ्ग का प्रचार एकमात्र उठगया और भारतवर्ष के भिन्न २ प्रदेशों में भिन्न २ प्रकार पञ्चाङ्ग एक दूसरे से विरुद्ध बनने लगे । केवल घटी,पल,स्पष्टग्रह आदि का भेद हो सो नहीं, दिन,लग्न,तिथि,एवं पञ्चाङ्ग बनाने के ग्रन्थ भी भिन्न २ कल्पित करलिये । एव सायनपञ्चाङ्ग जो शास्त्रानुसार था, उस के स्थान में निरयणपञ्चाङ्ग बनने लगा । इस समय तीन पक्ष के ग्रन्थ एवं इन्हीं तीनों पक्षों के अनुसार पञ्चाङ्ग भी बनते हैं:- १ सौर, २ ब्राह्म, ३ आर्य हैं ॥

सौर वा सूर्यसिद्धान्त के अनुसार मकरन्द विवरण तत्त्वविवेक आदि । ब्रह्मसिद्धान्त के अनुसार करणप्रकाशादि और आर्यसिद्धान्तानुसार ग्रहलाघव और करणकुतूहलादि हैं । इन्हीं तीनो पक्षो के ग्रन्थ आपस में खैंचा-तानी एवं तिथि आदि के निश्चय में झगड़ा डालते हैं और एक २ व्रतादि दो दो दिन किये जाते हैं । ये सब झगड़े फलितज्योतिष के प्रचार से होरहे हैं ॥

संवत् शक आदि

भारतवर्ष में प्रत्येक श्रौत एवं स्मार्त्त कर्म के सकल्प में और पञ्चाङ्ग वा लौकिकव्यवहार में सृष्टिसंवत् का व्यवहार होता था, जिस का वर्णन सूर्यसि० अ० १ अहर्गणानयन में किया गया है । अब इस का प्रचार उठगया और निम्नलिखित संवत् का प्रचार भिन्न २ प्रदेशों में भिन्न २ रीति से होता है:-

१-कलिकाल-चैत्रादि और मेषादि दोनों ही का प्रचार है । पञ्चाङ्ग में कहीं गत कल्पब्द कहीं वर्त्तमान कल्पब्द लिखते हैं । शक वर्ष में ३१७९ मिलाने से गत कलिवर्ष होते हैं ॥

२–सप्तर्षिकाल–इस को लौकिककाल भी कहते हैं। अर्थात् सप्तर्षिनक्षत्र १०० वर्ष में राशिचक्र के एक नक्षत्र से चलकर दूसरे नक्षत्र में जाते हैं और २७ नक्षत्रों को २७०० वर्ष में एकवार भ्रमण करते हैं। परन्तु प्रचार केवल प्रत्येक वर्ष में एक २ वर्ष बढ़ाते जाने का है। एवं १०० वर्ष पूरा होने पर पहिला, दूसरा, तीसरा, इस क्रम से बढ़ाते जाने का है। ज्योतिषशास्त्रानुसार वर्त्तमान कलिवर्ष २७ चैत्रशुक्ल १ दिवस सप्तर्षिकाल का आरम्भ हुवा। वर्ष चैत्रादि और वर्त्तमान है। एवं महीना पूर्णिमान्त होता है॥

३–विक्रमकाल–वर्ष चैत्रादि और कार्त्तिकादि और महीना अमान्त और पूर्णिमान्त दोनों होते हैं। शकवर्ष में १३४ मिलाने से कार्त्तिकादि विक्रम वर्ष और १३५ मिलाने से चैत्रादि विक्रम संवत् होगा॥

४–ईसवी सन्, खिस्तीसन्, अंग्रेजीराज्य समय से इस देश में इस का प्रचार है। वर्ष सायन और सौर होता है और १ जनवरी से वर्ष आरम्भ होता है। इस समय जनवरी का आरम्भ अमान्त पौष या माघ में होता है। शक वर्ष में ७८ ७९ मिलाने से ईसवी सन् होता है॥

५–शककाल–ज्योतिष के करण ग्रन्थों में इस वर्ष से अधिक काम लेते हैं। इस का वर्ष चान्द्र और सौर होता है। चान्द्रवर्ष चैत्रादि और सौरवर्ष मेषादि होता है और महीना अमान्त, एवं पूर्णिमान्त होता है॥

६–चेदिकाल, या कलचुरियाकाल–इस का इन दिनों प्रचार नहीं। विक्रम चैत्रादि संवत् ३०५, शक १७०, ईसवी सन् २४८, २४९ आश्विन शुक्ल प्रतिपदा इस चेदिकाल का आरम्भ होता है। इस का वर्ष आश्विनादि और महीना पूर्णिमान्त एवं अमान्त होता है। इस में १६९। १७० मिलाने से शकवर्ष और २४७। २४८ मिलाने से ईसवी सन् होगा॥

७–गुप्तकाल–इस का इस समय प्रचार नहीं। वर्ष चैत्रादि और मास पूर्णिमान्त होता है। शकवर्ष २४२ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को इस वर्ष का आरम्भ हुवा। इस में २४१ मिलाने से शकवर्ष होगा और ३१९। २० मिलाने से ईसवी सन् होगा॥

८–हिजरी सन् का मूल स्थान अरब देश है। मुसलमानों की अमलदारी से इस देश में इस का प्रचार हुवा 'हिजरा' मुसलमानों का पैगम्बर 'मुहम्मद,' ईसवी सन् ६२२ ता० १५ जुलाई शक ५४४ श्रावण शुक्ल गुरुवार को रात्रि को (मुसलमानों की शुक्रवार की रात्रि) मक्का होकर मदीना गये थे। इस से इस सन् का नाम 'हिजरी,' हुवा। इस का महीना मोहर्रम इत्यादि चान्द्र

है और अधिकमास इस में नहीं जोड़ा जाता। इस लिये वर्ष केवल ३५४ या ३५५ दिन का होता है और इस के अनुसार ३२ या ३३ सौर वर्ष में इस सन् के वर्ष का एक अङ्क सौर वर्ष की अपेक्षा बढ़ जाता है। शुक्ला प्रतिपदा या द्वितीया तिथि से चन्द्रमा को देखने पर इस का महीना आरम्भ होता है। महीना का एक दिन, दूसरा दिन आदि कहने को पहिला चन्द्र, दूसरा चन्द्र इस प्रकार है (चान्द्रदिन या तारीख़)। महीना में २९ या ३० दिन होते हैं। वार और तारीख़ का आरम्भ सूर्यास्त समय से होता है। इस कारण हमारे गुरुवार की रात्रि मुसलमानों की शुक्रवार की रात्रि होती है॥

९–बङ्गाली सन्–इस का प्रचार बङ्गाल प्रान्त में है। इस का वर्ष सौर एवं मेष की सङ्क्रान्ति से आरम्भ होता है। महीना का नाम चैत्र, वैशाख आदि चान्द्र होता है। मेष सङ्क्रान्ति से महीने का आरम्भ होता है, जिस को वैशाख कहते, उस को तामील प्रान्तवाले चैत्र कहते हैं। बङ्गाली सन् १०३० शक वर्ष १८१५ ई० सन् १८९३–९४ बङ्गाली सन् में ५१५ मिलाने से शकवर्ष निकलता है। ५९३, ५९४ मिलाने से ईसवी सन् होता है॥

१०–विलायती सन् बङ्गाल के किसी भाग में मुख्यत ओरियाप्रान्त में प्रचरित है। इस का वर्ष सौर परन्तु महीना चान्द्र होता है। वर्ष का आरम्भ कन्यासङ्क्रान्ति के दिन से होता और महीने का आरम्भ बङ्गालियों में सङ्क्रान्ति के दूसरे या तीसरे दिन से होता। परन्तु विलायती सन् के महीने का आरम्भ सङ्क्रान्ति के दिन से होता है। विलायती वर्ष में ५१४। १५ मिलाने से शकवर्ष होता और ५९२। ९३ मिलाने से ईसवी सन् होगा॥

११–अमली सन्–"ओरिया" प्रान्त के राजा इन्द्रद्युम्न की जन्मतिथि अर्थात् भाद्रपद शुक्ल १२ से यह वर्ष आरम्भ होता है और सङ्क्रमणकालीन महीना आरम्भ होता है। इस का महीना सौर, परन्तु वर्ष चान्द्र सौर होता है। कन्यासङ्क्रान्ति भाद्रपद महीने में द्वादशी के पहिले या पीछे आरम्भ हुआ है॥

१२–फसलीसन् को अकबर बादशाह ने चलाया था। प्रथम हिजरी सन् का वर्षाङ्क इस की बराबर चलता था, परन्तु हिजरी वर्ष केवल चान्द्र (३५४ दिन का) होता है और फसली सौर होता है। इसी से इस वर्ष से एक वर्ष का अन्तर पड़ता है। दक्षिण में जिस फसली सन् का प्रचार है, उस में

५१२ । ५१३ मिलाने से शक वर्ष होगा और ५९०-९१ मिलाने से ईसवी सन् होगा । और बङ्गालियों के फसली सन् में ५१४-५१५ मिलाने से शक वर्ष होता है एवं ५९२ । ९३ मिलाने से ईसवी सन् होता है ॥

१३-सूर सन् या शाहुर सन्-इस को कभी २ " अरबी सन् " भी कहते हैं, ईसवी सन् १३४४ हिजरी ७४५ में यह वर्ष (सूर सन्) आरम्भ हुआ । सूर सन् के वर्ष में ५२१ । २२ मिलाने से शक वर्ष होगा और ५९९ । ६०० मिलाने से ईसवी सन् होगा ॥

१४-हर्ष काल-कन्नौजदेश के राजा हर्षवर्द्धन ने इस काल को चलाया था । नेवाड़ी के समय से मथुरा और कन्नौज-इन प्रान्तों से आरम्भ हुआ था परन्तु अब इस का प्रचार नहीं है । इस वर्ष में ५२८ मिलाने से शक वर्ष होगा और ६०६ । ६०७ मिलाने से-ईसवी सन् होगा ॥

१५-मगी सन्-चटगांव प्रान्त में चलता है-इस में और बङ्गाली सन् में ४५ वर्ष का अन्तर है शेष सब अंशों में बराबर है ॥

१६-कोल्लम काल-'परशुराम काल' यह काल मलबार प्रान्त में 'मंगलोर' से कुमारी पर्यन्त और तीने वेल्ली से आरम्भ हुआ । इस का वर्ष सौर और इस के महीनों के नाम मेष, वृष इत्यादि राशियों के नाम के अपभ्रंश हैं-१००० वर्षों का इस का एक चक्र होता है । और इस समय इस का चौथा चक्र है परन्तु अब इस की वर्ष गणना १००० से भी अधिक होने लगी है । इस वर्ष में ७४६ । ४७ मिलाने से शकवर्ष और ८२४ । २५ मिलाने से ईसवी सन् होगा ॥

१७-नेवार काल-नेपाल में यह काल शक ८०० से आरम्भ हुआ । इस का वर्ष कार्तिकादि और मास अमान्त होता है । ताम्रपत्र पर या संस्कृत ग्रन्थों में इस को " नेपाल काल " कहते हैं । ८०० । ८०१ वर्ष मिलाने से शकवर्ष और ८७८ । ७९ मिलाने से ईसवी सन् और ९३५ मिलाने से कार्तिकादि विक्रम संवत् होगा ॥

१८-चालुक्यकाल-चालुक्य राजा विक्रमादित्य ने इस को शाके ९९८ में आरम्भ किया था । विजलकलचुरिया ने जब शाके १०८४ में इस को पराजय किया तब से यह संवत् बन्द होगया । इस वर्ष में ९९७ । ९८ मिलाने से शकवर्ष और १०७५ । ७६ मिलाने से ईसवी सन् होता है ॥

१९-सिंहसंवत्-काठियावाड़ और गुजरात प्रान्तों से प्रचरित हुआ। महीना इस का अमान्त, वर्ष चान्द्र सौर होता है। इस में १०३५। ३६ मिलाने से शकवर्ष और १११३। १४ मिलाने से ईसवी सन् होता है और ११७० मिलाने से आषाढादि विक्रम संवत् होता है॥

२०-लक्ष्मण सेनकाल-यह काल तिरहुत प्रान्त में विक्रम काल या शककाल की बराबर प्रचरित है। इस का वर्ष कार्त्तिकादि, महीना अमान्त है। इस वर्ष में १०४०। ४१ मिलाने से शकवर्ष और १११८। १९ मिलाने से ईसवी सन् और ११७५ मिलाने से कार्त्तिकादि विक्रम संवत् होगा॥

२१-इलाहीसन्-इस को अकबर बादशाह ने आरम्भ किया था। इस से इस को "अकबरी सन्" भी कहते हैं। इस में १४७६। ७७ मिलाने से शकवर्ष और १५५५। ५६ मिलाने से ईसवी सन् होगा।

२२-राज शक या राज्याभिषेक शक-मराठी राज्य के संस्थापक शिवा जी ने इस काल को चलाया। शिवा जी के राज्याभिषेक के समय ज्येष्ठ शुक्ला १३ शाके १५९६ में आनन्द संवत्सर चला। दक्षिण में चान्द्र सौर अमान्त शकवर्ष अनुसार होता है। इस में १५९५। ९६ मिलाने से शकवर्ष और १६७३। ७४ मिलाने से ईसवी सन् होगा॥



संवत् प्रदर्शकचक्र

अर्थात् जिस संवत् का जिस समय से आरम्भ हुआ है, इस चक्र से ज्ञात होगा।

कलि (चैत्र, मेष)	सप्तर्षि (चैत्र)	विक्रम चैत्र	विक्रम (आषाढ़) (कार्तिक)		ईसवी (जनवरी)	शक (चैत्र, मेष)
गत ४९७९ वर्त्तमान ४९८०	४९५४	१९३५	१९३४		१८७८	१८[illegible]
चेदि भाद्रकृष्ण १प्रतिपदा	गुप्तवल्लभी कार्तिक	गुप्त (चैत्र)	हिजरी (मोहर्रम)		फसली दक्षिणी (मृग, जुलाई)	फसली बङ्गाली (भाद्र कृष्णा १)
१६३०	१५५९	१५५९	१२९५		१२८७	१२८५
विलायती (कन्या)	अमली भाद्रशुक्ला१२	बङ्गाली (मेष)	अर्बी सूर (मृग)	हर्ष	मगी (मेष)	कोल्लम (सिंह, कन्या)
१२८५	१२८४	१२८५	१२७९	१२७२	१२४०	१०५३
नेपाल (नेवार) (कार्तिक)	चालुक्य	सिंह (आषाढ़)	लक्ष्मण सेन (कार्तिक)		इलाही (अकबरी) (सायन मेष)	शिवा जी राजशक (ज्येष्ठ शुक्ला १३)
९९९	८०२	७६४	७५९		३२३	२०४

धूम केतु (Comet)

ग्रह, उपग्रह और नक्षत्रों के अतिरिक्त एक प्रकार का ज्योतिष्क कभी २ रात्रि को आकाश में दृष्टिगोचर होता है। यह गोलाकार और पुच्छ के साथ होता है। इस के पुच्छ ही में दीप्ति रहती है और गृहमार्जनी (झाड़ू) की नाईं देख पड़ती है। इस ज्योतिष्क को "धूम केतु" कहते हैं। धूम केतु के शरीर

(आकार) में दो भाग होते हैं। एक मस्तक और दूसरा पुच्छ। इस का मस्तक भाग कुछ उज्ज्वल एवं उस का मध्यभाग तारा की नाईं अपेक्षाकृत दीप्तिमान् होता है। यही मध्यस्थल धूम केतु की अस्थि प्रतीत होती है। पुच्छभाग कुछ उज्ज्वल होता है और कभी २ किञ्चित् वक्रभाव से क्रमशः प्रशस्त होकर बहुत दूर तक बढ़ जाता है। पुच्छ का मध्यभाग अपेक्षाकृत कृष्ण वर्ण होता है। एवं एक रेखा में रहने के कारण उस के दो अलग २ भाग दीखते हैं। धूमकेतु का केतु बहुत कालपर्यन्त सूर्य के विपरीत दिशा में रहता है। सब समय धूमकेतु का केतु हम लोगों को दृष्टिगोचर नहीं होता, कभी २ केतुहीन धूमकेतु एवं कभी २ छः केतुयुक्त धूमकेतुयुक्त धूमकेतु दीखने लगता है। धूमकेतु प्रभृति स्वयं प्रकाशमान नहीं किन्तु अन्यान्य ग्रहों की नाईं यह भी सूर्य की किरणों से प्रकाशित होता है। जब यह सूर्य के निकट होता है तो दीखने लगता है। अन्यथा दूर होने पर अदृश्य होता है। और ग्रहों की नाईं यह भी सूर्य की परिक्रमा किया करता है। अर्थात् पश्चिम से पूर्व और कभी २ पूर्व से पश्चिम जाता है। अद्यावधि यूरोपियन विद्वानों ने लग भग ७७० धूमकेतुओं की गति विधि आदि का निर्णय किया है। एवं जिन २ पुरुषों ने जिन धूमकेतुओं का पता लगाया है उन २ के नाम से वे २ धूमकेतु प्रसिद्ध किये गये हैं। हमारे बहुत से नवशिक्षित भारतवर्षीय पुरुषों की ऐसी धारणा है कि हिन्दू लोगों के यहां इस का कुछ उल्लेख नहीं है। यह उन की एक मात्र भूल है। क्योंकि प्रथम तो हमारे वेद ही में इस का मूल पाया जाता है। एवं अन्यान्य कतिपय ज्योतिष के संहिता ग्रन्थों में १००० के लगभग धूमकेतुओं का लेख हैः—

शन्नोमृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ॥

(अथर्व वे० कां० १९। ६। मं० १०)

कभी २ धूमकेतु सूर्य के अतिनिकट होने के कारण उसे बड़ी उष्णता होती है॥

पैतामहश्चलकेतुः पञ्चवर्षशतं प्रोष्य उदितः। अथोद्दालकश्वेतकेतुर्दशोत्तर वर्षशतं प्रोष्य दृश्यः। शूलाग्राकारां शिखां दर्शयन् ब्राह्मनक्षत्रमुपसृत्य मनाग्ध्रुवं ब्रह्मराशिं सप्तर्षीन्संस्पृश्य कश्यपः श्वेतकेतुःपञ्चदशं वर्षशतं प्रोष्यैषां पद्मकेतोश्चारान्ते······। नभस्त्रिभागमाक्रम्याप-

सव्यं निवृत्यार्द्धमदक्षिणजटाकारशिखः । अथरश्मिकेतुर्विभावसुजः प्रोप्य शतमावर्त्तकेतोरुदितश्चारान्ते कृत्तिकासु धूमशिखः ॥

वृहत्संहिता ग्रन्थ के टीकाकार पं० भट्टोत्पल ने "पराशरसंहिता" नामक ग्रन्थ के वचन का उल्लेख किया है ॥

भा०-पैतामहकेतु ५०० वर्ष प्रवास कर अर्थात् एक बार उदय होकर ५०० वर्ष के पीछे दृष्टिगोचर हुआ । उद्दालकश्वेतकेतु ११० वर्ष के पीछे दृष्टिगोचर हुआ । शूलाग्रशिखाधारी काश्यपकेतु १५०० वर्ष के पीछे, पद्मकेतु उदय होकर पूर्व से होता हुआ ब्राह्मराशि (अभिजित्) नक्षत्र स्पर्श करता हुआ ध्रुवनक्षत्र ब्रह्मनक्षत्र और सप्तर्षि नक्षत्रों को स्पर्श करता हुआ आकाश के तीसरे भाग को अर्द्ध प्रदक्षिणाकार कर जटाधारी की नाईं अवस्थित है । एवं विभावसुज रश्मिकेतु सौवर्ष के पीछे उदय हुआ और आवर्तकेतु कृत्तिका नक्षत्र में प्रकाशित है । इन प्रत्येक धूमकेतुओं के साथ जो व्यक्तिविशेष के नाम लगे हैं वह इस कारण से कि जिन २ महापुरुषों ने जिन २ धूमकेतुओं को देख कर उन का उल्लेख किया था उन २ के नाम से वे २ प्रसिद्ध हैं ॥

उल्कापिण्ड

रात्रिकाल में जो गगनमण्डल से नक्षत्र गिरते दीख पड़ते हैं वह नक्षत्रपात नहीं किन्तु उल्कापिण्डपात होता है ॥

उल्कापिण्ड किस प्रकार कहां से गिरता है इस बात पर आधुनिक यूरोपियन विद्वानों ने अनेक वादानुवादपूर्वक यह निश्चय किया है कि जिस प्रकार ग्रह, धूमकेतु आदि निर्दिष्ट नियमानुसार सूर्य की परिक्रमा करते हैं उसी प्रकार उल्कापिण्ड भी सूर्य की चारों ओर भ्रमण करता है। उल्कापिण्ड और पृथिवी के भ्रमण मार्ग का सम्पात (संयोग स्थान) है । जब पृथिवी और उल्कापिण्डगण भ्रमण करते २ सम्पातस्थान में पहुंच जाते हैं, उस समय उल्कापिण्ड सब पृथिवी में गिरते हैं या उसी समय न गिर कर भूवायु राशि में मिलजाते हैं। एवं पीछे क्रमशः पृथिवी के आकर्षण के प्रभाव से भूतल में गिरते हैं । उल्कापिण्ड की संख्या १६ माईल से २०० माईल पर्यन्त पृथिवी से ऊपर को है और इस की गति प्रतिविपल १८ माईल से ४४ माईल पर्य्यन्त होती है । प्रतिवर्ष में पृथिवी में कितने उल्कापिण्ड गिरते हैं , इस की संख्या करनी दु:साध्य है । प्रतिदिन लाखों उल्कापिण्ड पृथिवी के भिन्न२

प्रदेशो में गिरते हैं। उल्कापिण्ड में परीक्षा से देखने पर निश्चित हुआ है कि इस में लोहा, टीन आदि अनेक पृथिवी की अपेक्षा विलक्षण धातु रहते हैं। हमारे भारतीय ज्योतिषशास्त्रो में अशनि और पाषाण द्रव्य मिश्रित इस के पिण्ड में लिखा है। एवं वेद मे इस का भी उल्लेख है.—

शन्नो भूमिर्वेपमाना शमुल्का निर्हतं च यत् ॥

(अथर्व० । कां० १९ । ९ । म० ७)

आधुनिक सिद्धान्त ऐसा मिलता है कि पृथिवी के गमन से उल्का टक्कर खा कर गिरता है। जैसा ऊपर कहा गया है। और श्री प० श्रीपति ने भी एक ज्योतिष ग्रन्थ में उल्कापिण्ड का उल्लेख किया है ॥

ज्वार और भाटा

प्रतिदिन नियमपूर्वक जो समुद्र के जल का ह्रास एवं वृद्धि होती है उस को ज्वारभाटा कहते हैं, अर्थात् समुद्र का जल जो सहसा बढ जाता है, उस को ज्वार (संस्कृतभाषा में "वेला") कहते हैं और वही ज्वार का जल जब क्रमश घट जाता है, तब उस को भाटा कहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति से यह घटना होती है ॥

ज्योतिर्वित् पण्डितो ने यह निश्चय किया है कि चन्द्रमा पृथिवी के आकर्षण से आकृष्ट होकर अपनी कक्षा में घूमता है। पृथिवी जिस प्रकार चन्द्रमा को आकृष्ट करती है, चन्द्रमा भी उसी प्रकार पृथिवी का आकर्षण करता है। इसी कारण पृथिवी का जो भाग जिस समय चन्द्रमा के ठीक नीचे आता है। उस समय उस भाग की जलराशि बढ़ जाती है और वही ज्वार होता है। पृथिवी का जल भाग जिस प्रकार चन्द्रमा के आकर्षण के आधीन है, स्थलभाग भी उसी प्रकार चन्द्रमा का व्याप्य है, तौ जल तरलपदार्थ है इसी कारण वह अनायास चालित और स्फीत हो जाता है। यह व्यापार सब को दृष्टिगोचर होता है. स्थलकठिन होता है। इस लिये स्फीत और सङ्कोच सहज से नहीं होता और वह इन्द्रियगोचर भी नहीं होता। पृथिवी का जो अंश चन्द्रमा के निम्न भाग में आजाता है उस समय उस भाग में ज्वार होने की सम्भावना होती है। किन्तु रात दिन में कोई स्थान एक बार से अधिक चन्द्रमा के ठीक निम्नस्थ नहीं होता तब जो इस समय एक स्थानमें दो बार ज्वार होता है, उस के कारण नीचे दिखलाये जाते हैं.—

पृथिवी का जो स्थान जिस समय चन्द्रमा के ठीक निम्नभाग में अवस्थित होता है, उस समय वह स्थान अन्यान्य अंश की अपेक्षा उस के निकटवर्ती

होता है, इस कारण उस स्थान का जल चन्द्रकर्त्तृक अधिक आकृष्ट होकर चन्द्रमा के सम्मुखस्फीत हो जाता है। उस स्थान का जल इस प्रकार बढ़ता है। उसके पाद्विपक्ष(पाताल)स्थान चन्द्रमासे अधिकदूर होनेके कारण वहांचन्द्रमा का आकर्षण न्यून होता है। कारण यह है कि जो वस्तु आकर्षक पदार्थ के निकट रहता है वही अधिक तेज से आकृष्ट होता है और निकट से जैसे २ दूर जाता है ,आकर्षण प्रभाव भी उसी दूरत्व के अनुसार ह्रास होता जाता है।,सुतरां इस स्थान का जल नत हो जाता है और अपर स्फीत अर्थात् उन्नत और स्थानद्वय पृथिवी के केन्द्र से बहुत दूर अपसृत हो जाता है। सुतरां दोनों स्थानों के ऊपर पृथिवी की केन्द्राभिकर्षणी शक्ति अनुसार सर्वता होती है। इस कारण उस २ स्थान की जलराशि की तरलता स्वाभाविक तरलता की अपेक्षा अधिक होती है। इस प्रकार मध्याकर्षण के विरल प्रभाव से दोनों ओर का जल तरल होता है और एक ओर चन्द्रमा के अव्यवहित आकर्षण से वह जल स्फीत (बढ़ता है) होता है, दूसरी ओर केन्द्रप्रसारणी शक्ति का प्रादुर्भाव के नियमन से वह नत हो जाता है। इस से दोनों जगह ज्वार होता है। जिस स्थान की जलराशि स्फीत होती है,उस के पार्श्वस्थ जलराशि अवश्य ही सङ्कुचित होती है। इसी सङ्कोच का नाम भाटा है॥

चन्द्रमा जिस प्रकार जल आकर्षण करता है सूर्य भी उसी प्रकार जल आकर्षण करता है। एवं कोई बाधा न होने से सूर्यकर्तृक एक पृथक् ज्वार होने की सम्भावना थी किन्तु सूर्य की अपेक्षा चन्द्रमा पृथिवी से बहुत निकटवर्ती है। इस कारण उस की आकर्षण शक्ति अधिक होती है। एवं उसी शक्ति द्वारा सूर्यकृत ज्वार निराकृत होता है। परीक्षा द्वारा निश्चय किया गया है कि पृथिवी के जल के ऊपर सौर आकर्षण की अपेक्षा चन्द्राकर्षण अधिक होता है। सुतरां, चन्द्रमा और सूर्य दोनों जल आकर्षण करने से चन्द्राकर्षण सौराकर्षण को रोक देता और दोनों यदि समसूत्र में रहें और आकर्षण करें तो अधिक शक्ति होगी। वस्तुतः इसी प्रकार होता भी है। अमावास्या समय चन्द्रमा और सूर्य समसूत्रस्थ होते हैं अर्थात् उस समय चन्द्रमण्डल सूर्यमण्डल के नीचे भाग में अवस्थिति करता है। इस कारण दोनों मिल कर जल आकर्षण करते हैं, इसकारण अन्यान्य दिन की अपेक्षा इस दिन ज्वार अत्यन्त प्रबल होता है और पूर्णमासी को सूर्य और चन्द्रमा परस्पर आकाशमण्डल के विपरीत भाग में उदय होते हैं। चन्द्रमा जब पूर्व भाग में तो सूर्य पश्चिम भाग में रहता है। एवं चन्द्रमा जब पश्चिम भाग

में तो सूर्य पूर्व भाग में रहता है । चन्द्रमा के एक उदय से दूसरे उदय पर्यन्त २४ होरा ४८ मिनिट लगता है । एवं इतने समय में पूर्वोक्त रीति से दो बार ज्वार हो जाता है। सुतरां इस ज्वार की प्रतिदिन निरूपित एक समय होने की सम्भावना नहीं ।

प्रातःकाल में १० बजे ज्वार होने से दूसरे दिन १० बजके २४ मिनिट में ज्वार आरम्भ होगा और प्रतिदिन ४८ मिनट करके अग्रसर होता है अर्थात् एकादशी के दिन ६ बजके ५६ मिनट पर ज्वार होने से द्वादशी दिन ७ बज कर [redacted] मिनट पर होगा । ज्वार के आरम्भ से भाटा की समाप्तिपर्यन्त १२ होरा [redacted] मिनिट होता है। इस काल को द्विगुण करने पर एक तिथि होगी। ज्वार आरम्भ होने पर प्रायः छः होरा पर्यन्त दक्षिण ओर से उत्तराभिमुख वेगवान् होता है । उस के बाद प्रायः १२ मिनट पर्यन्तस्थगित रहता है । उस के बाद भाटा होता है। भाटा के आरम्भ होने पर वह वेग पुनर्वार दक्षिणाभिमुख छः होरा पर्यन्त अपसरण करके ४ मिनट तक स्थिर होता है । अनन्तर उस के पूर्वोक्त रीति से पुनर्वार ज्वार होता है और पुनर्वार भाटा होता है ॥

पूर्णमासी और अमावास्या के दो एक दिन पीछे ज्वार की अत्यन्त वृद्धि होती है और चान्द्रमास के द्वितीय और चतुर्थ पाद के प्रथम दो तीन दिन ज्वार अत्यन्त खर्व हो जाता है। कारण अमावास्या और पौर्णमासी के समय चन्द्रमा और सूर्य मिलकर अधिक परिमाण जल आकर्षण करने से जल की गतिका वेग अत्यन्त प्रबल हो जाता है। अमावास्या और पौर्णमासी के पीछे चन्द्रमा और सूर्य आकर्षण नहीं करते। इस से आकर्षण प्रभाव ह्रास हो जाता है, किन्तु जल की गति का वेग दो एक दिन न बीतने पर ह्रास नहीं होता । क्योंकि जड़पदार्थ एक बार किसी शक्ति के प्रभाव से चालित होने से उस की गति शीघ्र स्थिर नहीं होती । इसी प्रकार चन्द्रमा की कला की वृद्धि और ह्रास क्रम से ज्वार भाटा होता है। जैसा कि ऊपर कहा गया ॥ हम विस्तारभय से यहां अधिक उल्लेख नहीं करते । पाश्चात्य पण्डित और भारतवर्षीय नवशिक्षित लोगों की धारणा है कि भारतवर्ष में उक्त घटनाविषयक नियम नहीं जानते हैं । परन्तु यह कहना उन का एकमात्र युक्तिशून्य है । हमारे शास्त्रों में चन्द्रमा को समुद्र का पुत्र, एवं चन्द्रमा की कला की वृद्धि और ह्रास क्रमसे समुद्र में वेला (ज्वार) वा जलोच्छ्वास और पुनः जल का ह्रास (भाटा) होता है, स्पष्टतया लिखा है । जैसेः—

वेलान्दोलानिलवलंक्षोभोद्वेग समुच्छ्रितम् । वीचीहस्तैः प्रचलितैर्नृत्यन्तमिव सर्वतः ॥ १० ॥ चन्द्रवृद्धिक्षयवशादुद्वृत्तोर्मिसमाकुलम् ॥ महाभारते आदिपर्वणि २१ अध्याये

अर्थात्–यह जो समुद्र में ज्वार और भाटा से लहरें ऊपर को उठ २ कर पुनः गिरती हैं। इस का कारण वायु और चन्द्रमा की कला की वृद्धि और ह्रास होता है ॥

वेध या पर्य्यवेक्षण (Observation)

शलाका या यष्टि या दूसरे किसी पदार्थ के सहारे से जो आकाशस्थ नक्षत्रादिकों को देखते हैं, उस क्रिया का नाम संस्कृत में "वेध" है। एवं यन्त्रादि द्वारा देखने से "यन्त्रवेध" कहते हैं। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों, एवं हमारे कतिपय नवशिक्षित भारतवर्षीय लोगों की ऐसी धारणा है कि भारतवर्ष में वेध की परम्परा एवं वेधविषयक ग्रन्थ तथा यन्त्रादिक नहीं थे और न कहीं वेधशाला थी इत्यादि ॥

यह धारणा उन की एकमात्र युक्तिशून्य और अविश्वासनीय है क्योंकि जिन सूर्य, पृथिवी, नक्षत्र, धूमकेतु आदि की गति आदि को यथावत् जानने के लिये अङ्गरेज़ करोड़ों रुपये व्यय करके एक यन्त्र निर्माणपूर्वक १०० वर्ष के लगभग में ग्रहादिकों की गति विधि आदि से अभिज्ञ हुए हैं, इन विषयों को हमारे पूर्वज करोड़ों वर्ष पूर्व ही से निश्चय कर हमारे ज्योतिष शास्त्र में उन का उल्लेख कर गये हैं। राशिचक्र १२ भाग, एवं एक एक भाग में तीस २ अंश एवं ३६० अंश का राशिचक्र, धूमकेतु, सप्तर्षि तारे, ग्रहण आदि विषय, बृहस्पति का गुरुत्व अधिक जान कर गुरु नाम रखना, मङ्गल को लोहिताङ्ग (अंग्रेज़ों ने ताम्बे की नाईं रङ्ग निश्चय किया है) इत्यादि विना यन्त्रों ही कर गये हैं। अब हम यहां पाठकों के अवलोकनार्थ कतिपय वेध यन्त्रों का नाम लिखते हैं ॥

१–गोलयन्त्र (Globe) काठ का बना–खगोल और भूगोल के विषयों को चित्रद्वारा भलीभान्ति ज्ञान के लिये। देखो सू० सि० अ० १३ एवं सिद्धान्त शिरोमणि भुवनकोष ॥

२–चक्र यन्त्र
३–चाप
४–तुर्य गोल
धातुमय या काष्ठमय–इस यन्त्र से यहों का अक्ष, भोग, शर आदि जाना जाता है (अङ्गरेजी में "थेडोलाईट कम्पास" कहते हैं) इस से पृथिवी को भी माप कर क्षेत्र फल जान लेते हैं। अङ्गरेजी सरकार के सरवे विभाग एवं इञ्जीनियरिङ्ग विभाग में इस से काम लिया जाता है ॥

५–नाड़ी वलय–इस यन्त्र से स्वदेशीय उदय आदि काल ज्ञान होता है ॥

६–घटिका यन्त्र–प्रसिद्ध ही है ॥

७–शङ्कु–हाथीदान्त या किसी घन पदार्थ का १२ अङ्गुल लम्बा बना कर उस की छाया से कालज्ञान, दिशा आदि जानते हैं ॥

८–फलक यन्त्र–इस से काल ज्ञान होता है ॥

९–यष्टियन्त्र (Compass) क्षेत्र फल निकालने के लिये एवं ज्या, ज्यार्द्ध, अग्रा, त्रिज्या इत्यादि प्रयोजन के लिये होता है ॥

१०–स्वयवह यन्त्र–काल ज्ञान के लिये ॥

यहा हम ने दिङ्मात्र यन्त्रों का नाम लिखा है। यन्त्रों के बनाने के लिये हमारे भारतवर्ष में शिल्पिगण ज्योतिषियों से भिन्न थे, उन के ग्रन्थ भी भिन्न २ थे, क्योंकि जहां यन्त्र का उल्लेख ज्योतिष में आया है। प्रायः यह लिखा रहता है कि अच्छे गोलविद्या जानने वाले शिल्पी से अमुक यन्त्र बनवावें। वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड में जहां महाराजा दशरथ जी ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया है, लिखा है कि यज्ञशाला और यज्ञवेदी आदि बनाने के लिये गणक, शिल्पी, खनक, तक्षा (बढ़ई) आदि को बुलाना चाहिये। इस से शिल्प शास्त्र और ज्योतिष शास्त्र भिन्न २ होने के कारण ज्योतिष शास्त्र में यन्त्र निर्माण का पूरा उल्लेख नहीं किया गया है। शिल्प शास्त्र के ग्रन्थ अधुना नहीं मिलते। परन्तु यन्त्रविधायक थोड़े से नवीन ग्रन्थों का नाम लिखते हैं जो आर्षग्रन्थों के अनुकूल ही हैं ॥

१–सर्वतोभद्र यन्त्र–भास्कराचार्य कृत सिद्धान्त शिरोमणि पुस्तक में इस का उल्लेख है, परन्तु यह ग्रन्थ नहीं मिलता है ॥

२–यन्त्रराज=महेन्द्रसूरि कृत एवं इस पर महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी ने टीका की है। १९२ श्लोक हैं। शाके १२९२ का बना है ॥

३–ध्रुवभ्रमयन्त्र–पद्मनाभकृत ३१ श्लोक हैं। इस पर टीका ग्रन्थकार ने अपने आप की है। शाके १३२० में बना ॥

४-यन्त्र चिन्तामणि-चक्रधरकृत शाके ११०० में बना। २६ श्लोक में ग्रन्थ समाप्त हुवा है॥

५-प्रतोदयन्त्र-गणेशकृत। ११ श्लोक॥

६-गोलानन्द-चिन्तामणि ने १२४ श्लोकात्मक ग्रन्थ बनाया॥

वेधशाला (Observatery)

वेधशाला उस को कहते हैं जहां ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धि यन्त्र (वेधोपयोगी) रक्खे रहते हैं और समय २ पर यन्त्रद्वारा ग्रहादिकों को वेध कर गणित द्वारा गति आदि का निश्चय करते हैं। यह कार्य बहुत धनसाध्य होता है। इसी कारण प्रत्येक राज्यशासन समय यह राजाश्रित रहा। इस समय थोड़े काल से जब से भारत की राज्यश्री समुद्र यान पर चढ़ कर द्वीपान्तर को गई, उस के साथ २ भारत की विद्या भी गई। एवं वेधशाला आदि का क्रम टूट गया॥

पाठकों के अवलोकनार्थ थोड़े से स्थानों का नाम लिखते हैं कि जहां २ वेधशाला थीं-और कहीं २ अब भी मृत्युकल्प होरही हैं॥

१-सितारा
२-इन्दौर
३-बीड
४-हैदराबाद

५-दिल्ली
६-मथुरा
७-जयपुर
८-उज्जयिनी

(५-८) श्री महाराजा जयसिंह कारित संवत् १७५० । उस समय इन की सभा में पं० केशव एवं गणेश ये दो गणक बड़े प्रवीण थे॥

९-काशी-श्री राजा मानसिंह कारित-मान मन्दिर नाम से प्रसिद्ध है। इस का जीर्णोद्धार तक इस समय नहीं हो सका। इस विषय पर पं० बापूदेव शास्त्री जी ने सन् १८६८ ईस्वी में एक लेख प्रकाशित किया था और बहुत शोक प्रकाशित किया था॥

भूगोल वर्णन

यद्यपि खगोल विधायक पुस्तक के साथ भूगोल का सम्बन्ध उतना नहीं है परन्तु सू० सि० अ० १२ में इस का विषय गौणभाव से आया है और काश-

मय भूगोल और खगोल की रचना का प्रकार लिखा है। इस कारण अब हम उस गोल का वर्णन करते हैं ॥

कृत्रिम गोल एक धातु के तार के आधार से रहता है। यह तार उस गोल के बीच में से केन्द्र होके जाता है इस के दो अन्त एक पीतल के वलयवृत्त में दो छेद होते हैं, उन में लगे रहते हैं। यह पीतल का वलयवृत्त आधारवृत्त कहावे और तार पृथिवी का "अक्ष" कहावे। पृथिवी का अक्ष अर्थात् उस के केन्द्र पर से जाने हारी एक काल्पनिक रेखा है जिस पर उस का भ्रमण माना है और जिस की चारों ओर समस्त नक्षत्र पदार्थों का भ्रमण प्रतिदिन देख पड़ता है ॥

उस अक्ष के दोनों अन्तों को पृथिवी के ध्रुव कहते हैं उन में एक को "उत्तर ध्रुव" और दूसरे को "दक्षिण ध्रुव" कहते हैं ॥

जो वृत्त दोनों ध्रुव होके जाते हैं उन को "याम्योत्तर वृत्त" (एक को दक्षिण वृत्त और दूसरे को उत्तर वृत्त) या "मध्याह्न वृत्त" कहते हैं। भूगोल के पूर्व की ओर से पश्चिम की ओर घूमने से पृथिवी का केन्द्र और सूर्य इन के ठीक बीच में जब कोई मध्याह्न वृत्त आता है तब उस मध्याह्न वृत्त पर सूर्य के सम्मुख जितने देश रहते हैं। उन में मध्याह्न होता है ॥

कृत्रिम वृत्त पर केवल १२ मध्याह्न वृत्त लिखे रहते हैं और अवशिष्ट स्थान में आधार वृत्त को मध्याह्नवृत्त कर सकते हैं ॥

पृथिवी के दोनों ध्रुवों से जो समान अन्तर पर एक वृत्त रहता है और जो गोल के समान दो भाग करता है उस को "निरक्ष देश" कहते हैं। और गोल के उत्तरार्द्ध को "उत्तर गोल" और दक्षिणार्द्ध को "दक्षिण गोल" कहते हैं ॥

अब पृथिवी के पृष्ठ पर जो स्थान हैं उन पर पूर्वोक्त अनेक काल्पनिक वृत्त मान के उन स्थानों का परस्पर स्थितिसम्बन्ध किस प्रकार से ठहराते हैं इस का विचार करते हैं:—

प्रत्येक वृत्त के ३६० समानभाग मान लिये हैं उन प्रत्येक को अंश कहते हैं। इस लिये अर्द्ध वृत्त में १८० अंश वृत्त के चतुर्थांश में ९० अंश होते हैं। जैसे दोनों ध्रुव परस्पर १८० अंश दूर में हैं और निरक्षदेश से प्रत्येक ध्रुव ९० अंश पर है। निरक्ष देश से किसी स्थान के अंशात्मक अन्तर को "अक्षांश" कहते हैं जो वह स्थान निरक्ष देश के उत्तर में हो तो "उत्तर अक्षांश"

एव दक्षिण में हो तो " दक्षिण अक्षांश " कहलाते हैं। परन्तु संस्कृत में स्थान की जिस दिशा में निरक्ष देश हो उस दिशा के अक्षांश कहलाते हैं। अर्थात् निरक्ष की उत्तर में स्थान हो तो दक्षिण अक्षांश और दक्षिण में स्थान हो तो उत्तर अक्षांश होता है। इस लिये यह परिभाषा उक्त परिभाषा से उलटी है जैसा उत्तरध्रुव और निरक्षदेश इन के ठीक मध्य में ४५ उत्तर अक्षांश हैं परन्तु संस्कृत में वे दक्षिण अक्षांश कहलाते हैं॥ निरक्षदेश से जो २ स्थान अधिक दूर रहते हैं, वहां अक्षांश अधिक होते हैं॥

कृत्रिम गोल पर किसी निर्दिष्ट स्थान के अक्षांश जानने के लिये

नियम–आधार वृत्ति की जो अलङ्क निरक्ष से ध्रुव तक अंशसंख्या से अङ्कित रहती है उस अलङ्क के नीचे निर्दिष्ट स्थान को ले आना तब उस स्थान के ऊपर जिस अंश संख्या का चिह्न हो उतने अक्षांश जानना॥

किस स्थान पर सब से अधिक अक्षांश हैं, और कितने होते हैं। पहिले कहा है कि हर एक वृत्त में ३६० अंश मान लिये हैं। उन को अंश कहते हैं इस लिये एक अंश की लम्बाई वृत्त के महत्व के अनुसार होती है। गोल पर जो वृत्त गोल के समान दो भाग करते हैं उन को महावृत्त कहते हैं। जैसे निरक्षदेश मध्यान्हवृत्त ये सब महावृत्त हैं। महावृत्त के एक अंश की लम्बाई अनुमान ३० कोश होती है। अब हिन्दुस्तान के उत्तर से ले दक्षिण तक और वैसे ही सिंहल आफ़्रिका अमेरिका और आष्ट्रेलिया इन के स्थलमान से लम्बाई गिनो॥

किसी निर्दिष्टस्थान में जितने अक्षांश हों उतने ही अक्षांश जितने स्थानों में होवें उन सब स्थानों को जानने के लिये

नियम–आधार वृत्त की जो अलङ्क निरक्ष से ध्रुव तक अंश संख्या से अङ्कित रहती है उस अलङ्क के नीचे उस निर्दिष्ट स्थान को ले आना पुनः उस के ऊपर जिस अंश संख्या का चिह्न हो उस संख्या को मन में धर गोल को घुमाने से जो २ स्थान उस चिह्न के नीचे आवें वे अभीष्ट स्थान हैं॥

इस से स्पष्ट प्रतीत होता है कि निरक्षदेश से ९० अंश के अन्तर पर जो दो ध्रुवस्थान हैं उन्हें छोड़ और किसी स्थान का निश्चय केवल अक्षांश पर से नहीं होसकता। जितने स्थान पर समान अक्षांश हैं वे सब अवश्य निरक्षदेश

के एक समान्तर वृत्त में रहते हैं। उस समान्तर वृत्त को " स्पष्ट परिधि " कहते हैं। अब कृत्रिम गोल पर यद्यपि केवल १६ स्पष्ट परिधि लिखे रहते हैं तो भी गोल पर हर एक स्थान पर से एक स्पष्ट परिधि की कल्पना हो सकती है। गोल पर के १६ स्पष्ट परिधियों में हर एक गोलार्द्ध में आठ २ लिखे रहते हैं और हरएक गोलार्द्ध में निरक्ष और ध्रुव इन के बीच में ९० अंश होने के कारण वे स्पष्ट परिधि सब मध्याह्न वृत्तों को दश २ अंशों से विभक्त करते हैं। और हरएक विभाग का मध्य देश भी अक्षांश जानने के लिये आधारवृत्त से विभक्त हो सकता है। यह स्पष्ट है कि पृथिवी के ध्रुव तो स्वतः निश्चित हैं। उन पर से निरक्ष देश का निश्चय होता है। निरक्ष देश पर से स्पष्ट परिधि ठहराये जाते हैं। परन्तु वहां से पूर्वापर देश नापते हैं। उस के ठहराने का इस में कोई प्रकार नहीं है। इस लिये वैसा "याम्योत्तर" वा 'मध्याह्न वृत्त' जिस से पूर्वापर देश नापते हैं और जिस को मुख्य रेखा कहते हैं, उस का ठहराना स्वतन्त्रता से होता है॥

जैसा भारतवर्षीय ज्योतिष ग्रन्थों में उज्जयिनी आदि पर से जो मध्यान्ह वृत्त जाता है उस को मुख्य रेखा मानते हैं। और अङ्गरेज लोग लण्डन पर से जो मध्यान्ह वृत्त जाता है उन को मुख्य रेखा मानते हैं और मुख्य रेखा छोड़ कर और जो स्थान हैं वे उस के पूर्व में या पश्चिम में गिने जाते हैं। जिस प्रकार किसी स्थान का निरक्ष रेखा से जो अन्तर होता है उसे अक्षांश कहते हैं। उसी प्रकार उस स्थान का जो मुख्य रेखा से अन्तर निरक्ष पर नापा जाता है उस को "देशान्तर" कहते हैं॥

देशान्तर निकालने का नियम—आधारवृत्त के नीचे निर्दिष्टस्थान को ले आना। तब मुख्य रेखा से आधार वृत्ततक निरक्षदेश में जितने अंश होंगे वो निर्दिष्टस्थान का देशान्तर होगा॥

जो निर्दिष्टस्थान मुख्यस्थान के दहिनी ओर होवे तो पूर्व देशान्तर और जो बाईं ओर होवे तो पश्चिम देशान्तर जानना॥

निर्दिष्ट स्थान में जो देशान्तर है, उस देशान्तर के जितने और स्थान होवें उन के जानने के लिये,

नियम—आधारवृत्त के एक अलङ्क के नीचे निर्दिष्ट स्थान को ले आना तब एक ध्रुव से ले दूसरे ध्रुव तक उस अलङ्क के नीचे जितने स्थान होवें वे सब समान देशान्तर के स्थान हैं॥

किसी स्थान के अक्षांश और देशान्तर निकालने का नियम

आधार वृत्त की जो अलङ्क निरक्ष से ध्रुव तक अंशों से अङ्कित रहती है, उस अलङ्क के नीचे वह निर्दिष्ट स्थान ले आना । तब उस स्थान के ऊपर आधारवृत्त में जितनी अंश संख्या का चिह्न होगा उतने वहां अक्षांश जानना, और आधार वृत्त की वह अङ्कित अलङ्क जहां निरक्ष में लगा हो वहां जितने अंश का चिन्ह होगा, उतना देशान्तर जानना ॥

नियम ६

जिस स्थान के अक्षांश और देशान्तर ज्ञात हैं उस स्थान को गोल पर ठहराने के नियम ॥

निरक्ष देश पर निर्दिष्टस्थान का देशान्तर का अंश चिन्ह जानके उसे आधारवृत्त की अङ्कित अलङ्क के नीचे ले आना तब आधारवृत्त पर जहां निर्दिष्ट अक्षांश का चिन्ह हो उस के नीचे अभीष्ट स्थान होगा ॥

यह पांचवें नियम के उलटा है।

निर्दिष्ट स्थान कृत्रिम गोल पर किस ठांव में है । यह ठहराने की जब इच्छा है तब पृथिवी पर उस स्थान के वास्तविक अक्षांश और देशान्तर जान के तदनुसार उस स्थान का कृत्रिम गोल पर चिन्ह करना ॥

उदाहरण—

एक शुभ्र गोल बनाके उस पर किसी एक ठांव में उत्तर ध्रुव का एक चिह्न करके उस के सामने ही गोल पर दूसरा एक दक्षिण ध्रुव का चिह्न करना । फिर उन दोनों ध्रुवों से समान अन्तर पर एक निरक्षदेश अङ्कित करके सोलह स्पष्ट परिधि और १२ मध्याह्न रेखा अङ्कित करना और उन मध्याह्न रेखाओं में किसी एक को मुख्य रेखा अर्थात् लण्डन की मध्याह्न रेखा ठहराना । फिर कृत्रिम गोल पर इस मुख्य रेखा के किसी विन्दु पर लण्डन का चिह्न किया जावे सो ठहराना चाहिये । जो पृथिवी के पृष्ठ पर लण्डन से उत्तर ध्रुव तक अन्तर माप सकते तो उस विन्दु को ठहरा सकते । परन्तु आज तक कोई ध्रुव तक जा नहीं सका । इस लिये उस विन्दु को ठहराने के लिये जो आकाश से सम्बन्ध रक्खे ऐसा कोई दूसरा प्रकार यहां अवश्य लगाना चाहिये।।

आकाश की ओर देखने से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि पृथिवी के चारों ओर और सब आकाशस्थ पदार्थ भ्रमण करते हैं । अथवा पृथिवी अपने अक्ष पर भ्रमण करती है और इसी से सब उस्थ पदार्थ हमारी दृष्टि के सामने आते हैं । इन दोनों कल्पनाओं में पृथिवी के भ्रमण विशेष में लाघव है और वैदिक प्रमाण से भी पृथिवी ही का भ्रमण सिद्ध होता है । अब ऐसी

कल्पना करो कि पृथिवी अपने अक्ष पर नित्य एक वार भ्रमण करती है। तब पृथिवी के केन्द्र से उस का ध्रुव स्थान होके जाने हारी रेखा में जो कोई नक्षत्र होता तो और सब घूमते हुये नक्षत्रों में वही एक स्थिर देख पड़ता। एक चमकीली तारा उस स्थिर स्थान के अति निकट में है इसी लिये उस को ध्रुव तारा कहते हैं। जो देखने वाला पृथ्वी के ध्रुव स्थान पर रहता है उस को यह ध्रुव तारा ठीक शिर पर दिखाई देता है। और जो निरक्ष-देश पर रहता है उस को यह पृथ्वी जहां चारों ओर आकाश में लगी हुई दिखाई देती है जिस को संस्कृत में " क्षितिज " कहते हैं उसमें ध्रुवतारा देख पड़ता है। इसी प्रकार भास्कराचार्य ने भी "सिद्धान्तशिरोमणि" नामक ग्रन्थ में लिखा है:—

निरक्षदेशे क्षितिमण्डलोपगौ
ध्रुवौ नरः पश्यति दक्षिणोत्तराविति ॥

पृथिवी पर निरक्षदेश और ध्रुव इन के बीच में जो देश अधिक ध्रुव के पास होगा। वहां ध्रुव तारा अधिक ऊंचा देख पड़ेगा। यह अर्थ आचार्य ने भी सि॰ शि॰ में लिखा है कि:—

उदग्दिशं याति यथा यथा नरस्तथा तथा खान्नतमृक्ष मण्डलम्। उदग् ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षितेरिति ॥

अब यह ध्रुव तारों की ऊंचाई एक वृत्त में हर एक खेचरज्ञ नाप सकता है और इस ऊंचाई में जितने अंश होते हैं वे ही निरक्ष से भूमि पर अंश हैं। अर्थात् "अक्षांश" हैं। यों लण्डन में अक्षांश ठहरा के कृत्रिम गोल पर मुख्य रेखा में निरक्ष से उत्तर की ओर "अक्षांशान्तर" पर लण्डन का चिह्न करना। इस प्रकार से अथवा इस के सजातीय और किसी प्रकार से और सब स्थानों के वास्तविक " अक्षांश " ज्ञात होते हैं। परन्तु केवल अक्षांशों से प्रत्येक स्थान का निश्चय नहीं होता इस लिये पृथिवी के पृष्ठ पर जो स्थान हैं उन के देशान्तर जानने की रीति का अवश्य विचार करना चाहिये। पृथिवी अपने अक्ष पर ६० घड़ी में एक वार घूमती है और ६० घड़ी का ३६० वां भाग १० पल होते हैं। इस लिये इस से यह जान पड़ता है कि जो स्थान मुख्य रेखा से पूर्व में एक अंश पर हैं वे सब मुख्य रेखा के मध्याह्न काल से दश पल पहिले सूर्य के नीचे आते हैं अर्थात् वहां तब मध्याह्न होता है और जो स्थान मुख्य रेखा से पश्चिम एक अंश पर है, वहां मुख्य रेखा के मध्याह्न काल से दश पल पीछे मध्याह्न होता है। इसी प्रकार से जो स्थान पूर्व में दो अंश के अन्तर पर हैं, वहां २० पल पहिले मध्याह्न होता है।

यों ही आगे भी। कृत्रिम गोल पर १२ मध्याह्न वृत्त खिंचे रहते हैं। इसी लिये दो २ वृत्तों के बीच में पन्द्रह २ अंश रहते हैं और १० पलों को जब पन्द्रह से गुणते हैं तब १५० पल अर्थात् अढ़ाई घड़ी होती है। अढ़ाई घड़ी की एक होरा होती है। इस लिये उन मध्याह्न वृत्तों को "होरा वृत्त" भी कहते हैं। अब जिस स्थान का देशान्तर ठहराना हो उस का मध्याह्न काल वेध से सूझ पड़ता है। और उसी क्षण में जो मुख्य रेखा का भी काल ज्ञात हो तो एक सुलभ गणित से इष्ट स्थान का देशान्तर सूझ पड़ेगा। अब इतना ही करना चाहिये कि इष्ट स्थान का मध्याह्न काल और लण्डन का मध्याह्न काल इन दोनों का अन्तर जानके दश २ पलों का एक २ अंश गिनना और वे पूर्व वा पश्चिम जैसे होवें वैसा देशान्तर कहना जैसा कि निर्दिष्ट " पुर " के मध्याह्न काल में लण्डन में ११ बजे हों तो निर्दिष्ट पुर में १५° पूर्व देशान्तर जानना और जो लण्डन में एक बजा हो तो निर्दिष्ट पुर में १५° पश्चिम देशान्तर जानना। लण्डन का काल जानने के अनेक प्रकार हैं। उन में एक सुलभ प्रकार यह है कि शुद्ध अर्थात् दोषरहित एक कालमापक यन्त्र पास रखके उसे लण्डन में दृष्ट काल पर लगाके उस को वहां से पृथिवी के इतरभाग में ले जाना तब जब तक कि वह यन्त्र शुद्ध प्रकार से चलता है तब तक उस पर से लण्डन का काल ज्ञात होगा। इस प्रकार घड़ी आदि यन्त्र बनाने की विधि हमारे शिल्प शास्त्र में है, परन्तु इस के वह ग्रन्थ नहीं मिलते हैं। बड़ी नाव (जहाज) जो समुद्र में चलती हैं, उन पर देशान्तर जानने के लिये एक कालमापक यन्त्र रहता है। अक्षतांश बूझने के लिये एक अक्षांश नामक यन्त्र रहता है। इस से अक्षांश जानने के लिये ध्रुवतारा वा और किसी खस्थपदार्थ के उन्नतांश नापते हैं। तब नौकाध्यक्ष को कृत्रिम गोल पर से यह सब जान पड़ता है कि हम समुद्र के पृष्ठ पर किस ठांव में हैं और हम को इष्ट घाट पर पहुंचने के लिये किस दिशा में चलना चाहिये। ऐसी कल्पना करो कि मुख्य रेखा जहां निरक्ष में लगी है वहां नौका है। तब वहां दृष्ट हुआ मध्याह्न और कालमापक यन्त्र से ज्ञात हुआ लण्डन का मध्याह्न ये दोनों अवश्य एक ही काल में होंगे अब वह नाव निरक्ष देश पर पश्चिम की ओर उतनी दूर तक गई जहां दृष्ट मध्याह्न काल लण्डन के मध्याह्न काल के पीछे १० पल पर होवे। तब वहां अंश पश्चिम देशान्तर होगा और उस नाव का गमन पश्चिम की ओर अनुमान ३० कोश होगा। परन्तु जो नाव ४५° अक्षांशों के स्पष्ट परिधि पर अर्थात्

निरक्ष और ध्रुव इन के मध्य मार्ग पर चले तो काल में दश पल अन्तर होने से जो एक देशान्तरांश होता है, वह ३० कोश से न्यून ही कोश चलने से होगा। इसी प्रकार से और उत्तर की ओर देशान्तरांश की लम्बाई और छोटी रहती है। यह सब पृथिवी की गोलत्व कल्पना पर जैसी घटना होनी चाहिये तदनुसार ही होती है। पृथिवी गोल है। यह कल्पना नाव चलाने की जितनी रीतियां हैं उन सबों का मूल है और इन रीतियों से नाविक को कोई बड़ी भूल कभी नहीं होती। इस लिये नाविक लोग जो पृथिवी का आकार मानते हैं उस से और भांति का उस का आकार होना असम्भवनीय है॥

विधि ७

किसी निर्दिष्ट स्पष्ट परिधि पर एक देशान्तरांश में कितने कोश होते हैं यह जानने के लिये नियम

निर्दिष्ट स्पष्ट परिधि पर दो होरा वृत्तों के बीच में जितना अन्तर होगा उतना निरक्ष पर नापके उस में कितने अंश अन्तर्गत होते हैं, सो देख लेना। फिर उस अंश संख्या को दो से गुण देना। उतने कोश निर्दिष्ट स्पष्ट परिधि पर एक देशान्तरांश की लम्बाई होती है। सूर्य जो पर्याय से फिर२ उसी मध्याह्न वृत्त पर आता है, इसी से प्रायः "काल गति" की गिनती होती है। इस से किसी मनुष्य का पृथिवी के पृष्ठपर मध्याह्न वृत्त बदलने से कुछ चमत्कारिक घटना होती हैं॥ उदाहरण-ऐसी कल्पना करो कि कोई एक मनुष्य पृथिवी को ६० घड़ी में एक प्रदक्षिण कर सकता है और पृथिवी के अपने अक्ष पर घूमने से साठ घड़ी में उस की चारों ओर में सूर्य का भ्रमण देख पड़ता है इस लिये वह मनुष्य अपनी गति से किसी स्थान को मध्याह्न काल में छोड़ पश्चिम की ओर चलता हुआ सर्वदा सूर्य के नीचे रह सकेगा। अर्थात् उस को साठों घड़ी मध्याह्न ही बना रहेगा और वह मनुष्य जिस स्थान से चला वहां के रहने हारे मनुष्य को उतने काल में दो मध्याह्न होंगे अर्थात् वह एक दिन गिनेगा और वे दो मनुष्य जब फिर मिलेंगे तब उन दोनों की गिनती में एक दिन का अन्तर होगा॥

यहां एक पुरुष को साठ घड़ी में पृथिवी को प्रदक्षिण करने का सामर्थ्य मानके दोनों की गिनती में एक दिन का भेद दिखलाया। परन्तु उस प्रदक्षिण करने हारे मनुष्य को साठ ही घड़ी में एक प्रदक्षिण करना आवश्यक नहीं है। वह चाहे जितना धीरे चले और उस के चलने में चाहे उतना विराम

हो तौ भी वह मनुष्य प्रदक्षिण करके जब फिर अपने स्थान पर आवेगा तब उस की गिनती में एक दिन न्यून होगा ॥ उदाहरण–

ऐसी कल्पना करो कि कोई मनुष्य अपने स्थान में पश्चिम की ओर एक देशान्तरांश पर गया, तब उस के छोड़े हुवे स्थान में जिस काल पर जितने मध्याह्न होंगे, उस काल के दृ४ पल पीछे उस मनुष्य के वहां २ उतने मध्याह्न होंगे, यह स्पष्ट है । इस गणित से जब वह मनुष्य अपने स्थान से९० अंश पर पश्चिम में आ रहेगा, तब उस को अपने स्थान के मध्याह्नों से पन्द्रह घड़ी पीछे उतने मध्याह्न होंगे। यों ही जब वह १८० अंश पर जावेगा तब उस के ३० घड़ी पीछे उतने मध्याह्न होंगे । जब वह २७० अंश पर जा रहेगा, तब उस को ४५ घड़ी पीछे उतने मध्याह्न होंगे और जब ३६० अंश पर जावेगा, अर्थात् फिर अपने स्थान पर आ पहुंचेगा,तब उस को साठ घड़ी पीछे उतने मध्याह्न होंगे । इसी लिये यहां उस की गिनती [redacted] एक दिन न्यून होगा फिर वह चाहे उतना धीरे चला हो और उस के चलने में चाहे उतना विराम हुआ हो । यों ही जो कोई मनुष्य किसी स्थान से पूर्व की ओर चले तौ उस के मध्याह्न उत्तरोत्तर पहिले ही होंगे । तब जब उस की एक प्रदक्षिणा होगी तब उस की गिनती में एक दिन बढ़ जायगा ॥

पृथिवी के प्रदक्षिण करके आये हुवे लोगों से जो लोग मिले हैं उन का उन आये हुवे लोगों के साथ दिन वार के विषय में प्रायः विवाद हुआ है॥

कृत्रिम गोल को उष्ण में रखने के लिये यों कि जिस से वह पृथिवी की वास्तविक स्थिति दिखलावे

नियम–पहिले खुले स्थान में समान भूमि पर कर्कांटक (कम्पास) से एक वृत्त रचना करके उस के केन्द्र स्थान में एक वृत्ताकार शङ्कु रखना। तब उस शङ्कु के अग्र की छाया मध्याह्न के पहिले और पीछे उस वृत्त के परिधि में जहां लगे वहां दो चिह्न करना । फिर उन चिह्नों पर से एक सरल रेखा करके उस रेखा के किसी स्थान पर उस भूमि में एक लम्ब रेखा करनी । वह लम्ब रेखा उस स्थान की याम्योत्तर (दक्षिण उत्तर) रेखा कहावे । तब उस भूमि पर कृत्रिम गोल को यों रखना कि जिस में उस का आधार वृत्त ठीक उस याम्योत्तर रेखा पर रहे । फिर अपने रहने के स्थान का जो चिह्न गोल पर होगा,उसे आधार वृत्त के नीचे ले आके ध्रुवस्थान को अक्षांशों

ध्रुवस्थान के चारों ओर २३। २१ अन्तर पर जो वृत्त होते हैं उन को क्रम से "उत्तर कदम्बवृत्त" और " दक्षिण कदम्बवृत्त " कहते हैं। दो अयनवृत्त और दो कदम्बवृत्त इन चार वृत्तों से भूगोल के पांच विभाग होते हैं। उन को भूगोल के खण्ड कहते हैं। जो खण्ड दो अयनवृत्तों के बीच में है उसे उष्णखण्ड कहते हैं क्योंकि पृथ्वी के और प्रदेशों की अपेक्षा से वहां उष्णता विशेष रहती है। ध्रुवस्थान के चारों ओर कदम्बवृत्त के भीतर जो देश हैं उन को शीतखण्ड कहते हैं क्योंकि वहां शीत बहुत रहता है। और उष्ण खण्ड और शीत खण्ड इन के बीच में जो खण्ड हैं उन को क्रम से उत्तर और दक्षिण समशीतोष्णखण्ड कहते हैं॥

भुवन संस्था

आधुनिक सिद्धान्तानुसार जिस पृथिवी पर हम लोग रहते हैं वह आकाश में सूर्य के आकर्षण पर ठहरी है। इस के ऊपर अन्तरिक्ष जिस में मेघ, वायु, चन्द्रमा हैं और उन के ऊपर मङ्गलादि ग्रह एवं सूर्य और सब से ऊपर नक्षत्र मण्डल है। अब हम वेद के प्रमाण देते हैं:—

योस्य प्रथमः प्राणः ऊर्ध्वो नामासौ स अग्निः ॥३॥
योस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४॥
योस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५॥
योस्य चतुर्थः प्राणो विभुर्नामाथ स पवमानः ॥६॥
योस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा "आपः" ॥७॥
योस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥८॥
योस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥९॥
योस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १ ॥
योस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
योस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥ ३ ॥
योस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥
(अथर्व सं० काण्ड १५ । १५ । १७)

इन मन्त्रों से ईश्वर प्राप्त नामधारीने विराट्स्वरूप में भुवनसस्था का उपदेश किया है–अर्थात्

१–नक्षत्रमण्डल या राशिचक्र–सब से ऊपर। इस के नीचे
२–द्यौः लोक–जहां सूर्य एवं अन्यान्य मङ्गलादि ग्रह हैं। इस के नीचे
३–अन्तरिक्ष लोक–जहां चन्द्रमा है। एवं इसी अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के नीचे
४–वायुमण्डल, जल, मेघ, इन्द्रधनुष् आदि का स्थान है–और सब से नीचे
५–प्रजा या भूमि है। आधुनिक विद्वानों ने निश्चय किया है कि ४५ मील से १०८ पर्यन्त ऊपर को वायुमण्डल है जिस में मेघ बिजुली आदि हैं। इसी प्रकार हमारे भास्कराचार्य आदि ने भी लिखा है:–

भूमेर्बहिर्द्वादश योजनानि। भूवायुरत्राम्बुविद्युदाद्यम् ॥२॥
(सि० शि० मध्यगति वासना)

दोनों आर्य भट्ट, लल्ल ने भी ऐसा लिखा है अर्थात् भूमि से ऊपर १२ योजन या ६० माइल पर वायुमण्डल है इसी में निर्घात, उल्का, मेघ, इन्द्र-धनुष्, बीज, गन्धर्व नगर॥

निर्घातोल्का घनसुरधनुर्विद्युदन्तः कुवायोः।
संदृश्यन्ते खनगरपरीवेषपूर्वं॰॥

पृथिवी के ऊपर जो वायु हैं वह सात प्रकार के हैं। आवह,प्रवह,उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह। इन्हीं सात वायुओं को सात, पाताल या जो द्वीप हैं उन से गुणन करने से ४९ होते हैं। वस्तुतः एक ही है परन्तु स्थान भेद से भिन्न २ सख्या की गई है। इसी को पुराण वालों ने ४९ करोड़ वायु लिखा है"कोटि" का अर्थ प्रकार है ४९ कोटि अर्थात् ४९ प्रकार के। इसी "कोटि" को करोड़ संख्या अर्थ समझ कर पौराणिक महात्माने लिख मारा है॥

आवहः प्रवह उद्वहस्तथा संवहः सुपरिपूर्वको वहो ॥
सप्तमस्तु पवनः परावहः कीर्त्तितः कुमरुदावहोपरैः ॥ १॥
(धीवृद्धिद तन्त्र ग्रहभ्रमसंस्था) ॥
सप्तार्द्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णुस्तिष्ठन्ति प्रदिशा
विधर्मणि। ऋ० सं० १।१६४।३५

ध्रुवस्थान के चारों ओर २३। २१ अन्तर पर जो वृत्त होते हैं उन को क्रम से "उत्तर कदम्बवृत्त" और "दक्षिण कदम्बवृत्त" कहते हैं। दो अयनवृत्त और दो कदम्बवृत्त इन चार वृत्तों से भूगोल के पांच विभाग होते हैं। उन को भूगोल के खण्ड कहते हैं। जो खण्ड दो अयनवृत्तों के बीच में है उसे उष्ण-खण्ड कहते हैं क्योंकि पृथ्वी के और प्रदेशों की अपेक्षा से वहां उष्णता विशेष रहती है। ध्रुवस्थान के चारों ओर कदम्बवृत्तों के भीतर जो देश हैं उन को शीतखण्ड कहते हैं क्योंकि वहां शीत बहुत रहता है। और उष्ण खण्ड और शीत खण्ड इन के बीच में जो खण्ड हैं उन को क्रम से उत्तर और दक्षिण समशीतोष्णखण्ड कहते हैं॥

भुवन संस्था

आधुनिक सिद्धान्तानुसार जिस पृथिवी पर हम लोग रहते हैं वह आकाश में सूर्य के आकर्षण पर ठहरी है। इस के ऊपर अन्तरिक्ष जिस में मेघ, वायु, चन्द्रमा हैं और उन के ऊपर मङ्गलादि ग्रह एवं सूर्य और सब से ऊपर नक्षत्र मण्डल है। अब हम वेद के प्रमाण देते हैं:—

योस्य प्रथमः प्राणः ऊर्ध्वो नामासौ स अग्निः ॥३॥
योस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः ॥४॥
योस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः ॥५॥
योस्य चतुर्थः प्राणो विभुर्नामायं स पवमानः ॥६॥
योस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा "आपः" ॥७॥
योस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः ॥८॥
योस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः ॥९॥
योस्य प्रथमो व्यानः सेयं भूमिः ॥ १ ॥
योस्य द्वितीयो व्यानस्तदन्तरिक्षम् ॥ २ ॥
योस्य तृतीयो व्यानः सा द्यौः ॥ ३ ॥
योस्य चतुर्थो व्यानस्तानि नक्षत्राणि ॥ ४ ॥
(अथर्व सं० काण्ड १५ । १५ । १७)

इन मन्त्रों से ईश्वर आप्त नामधारीने विराट्स्वरूप में भुवनसंस्था का उपदेश किया है-अर्थात्

१-नक्षत्रमण्डल या राशिचक्र-सब से ऊपर। इस के नीचे
२-द्यौः लोक-जहां सूर्य एवं अन्यान्य मङ्गलादि ग्रह हैं। इस के नीचे
३-अन्तरिक्ष लोक-जहां चन्द्रमा है। एवं इसी अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के नीचे
४-वायुमण्डल, जल, मेघ, इन्द्रधनुष् आदि का स्थान है-और सब से नीचे
५-प्रजा या भूमि है। आधुनिक विद्वानों ने निश्चय किया है कि ४५ मील से १०८ पर्यन्त ऊपर को वायुमण्डल है जिस में मेघ बिजुली आदि हैं। इसी प्रकार हमारे भास्कराचार्य आदि ने भी लिखा हैः-

भूमेर्बहिर्द्वादश योजनानि। भूवायुरत्राम्बुविद्युदाद्यम् ॥२॥
(सि० शि० मध्यगति वासना)

दोनों आर्य भट्ट, लल्ल ने भी ऐसा लिखा है अर्थात् भूमि से ऊपर १२ योजन या ६० माइल पर वायुमण्डल है इसी में निर्घात, उल्का, मेघ, इन्द्रधनुष्, बीज, गन्धर्व नगर॥

निर्घातोल्का घनसुरधनुर्विद्युदन्तः कुवायोः।
संदृश्यन्ते खनगरपरीवेषपूर्वं॥

पृथिवी के ऊपर जो वायु हैं वह सात प्रकार के हैं। आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह। इन्हीं सात वायुओं को सात पाताल या जो द्वीप हैं उन से गुणन करने से ४९ होते हैं। वस्तुतः एक ही है परन्तु स्थान भेद से भिन्न २ संख्या की गई है। इसी को पुराण वालों ने ४९ करोड़ वायु लिखा है "कोटि" का अर्थ प्रकार है ४९ कोटि अर्थात् ४९ प्रकार के। इसी "कोटि" को करोड़ संख्या अर्थ समझ कर पौराणिक महात्मा ने लिख मारा है॥

आवहः प्रवह उद्वहस्तथा संवहः सुपरिपूर्वकौ वहौ॥
सप्तमस्तु पवनः परावहः कीर्तितः कुमरुदावहोपरैः॥१॥
(धीवृद्धिद तन्त्र ग्रहभ्रमसंस्था)॥

सप्तार्द्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णुस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि। ऋ० सं० १। १६४। ३५।

भाव थं -चन्द्रमा और ग्रहादिकों की कक्षा क्रान्ति वृत्त के आस पास है, यह कभी क्रान्तिवृत्त के ऊपर या दक्षिण क्रान्तिवृत्त को काट कर जाता है जिन को " विक्षेप " कहते हैं। यह विक्षेप ७॥ अंश उत्तर या दक्षिण में रहता है। यह क्रान्ति प्रदेश १५ अंश चौड़ा है।

भूगोलरेखा वर्णन

वैदिक प्रमाणों से खगोल एवं भूगोल की रेखादि का वर्णन

यदस्य दक्षिणमक्ष्यसौ स आदित्यो यदस्य सव्य-
मक्ष्यसौ स चन्द्रमाः॥२॥ अथर्ववेदे । काण्डे १५

अर्थात् ब्रात्य नामधारी ईश्वर के दक्षिण आंख मानो सूर्य है बाईं आंख चन्द्रमा, दिन रात नासिका, दिति और अदिति (आकाश के दो खण्ड पूर्व और पश्चिम) दोनों कपाल और संवत्सर शिर है। इस उपदेश से हम को सूर्यादि की संस्था, दिन रात का होना, आकाश के विभाग एवं नक्षत्रों का बनाना आदि का ज्ञान होता है॥

प्रपिद्द्याणं पन्थां जानाति प्रदेवयानम् ।

(अथर्ववेदे १५ । १२ । ५)

अर्थात्-सूर्य जब उत्तरायण एवं दक्षिणायन होता है उस को क्रम से उत्तरायण को " देवयान " एवं दक्षिणायन को " पितृयान " कहते हैं॥

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः । ते देवा ऋतवः ।
शरद्धेमन्तः शिशिरस्ते पितरः स (सूर्यः) ।
यत्रोदगावर्त्तते देवेषु तर्हि भवति ।
यत्र दक्षिणावर्त्तते तर्हि पितृषु भवति॥

(शतपथब्राह्मणे २ । १ । ३)

भावार्थः-वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा इन ऋतुओं में सूर्य उत्तरायण होने के कारण देवभाग (उत्तर मेरु) में होता है और शरद्, हेमन्त, शिशिर इन ऋतुओं में पितृलोक (दक्षिण मेरु) में होता है अर्थात् दक्षिणायन॥

यथा वै पुरुष एवं विषुवांस्तस्य यथा दक्षिणोऽर्द्ध एवं पूर्वार्द्धो विषुवतो यथोत्तरार्द्ध एवमुत्तरार्द्धो विषुवतस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते प्रबाहुक् सतः शिर एव विषुवान् ॥ ऐतरेय ब्राह्मणे १८। २२।

भावार्थ –जिस प्रकार पुरुष होता उसी प्रकार विषवान् सूर्य होता है। जिस प्रकार पुरुष के शरीर वा शिर के पूर्वार्द्ध और दक्षिणार्द्ध होते इसी प्रकार पश्चार्द्ध एव उत्तरार्द्ध होते हैं अर्थात् समान दो २ भाग होते हैं। इसी कारण जब सूर्य मेष एवं कन्या राशिस्थ दीखता है तो उस समय अहोरात्र बराबर होता है ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ॥

(यजुर्वेद अ० ३४ । २७)

भावार्थः–पृथिवी के भ्रमण मार्ग को रविमार्ग वा क्रान्तिवृत्त कहते हैं, जिस पर सूर्य प्रत्येक राशि में जाते दीखता है ॥

षडाहुःशीतान् षडु मास उष्णान्तम् ॥

(अथर्ववेद १८ । ५ । १० । १७)

भावार्थः–छः महीने सूर्य के उत्तरायण होने के कारण गर्मी रहती है। एवं छः मास के दक्षिणायन होने से शीत होता है ॥

तस्मादादित्यः षण्मासो दक्षिणेनैति षडुत्तरेण ॥

(तैत्तिरीय ब्राह्मणे ६ । ५ । ३)

भावार्थः–विषुवती रेखा से छः मासपर्यन्त सूर्य दक्षिण जाते दीखता है, एवं छः मासपर्यन्त उत्तरायण में उत्तर की ओर जाते दीखता है ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्साकं त्रिशता न शङ्कवोर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥

(ऋ० सं० १ । १६४ । ४८)

भावार्थः–३६० अंश का एक चक्र (संवत्सर वा क्षेत्र) होता है, जिस में तीन नाभि (गर्मी, सर्दी, वर्षा ऋतु वा भूत, भविष्यत्, वर्तमान) हैं। वह ३६० अंश सनातन और अविचल है ॥

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा॥
(ऋ० सं० ८ । ४६ । २२)

भावार्थ –और प्रत्येक ३६० में साठ २ कलायें (या दण्ड) होती हैं। अर्थात् ३६०×६०=(२१६००) कला ॥ 21600 कला

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक ॥ ऋ० सं १ । ५३ । ९ ॥

भावार्थ –और प्रत्येक कला मे साठ २ विकला (या पल) होती हैं। अर्थात् २१६००×६०=१२९६००० विकला ॥

योऽश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम् ॥ २८ ॥
अधप्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासन्द्रम् ॥ २९ ॥
(अथर्व सं० ८ । ४६ । २९)

भावार्थ –और प्रत्येक विकला में साठ २ अनुकला (विपल) होती है अर्थात् १२९६००००×६०=७७७६०००० अनुकला ॥

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं
व्यतीरवीविपत् ॥ ऋ० सं० १ । १५५ । ६

भावार्थ –३६० अंश का एक चक्र होता है और इस में चार पाद होते हैं। प्रत्येक पाद में नव्वे २ (९०) अंश होते हैं, जिन को वृत्तपाद-कहते हैं॥

अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः ।
(ऋ० सं० १ । १२३ । ८)

भावार्थ –जहां पर ठीक सूर्योदय होता है उस स्थान से (पश्चिम) परे ३० योजन पर उप प्रकाश होता है (अरुणोदय से पहिले जो प्रकाश होता है) इस मन्त्र से ईश्वर देशान्तर लाने और सूर्य एक ही समय में सर्वत्र उदित या अस्तमित नहीं होता, इस का उपदेश करता है ॥ ॥ इति ॥

ज्योतिष के ग्रन्थों में बहुत से साङ्केतिक दुरूह शब्दों से संख्यायें निर्देश की गईं हैं, उन प्रत्येक का अर्थ—

साङ्केतिक शब्द	भावार्थ	साङ्केतिक शब्द	भावार्थ
अत्यष्टि	१७	इन	सूर्य १२
अज	१	इषु	५
अनल	४	ईक्षण	२
अभ्र	शून्य, ०	ईला	१
अक्षि	२	ईश	११
अङ्ग	६	उरग	८
अर्कि	शनैश्चर	उडु	नक्षत्र २७।
अम्बर	०	ऋक्ष	नक्षत्र २७
अर्क	१२	ऋतु	६
अम्बुधि	४	ककुभ्	१०
अङ्क	९	कर	२
अब्धि	४	काल	६
अग्नि	३	कु	१
अद्रि	७	कुज	मङ्गल
अग	७	कुञ्जर	८
अरुण	१२	क्ष्मा	१
अश्वि	२	कृति	वर्ग
अचल	७	कृत	४
अष्टि	१६	ख	शून्य ०
आशा	८	खग	८
आस्य	जोड़ा हुआ	खेट	ग्रह
आकर	मङ्गल	गज	८
आहत	गुणित	गो	९
इज्य	बृहस्पति	गुण	३
इन्दु	१	ग्रह	९
इन्द्र	१४	घन	१७
इभ	८	घात	गुणन

ज्योतिष के ग्रन्थों में बहुत से साङ्केतिक दुरूह शब्दों से संख्यायें निर्देश की गईं हैं, उन प्रत्येक का अर्थ—

साङ्केतिक शब्द	भावार्थ	साङ्केतिक शब्द	भावार्थ
चन्द्र	१	नन्द	९
छिद्र	०	नभस्	०
ज्ञ	बुध	नयन	२
जलधि	४	निशाकर	१
जिन	२४	निगम	४
जिष्णु	१४	पक्ष	२
ज्वलन	३	पर्वत	७
तर्क	६	पयोधि	४
तत्त्व	२५	पावक	३
तान	४९	पृथिवी	१
तिथि	१५	प्रभाकर	१२
त्रि	३	बाण	५
तुरङ्ग	७	बाहु	२
दन्त	३२	भ	नक्षत्र २७
दशन	३२	भुज	२
दहन	३	भुजङ्ग	८
दस्र	२	भू	१
दिव्	० शून्य	भूधर	७
दिन	३०	भूप	१६
दृक्	२	भूमि	१
द्विप	८	भूमिधर	७
द्युचर	ग्रह	भौम	मङ्गल
द्वि	२	मरुत्	४९
देव	३३	महीधर	७
धरणी	१	महीज	मङ्गल
नख	२०	मार्गण	५
नग	७	मुनि	७
नव	९	यम	२

ज्योतिष के ग्रन्थों में बहुत से साङ्केतिक दुरूह शब्दों से संख्यायें निर्देश की गई हैं, उन प्रत्येक का अर्थ–

साङ्केतिक शब्द	भावार्थ	साङ्केतिक शब्द	भावार्थ
यमल	२	शिव	११
युग्म	२	शिखी	३
युग	४	शिलीमुख	५
रन्ध्र	९	शेषित	विभक्त
रद्	३२	शैल	७
रस	६	षट्	६
रवि	१२	सर्प	८
राम	३	सागर	४
रुद्र	११	सायक	५
रूप	१	सितरुच्	१
लोचन	२	सिद्ध	२४
वह्नि	३	सितत्विट्	१
वसु	८	सुर	३३
वसुधा	१	सूर्य	१२
वियत्	शून्य ०	सौरि	शनि
वार्द्धि	४	हत	गुणित
विवर	अन्तर	हिमांशु	१
विश्व	१३	हस्ती	८
विधु	१	हुतभुक्	३
वीतिहोत्र	३	हृत	[illegible]
व्यास	८	हीन	घटाना
व्योम	० शून्य		
शर	५		
शशि	१		
शशाङ्क	१		
श्रुति	४		
शूली	११		



ओ३म्

सूर्यसिद्धान्त भाषानुवादः

अचिन्त्याव्यक्तरूपाय निर्गुणाय गुणात्मने । समस्तजगदाधारमूर्त्तये ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥ अल्पावशिष्टे तु कृते मयनामा महासुरः । रहस्यं परमं पुण्यं जिज्ञासुर्ज्ञानमुत्तमम् ॥ २ ॥ वेदाङ्गमग्र्यमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम् । आराधयन्विवस्वन्तं तपस्तेपे सुदुश्चरम् ॥ ३ ॥ तोषितस्तपसा तेन प्रीतस्तस्मै वरार्थिने । ग्रहाणां चरितं प्रादान्मयाय सविता स्वयम् ॥ ४ ॥ विदितस्ते मया भावस्तोषितस्तपसा ह्यहम् । दद्यां कालाश्रयं ज्ञानं ग्रहाणां चरितं महत् ॥ ५ ॥ न मे तेजःसहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः । मदंशः पुरुषोऽयं ते निःशेषं कथयिष्यति ॥ ६ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः समादिश्यांशमात्मनः । स पुमान्मयमाहेदं प्रणतं प्राञ्जलिस्थितम् ॥ ७ ॥ शृणुष्वैकमनाः पूर्वं यदुक्तं ज्ञानमुत्तमम् । युगे युगे महर्षीणां स्वयमेव विवस्वता ॥ ८ ॥ शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः । युगानां परिवर्त्तेन कालभेदोऽत्र केवलम् ॥ ९ ॥

भाषानुवाद—उस ब्रह्मको जिस का रूप ध्यान मे नहीं आसकता और न किसी इन्द्रिय से प्रत्यक्ष हो सकता है, जिस में सत्व रज तम आदि प्रकृति के गुण नहीं हैं और नित्य ज्ञान सुखादि गुण वर्त्तमान हैं और जो अखिल जगत् को धारण करता है, नमस्कार है ॥ १ ॥ सत्ययुग के अन्त से थोड़े समय पहिले मयनामक महा असुर ने यह गूढ पुण्यजनक सब से श्रेष्ठ और उत्तम

ज्ञान ॥ २ ॥ जो सब वेदाङ्गों (वेद के छः अङ्ग हैं, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः शास्त्र और ज्योतिष) में अग्रणी है और ग्रह नक्षत्रों की गति का कारण है, जानने की इच्छा से नारायण की आराधना करके अतिकठोर परिश्रम या तप किया ॥ ३ ॥ उस के तप से प्रसन्न होकर वर चाहने वाले मय को ग्रहों का सम्पूर्ण ज्ञान सूर्य ने दिया ॥ ४ ॥ सूर्य ने कहा—हे मय! मैंने तेरा प्रयोजन जाना और मैं तेरे तप से प्रसन्न हुआ, मैं तुम को काल के आश्रय जो ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान है वह दूंगा ॥ ५ ॥ मेरा तेज कोई नहीं सम्हाल सकता और मुझे उपदेश करने का अवकाश भी नहीं इस लिये यह पुरुष जो मेरा अंश है तुम से सम्पूर्ण शास्त्र कहेगा ॥ ६ ॥ यह कह कर सूर्य अपने अंश पुरुष को आज्ञा देकर अन्तर्धान होगया और उस पुरुष ने मय से जो हाथ जोड़े और नम्र हुआ खड़ा था, यह कहा ॥ ७ ॥ हे मय! जो उत्तम ज्ञान स्वयं सूर्य ने पूर्व युग में महर्षियों को उपदेश किया था उस को एकाग्र हो श्रवण करो ॥ ८ ॥ यह बहुत प्राचीन शास्त्र है जो पूर्वकाल में सूर्य ने वर्णन किया है और प्राचीन और आधुनिक शास्त्रों में युगों के बदलने का कारण केवल काल का भेद है। अर्थात ग्रहादिकों की गति विधि आदि निरूपण के नियम एकसे रहते हैं परन्तु समय २ पर वेध (Observation) द्वारा ग्रहों को देखने से कुछ बीज (Correction) देना पड़ता है, इस कारण कुछ २ काल में भेद पड़ता है ॥ ९ ॥

विवरण—श्लोक २—७ असुर जाति के मय ने खगोलस्थ पदार्थों के सम्यक् ज्ञान के लिये "सावित्र विद्या" (ज्योतिष शास्त्र) में कठिन परिश्रम (Study) किया जिस से प्रथम उस ने सूर्य (जो सारे जगत् में सब से बड़ा पदार्थ एवं केन्द्र स्वरूप है) का निश्चय किया (उस का आकार, गति, वर्ण, भगण आदि) और उसी को मूल मानकर और जगत्स्थ अन्यान्य ग्रह, उपग्रह एवं नक्षत्रादि समस्त आकाशस्थ पदार्थों का ज्ञान प्राप्त किया। इसी को आलङ्कारिक वर्णन से (सूर्य की तपस्यादि) प्राचीन शैली से लिखा है॥ ज्योतिष शास्त्र को प्राचीन समय में "सावित्रविद्या" कहते थे इस में प्रमाणः—

> "अहीनाश्वत्थ्यः । सावित्रं विदाञ्चकार ॥ १० ॥ स ह हंसो भूत्वा । स्वर्गं लोकमियाय । देवभागो ह श्रौतर्षः । सावित्रं विदाञ्चकार ॥ ११ ॥ भूयो ह वार्ष्णेयः । आदित्येन समाजगाम॥ तै० ब्रा० । ३ । १० । ९"

अर्थात् अश्वत्था के पुत्र अहीन ने सावित्रविद्या को जाना और स्वर्ग

को प्राप्त हुवा और यौतर्ष देवभाग ने सावित्रविद्या को जाना और चार्व्णीय भूप ने सावित्रविद्या को जाना और सूर्यके तुल्य (विद्यामें) प्रकाशमान हुवा॥

श्लोक ६। ७। ८ के विषय में पाठ भेद है। पूना के आनन्द आश्रम नामक पुस्तकालय में एक टीका रहित पुस्तक है जिस के नं० २९०९ में इस प्रकार पाठ है कि "न मे तेजःसहः कश्चिदाख्यातुं नास्ति मे क्षणः। मदंशः पुरुषोऽयं ते निःशेषं कथयिष्यति॥ ६॥ तस्मात् त्वं स्वां पुरीं गच्छ तत्र ज्ञानं ददामि ते। रोमके नगरे ब्रह्मशापान्म्लेच्छावतारधृक्॥ ७॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः" अर्थः—हे मय! मेरा तेज कोई सह नहीं सकता और मुझे कहने का समय नहीं। यह मेरा अंश पुरुष तुझ से सब कहेगा। इस लिये तू अपनी नगरी को जा, वहां रोमकनगर में ब्रह्मशाप से मैं म्लेच्छावतार लेने वाला हूं तो वहीं तुझे ज्योतिषशास्त्र का उपदेश करूंगा। यह पाठ सटीक एक पुस्तक में ६ श्लोक नहीं है, एवं दूसरी में दोनो हैं। इस पर मिस्टर रे० बर्जेस (अंग्रेजी अनुवादक) की सम्मति है कि यह श्लोक ६। ७। ८ असङ्गत हैं किसी ने मिलाये जान पड़ते हैं। इस का पूरा वर्णन भूमिका में किया गया है, वहां देखिये॥

लोकानामन्तकृत्कालः कालोऽन्यः कलनात्मकः॥ स द्विधा स्थूलसूक्ष्मत्वान्मूर्त्तश्चामूर्त्त उच्यते॥१०॥ प्राणादिः कथितो मूर्त्तस्त्रुट्याद्योऽमूर्त्तसंज्ञकः॥ षड्भिः प्राणैर्विनाडी स्यात्तत्षष्ट्या नाडिका स्मृता॥ ११॥ नाडीषष्ट्या तु नाक्षत्रमहोरात्रं प्रकीर्त्तितम्॥ तत्त्रिंशता भवेन्मासः सावनोऽर्कोदयैस्तथा॥ १२॥ ऐन्दवस्तिथिभिस्तद्वत्संक्रान्त्या सौर उच्यते॥ मासैर्द्वादशभिर्वर्षं दिव्यं तदहरुच्यते॥ १३॥ सुरासुराणामन्योऽन्यमहोरात्रं विपर्ययात्॥ तत्षष्टिः षड्गुणा दिव्यं वर्षमासुरमेव च॥१४॥ तद्द्वादशसहस्राणि चतुर्युगमुदाहृतम्॥ सूर्याब्दसंख्यया द्वित्रिसागरैरयुताहतैः॥ १५॥ सन्ध्यासन्ध्यांश-

सहितं विज्ञेयंतच्चतुर्युगम् ॥ कृतादीनां व्यवस्थेयं धर्म-पादव्यवस्थया ॥ १६ ॥ युगस्य दशमोभागश्चतुस्त्रिद्व्येकपड्गुणः । क्रमात्कृतयुगादीनां षष्ठांशः सन्ध्ययोःस्वकः ॥ १७ ॥

भाषाअनुवाद–काल दो प्रकार का है,एकवह जो जगत् की उत्पत्ति स्थिति और नाश का कारण होने से अनन्त है । दूसरा जो ज्ञानगम्य है अर्थात् गणित द्वारा जानने योग्य है । ज्ञानगम्य काल दो प्रकार का है । एक मूर्त या स्थूल है, दूसरा सूक्ष्म (जिस का परिमाण नहीं हो सकता) है ॥ १० ॥ प्राण से लेकर कल्पादि पर्यन्त काल को मूर्त काल कहते हैं।एवं त्रुटि आदि (अति सूक्ष्म काल जो व्यवहार में नहीं आता) को अमूर्त काल कहते हैं। छः प्राण की १ विनाड़ी (पल) एवं ६० विनाड़ी की १ नाड़ी (घड़ी,दण्ड) होती है ॥ ११ ॥ ६० नाड़ी का १ नाक्षत्रिक अहोरात्र (दिन + रात्रि) और ३० नाक्षत्रिक अहोरात्र का १ नाक्षत्रिक महीना होता है । एक सूर्य के उदय से लेकर दूसरे सूर्य के उदय पर्यन्त काल को "सावन" (Civil day & night) या "पार्थिव" अहोरात्र कहते हैं और ३० सावन अहोरात्र का १ सावन मास होता है ॥ १२ ॥ ३० तिथियों का १ चान्द्रमास होता है । संक्रान्ति से संक्रान्ति तक काल का १ सौर मास होता है–और प्रत्येक पूर्वोक्त १२ नाक्षत्र मास का १ नाक्षत्र वर्ष, १२ सावनमास का १ सावनवर्ष, १२ चान्द्रमास का १ चान्द्र वर्ष और १२ सौरमास का १ सौरवर्ष होता है । एवं १२ सौर मास का दिव्य अहोरात्र होता है (देवता और असुर का)॥ १३ ॥ देव और असुरों का अहोरात्र विपर्यय (बरअक्स) से होता है अर्थात् जब देवताओं का दिन होता है, तब असुरों की रात्रि होती है । एवं जब असुरों का दिन होता है तब देवताओं की रात्रि होती है । ऐसे दिव्य ३० अहोरात्र का १ दिव्यमास और १२ दिव्य महीनों का १ दिव्य वर्ष होता है ॥ १४ ॥ पूर्वोक्त १२००० दिव्य वर्षों की १ चतुर्युगी (चौकड़ी–युग) होती है । जिस के सौर वर्ष ४३२०००० होते हैं ॥ १५ ॥ उक्त चतुर्युगी का परिमाण सन्ध्या और सन्ध्यांश मिलाकर है । चतुर्युगी में जो सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि क्रम से ४, ३, २ और १ (संख्या से जो आगे गुणन होगा) हैं यह धर्म के ४ चरण को नाईं हैं ॥१६॥ युग (पूर्वोक्त १ महायुग वा चतुर्युगी) के वर्ष के दशम भाग को ४, ३, २ और १ से गुणा करने से क्रम से कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग के वर्षों

का परिमाण होगा और इन प्रत्येक युगों के वर्ष परिमाण का छठा भाग अथवा २ सन्ध्या और सन्ध्यांश वर्ष होता है जो उसी में मिला है अर्थात् प्रत्येक युगमान वर्ष के छठा भाग के वर्ष दो भाग में से एक भाग आदि सन्धि का वर्ष और दूसरा भाग अन्त सन्धि का वर्ष होता है ॥ १७ ॥

११–विवरण–सेकण्ड के १/३१५० भाग की त्रुटि कहते हैं ॥

१२–एक दिन जिस समय माध्यान्हिक रेखा के ऊपर कोई स्थिर तारा दीख पड़ती है उस समय से उस के दूसरे दिन उसी रेखा पर–जिस समय उक्त तारा दीख पड़े, उतने समय को नाक्षत्रिक अहोरात्र कहते हैं ॥

१३–एक दिन के मध्यान्ह काल से उसके दूसरे दिनके मध्यान्हकाल पर्यन्त समय को प्रकृत सौर दिन कहते हैं ॥

१४–पृथिवी को उत्तरमेरु के निवासी देव और दक्षिण मेरु के निवासी असुर कहाते हैं । पृथिवी की दैनिक गति से जब छः मास में उस का उत्तर-मेरुप्रदेश सूर्य के सम्मुख होता है तब देवताओं का छः मास तक दिन और उस समय असुरों की रात्रि और जब पृथिवी का दक्षिणप्रदेश सूर्य के सामने होता है तब असुरों का छः महीने का दिन और उस समय देवों की रात्रि होती है । इस प्रकार पृथिवी की वार्षिक गति में १ वर्ष का–देवता और असुरों का १ अहोरात्र होता है ॥

युगानां सप्ततिः सैका मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ कृताब्दसंख्या तस्यान्ते सन्धिः प्रोक्तो जलप्लवः ॥१८॥ ससन्धयस्ते मनवः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश ॥ कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पञ्चदशः स्मृतः ॥ १९ ॥ इत्थं युगसहस्रेण भूतसंहारकारकः ॥ कल्पोब्राह्ममहः प्रोक्तं शर्वरी तस्य तावती ॥ २० ॥ परमायुः शतं तस्य तयाहोरात्रसंख्यया ॥ आयुषोऽर्द्धमितं तस्य शेषकल्पोऽयमादिमः॥२१॥कल्पादस्माच्च मनवः षड्व्यतीताः ससन्धयः ॥ वैवस्वतस्य च मनोर्युगानां त्रिघनो गतः ॥ २२ ॥ अष्टाविंशाद्युगाद-

स्याद्यासमेतत्कृतं युगम् ॥ अतः कालं प्रसंख्याय संख्या-
मेकत्र पिण्डयेत् ॥ २३ ॥

भाषार्थ—पूर्वोक्त ७१ महायुगों (चतुर्युगी) की १ मन्वन्तर संज्ञा है और मन्वन्तर के अन्त में सत्ययुग के वर्ष परिमाण (सौर वर्ष १७२८००० जिस के दिव्य वर्ष ४८०० होते हैं) के बराबर सन्धि का परिमाण है । इस सन्धि समय सारी पृथिवी जल से भर जाती है अर्थात् जलमय हो जाती है ॥१८॥ पूर्वोक्त १४ मन्वन्तर का १ कल्प होता है। इस में १४ अन्त की सन्धियां होती हैं और एक आदि सन्धि सत्ययुग के वर्ष परिमाण के बराबर होती है अर्थात् १ कल्प में १४ मन्वन्तर और १५ सन्धियां होती हैं ॥१९॥ पूर्वोक्त रीति से १००० चतुर्युगी का १ कल्प होता है जिस के अन्त में सब प्राणियों का नाश हो जाता है । १ कल्प का १ ब्राह्म दिन होता है और इसी परिमाण की रात्रि अर्थात् पूर्वोक्त २ कल्प का १ ब्राह्म अहोरात्र होता है ॥ २० ॥ ब्रह्मा की आयु (सृष्टि वर्तमान रहेगी) ब्राह्ममान से १०० वर्ष की है अर्थात् पूर्वोक्त ३० ब्राह्म अहोरात्र का १ ब्राह्ममास, एवं १२ ब्राह्म मास का १ ब्राह्म वर्ष होता है । ऐसे १०० वर्ष की ब्रह्मा की आयु है । इस आयु का आधा भाग बीत गया और अवशिष्ट (बाकी) आयु के कल्पों में से यह वर्तमान पहिला कल्प है अर्थात् १०० वर्ष में से ५० वर्ष पूरे बीत गये । एवं ५१ वां वर्ष अवशिष्ट आयु का बीत रहा है ॥ २१ ॥ इस वर्तमान कल्प (ब्राह्मदिन) में से ६ मन्वन्तर सन्धियों सहित बीत गये हैं और इस वर्तमान वैवस्वत नामक सप्तम मन्वन्तर के ७१ महायुगों में से पूरे २७ चतुर्युग बीत गये हैं ॥ २२ ॥ और २८ वीं चतुर्युगी में से सतयुग पूरा बीत गया है । अब काल की संख्या करने के लिये इस २८ वीं चतुर्युगी के कृत युग तक के बीते हुये वर्षों को एक स्थान में योग करो॥२३॥

विवरण–श्लोक १८ से २३ तक

१४ मन्वन्तरों के नाम ये हैं–१ स्वायम्भुव, २ स्वारोचिष, ३ औत्तमि, ४ तामस, ५ रैवत, ६ चाक्षुष, ७ वैवस्वत, ८ सावर्णि, ९ दक्षसावर्णि, १० ब्रह्म सावर्णि, ११ धर्मसावर्णि, १२ रुद्रपुत्र, १३ रौच्य और १४ भौत्यक । ये १४ मन्वन्तर और १५ सन्धि मिलाकर १००० महायुग होते हैं। महायुग का दशम भाग ४३२००० सौ० व० कलियुग का परिमाण, इस के द्विगुणित द्वापर, तीन गुणा त्रेता और चार गुणा सत्ययुग और प्रत्येक युग के वर्षों का छठा भाग आदि और छठा भाग अन्त सन्धि के वर्ष होते हैं ॥

युगवर्षज्ञापक चक्र

कृत युग			त्रेता युग			द्वापर युग			कलियुग			चतुर्युग वा महायुग		
सन्धि और युगमान	सौर वर्ष	दिव्य वर्ष	सन्धि और युगमान	सौर वर्ष	दिव्य वर्ष	सन्धि और युगमान	सौर वर्ष	दिव्य वर्ष	सन्धि और युगमान	सौर वर्ष	दिव्य वर्ष	सन्धि और युगमान	सौर वर्ष	दिव्य वर्ष
आदि सन्धि	१४४०००	४००	आदि सन्धि	१०८०००	३००	आदि सन्धि	७२०००	२००	आदि सन्धि	३६०००	१००	आदि सन्धि	३६००००	१०००
कृत युग का मान	१५५००००	४०००	युगमान	१०८००००	३०००	युगमान	७२००००	२०००	युगमान	३६००००	१०००	युगमान	३६०००००	१००००
अन्त सन्धि	१४४०००	४००	अन्त सन्धि	१०८०००	३००	अन्त सन्धि	७२०००	२००	अन्त सन्धि	३६०००	१००	अन्त सन्धि	३६००००	१०००
सन्धि सहित युगमान	१७२८०००	४८००	सन्धि सहित युगमान	१२९६०००	३६००	सन्धि सहित युगमान	८६४०००	२४००	सन्धि सहित युगमान	४३२०००	१२००	सन्धि सहित युगमान	४३२००००	१२०१०

१ मन्वन्तर=७१ महायुग

१ महायुग=सौरवर्ष ४३२०००० × ७१=३०६७२०००० सौर वर्ष, (१ मन्वन्तर के वर्ष) इन को १४ [मन्वन्तर] से गुणा किया तो ४२९४०८०००० सौर वर्ष हुये (१४ मन्वन्तर के वर्ष) १५ सन्धि १ सन्धि में १७२८००० सौरवर्ष। इन को १५से

गुणा किया तो २५९२०००० सौर वर्ष हुवे। इस संख्या को १४ मन्वन्तर की वर्ष संख्या में योग किया तो ४३२०००००००० सौर वर्ष हुवे। यही १ कल्प वा ब्राह्म दिन का परिमाण हुआ। इसी प्रकार इतने ही वर्ष की ब्राह्म रात्रि होती है। इस वर्त्तमान कल्प के ६ मन्वन्तर बीत गये॥

६ × ३०६७२०००० (मन्वन्तर परिमाण) = १८४०३२०००० सौर वर्ष
मन्वन्तर की बीती हुई सन्धि ७×१७२८००० (सन्धि परिमाण वर्ष)=१२०९६००० „
बीते हुवे चतुर्युग २७ × ४३२०००० (१ चतुर्युग वर्ष)=११६६४०००० „
गत कृत युग १७२८००० „
कल्प के आरम्भ से सतयुग के अन्त पर्यन्त १९७०७८४००० सौर वर्ष हुवे॥

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्। कृताद्रिवेदा दिव्याब्दाः शतघ्ना वेधसोगताः॥ २४॥ पश्चाद्व्रजन्तोऽतिजवान्नक्षत्रैः सततं ग्रहाः। जीयमानास्तु लम्बन्ते तुल्यमेव स्वमार्गगाः॥२५॥ प्राग्गतित्वमतस्तेषां भगणैः प्रत्यहं गतिः। परिणाहवशाद्भिन्ना तद्वशाद्भानि भुञ्जते ॥२६॥ शीघ्रगस्तान्यथाल्पेन कालेन महताल्पगः। तेषां तु परिवर्त्तेन पौष्णान्ते भगणः स्मृतः॥ २७॥

भाषानु०—कल्प के आरम्भ से जगन्निर्माता ईश्वर को ग्रह, नक्षत्र, देव, असुर, मनुष्य, भूमि, पर्वतादिकों (चराचर=जङ्गम, स्थावर) की सृष्टि करते हुवे ४७४०० दिव्य वर्ष बीत गये॥ २४॥ यह सब अपने २ मार्ग पर नक्षत्रों के साथ अति शीघ्र गति से पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हैं परन्तु नक्षत्रों से चलने में पीछे रहजाते हैं। यह गति सब ग्रहों की तुल्य वेग से जनित है ॥२५॥ इस कारण ग्रहों की गति पश्चिम से पूर्व की ओर है और उस गति का ज्ञान ग्रहों के भगणों के नाम से होता है। ग्रहों की कक्षाओं (Orbit) के परिधि (Circumfirence) भिन्न २ होने के कारण यद्यपि गति की तुल्य वेग से जनित है तथापि भिन्न २ है॥ २६॥ शीघ्र चलने वाले ग्रह थोड़े समय में राशि चक्र का भ्रमण पूरा करलेते हैं और मन्द २ चलने वाले ग्रह अधिक समय में एक भगण पूरा करते हैं। राशिचक्र में रेवती के योग तारा से चलकर पुनः वहीं लौट कर आजाने को प्रत्येक ग्रहों का अपना२ "भगण" कहते हैं॥ २७॥

विवरण–२४ श्लोक ४७४०० दिव्य वर्ष × ३६०=१७०६४००० सौर वर्ष को १९७०७८४०३० (पूर्वोक्त सौर वर्ष) वर्ष से घटाने पर शेष १९५३७२०००० सौर वर्ष कल्प के आरम्भ से कृतयुग के अन्त तक व्यतीत हुए हैं। अब इस प्रकार समझना चाहिये कि:–

कृतयुग के अन्त तक	१९५३७२००००
गत त्रेता युग	१२९६०००
गत द्वापर	८६४०००
गत कलि (मिति चैत्र कृष्णपक्ष संवत् १९५८ तक)	५००२
योग	१९५८८५००२

वर्त्तमान सृष्टि संवत् यही है और चैत्र शुक्ल १ संवत् १९५९ को १९५८८५००३ का आरम्भ होगा॥

२६॥ ग्रहों की कक्षा बड़ी और छोटी होने के कारण प्रत्येक की गति एकसी नहीं होती है। अर्थात् जिन ग्रहों की कक्षा बड़ी है (जैसे शनि, बृहस्पति) उन को अपनी कक्षा में सूर्य की परिक्रमा करने में अन्यान्य छोटी कक्षा वाले ग्रहों की अपेक्षा अधिक समय लगता है। और जिन की छोटी कक्षा (जैसे–चन्द्रमा, बुध, शुक्र) है उन की गति अधिक होती है॥

विकलानां कला षष्ट्या तत्षष्ट्या भाग उच्यते । तत्त्रिंशता भवेद्राशिर्भगणो द्वादशैव ते॥२८॥ युगे सूर्यज्ञशुक्राणां खचतुष्करदार्णवाः । कुजार्किगुरुशीघ्राणां भगणाः पूर्वयायिनाम् ॥ २९ ॥ इन्दोरसाग्नित्रित्रीषु सप्तभूधरमार्गणाः । दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षि लोचनानि कुजस्य तु ॥३०॥ बुधशीघ्रस्य शून्यर्तुखाद्रित्र्यङ्कनगेन्दवः । बृहस्पतेः खदस्राक्षि वेदषड्वह्नयस्तथा ॥ ३१ ॥

भाषानुवाद–६० विकलाओं की (Second) १ कला (Minute) और ६० कलाओं का १ अंश (Degree), ३० अंश की एक राशि (Signs) और १२ राशियों का १ भगण (Revolution) होता है॥ २८॥ एक चतुर्युगी में सूर्य, बुध और शुक्र पूर्व की ओर चलने में ४३२०००० भगण पूरा करते हैं। मङ्गल,

शनि और बृहस्पति के शीघ्रोच्च के भगण भी ४३२०००० ही होते हैं ॥ २९ ॥ एक महायुग में चन्द्रमा के ५७७५३३३६ और मङ्गल के २२९६८३२ भगण होते हैं ॥३०॥ एक महायुग में बुधके शीघ्रोच्च के१७९३७०६० और बृहस्पति के ३६४२२० भगण होते हैं ॥ ३१ ॥

विवरण–२९ श्लोक–सूर्य और चन्द्रमा की कक्षा का वह स्थान जो पृथिवी से अत्यन्त दूर हो,उन का मन्दोच्च कहलाता है (सूर्य और चन्द्रमा का), मङ्गलादि ५ ग्रहों (मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर) का वह स्थान जो सूर्य से अत्यन्त दूर हो उन का मन्दोच्च कहलाता है और वह स्थान जो पृथिवी से अत्यन्त दूर हो उन का शीघ्रोच्च कहलाता है ॥

सितशीघ्रस्यषट्सप्तत्रियमाश्विखभूधराः । शनेर्भुजङ्गषट्पञ्चरसवेदनिशाकराः ॥ ३२ ॥ चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवायुगे, । वामं पातस्य वस्वग्नियमाश्विशिखिदस्रकाः ॥३३॥ भानामष्टाक्षिवस्वद्रित्रिद्विद्व्यष्टशरेन्दवः॥भोदया भगणैः स्वैः स्वैरूनाः स्वस्वोदयायुगे॥३४॥भवन्ति शशिनो मासाः सूर्येन्दुभगणान्तरम् । रविमासोनितास्ते तु शेषाःस्युरधिमासकाः॥३५॥

भाषानुवाद–एक महायुग में शुक्र के शीघ्रोच्च के ७०२२३७६ और शनि के १४६५६८ भगण होते हैं ॥ ३२ ॥ एक महायुग में चन्द्रमा के मन्दोच्च के ४८८२०३ और चन्द्रमा के वामपात वा राहु (Seending nod or north nod) के २३२२३८ भगण होते हैं ॥ ३३ ॥ एक महायुग में नक्षत्रों के १५८२२३७८२८ भगण होते हैं । इस नक्षत्र भगण संख्या मे से ग्रहों के भगण घटाने पर महायुग में प्रत्येक ग्रहों की अपनी २ उदयसंख्या निकल आवेगी ॥ ३४ ॥ सूर्य के भगणों में से चन्द्रमा के भगणो को घटाने पर शेष (बाकी) अङ्क महायुग में चान्द्रमास की संख्या होगी और इस चान्द्रमास से सौरमास घटाने पर जो बचे वही महायुग में अधिमास की संख्या होगी ॥ ३५ ॥

विवरण–३२ श्लोक–मङ्गल, बृहस्पति और शनि के भगण और बुध के शीघ्रोच्च और शुक्र के शीघ्रोच्च के भगण एक युग में सूर्य के चारों ओर परिक्रमा की संख्या है ॥

विवरण-३३ श्लोक-क्रान्तिवृत्त जो सूर्य का मार्ग है, ग्रहों की कक्षाये उस के सम क्षेत्र में नहीं हैं, परन्तु उस के साथ कोण बनाती हैं और कभी उस को काट कर ऊपर चढती हैं, कभी उस को काट कर नीचे आती हैं। जिस स्थान में क्रांतिवृत्त को ग्रहों की कक्षा काटकर ऊपर चढ़ती हैं उस को "पात" (राहु या केतु) कहते हैं। यह पात स्थान बदलता रहता है और इस की वक्र गति है अर्थात् पूर्व से पश्चिम की ओर है॥

विव०-३४ श्लोक-किसी नक्षत्र का निरक्ष देश में जहां दिन रात बराबर होता है, एक स्थान पर उदय होकर फिर उसी स्थान पर उदय होना नक्षत्रभगण कहलाता है और जो समय इस में लगता है उस का नाम नाक्षत्र दिवस है, इस लिये युग में १५८२२३७८२८ नाक्षत्रिक दिन हुवे। इस में से जिस ग्रह के भगण संख्या को घटादें, युग में उस ग्रह की उदयसंख्या (दिन) होगी। जैसे सूर्य के भगण ४३२०००० को नक्ष संख्या से घटाने पर शेष १५७७९१७८२८ संख्या होगी। यही एक युग में सूर्योदय की संख्या है (सावन दिन हुवे), इसी प्रकार अन्यान्य ग्रहों का भी जानना॥

वि०३७ श्लोक-एक महायुग में चन्द्रमा के भगण ५७७५३३३६। सूर्य के भगण ४३२०००० घटाने से शेष अन्तर ५३४३३३३६ युग में चान्द्रमास हैं। सूर्य के भगण को १२ (मास) से गुणा करने पर ५१८४०००० युग में सूर्य मास घटाने पर शेष अन्तर १५९३३३६ युग में अधिमास॥

सावनाहानि चान्द्रेभ्यो द्युभ्यः प्रोभ्क्य तिथिक्षयाः। उदयादुदयं भानोर्भूमिसावनवासराः ॥ ३६ ॥ वसुद्वयष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे। चान्द्राः खाष्टखखव्योमखाग्निखर्तुनिशाकराः ॥ ३७ ॥ षड्वह्नित्रिहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासकाः। तिथिक्षयायमार्थाश्विद्व्यष्टव्योमशराश्विनः ॥ ३८ ॥ खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्चरविमासकाः। भवन्ति भोदया भानुभगणैरूनिताः क्वहाः॥ ३९ ॥ अधिमासो नरात्र्यर्क्षचान्द्रसावनवासराः। एते सहस्रगणिताः कल्पे स्युर्भगणादयः ॥ ४० ॥

भाषानुवाद–एक महायुग में चान्द्र दिनों (तिथि) की संख्या से सावन दिन घटानेपर शेष संख्या महायुग में "तिथिक्षय" संख्या होगी। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के काल को "सावनदिन" कहते हैं ॥३६॥ एक महायुग में १५७७९१७८२८ सावन दिन और १६०३०००००८० चान्द्र दिन (तिथि) होते हैं ॥३७॥ एक महायुग में १५९३३३६ अधिमास और २५०८२२५२ तिथिक्षय होते हैं ॥ ३८ ॥ एक महायुग में ५१८४०००० सौर मास होते हैं और नाक्षत्रदिन की संख्या में से सूर्य के भगणों को घटाने से जो शेष संख्या रहेगी वही युग में पार्थिव या सावन दिन की संख्या होगी ॥ ३९ ॥ पूर्वोक्त भगण, अधिमास, तिथिक्षय, नाक्षत्रदिन, चान्द्रदिन और सावन दिन इन प्रत्येक को भिन्न भिन्न १००० से गुणा करने से कल्प में इन प्रत्येक की संख्या होगी ॥ ४० ॥

विवरण ३७ श्लोक–युग में सावन दिनों की संख्या जानकर ग्रहों की दैनिक गति (भुक्ति) जान सकते हैं और पृथिवी या सूर्य की चारों ओर ग्रहादिकोंका भ्रमण काल (भगण) भी जान सकते हैं। जिस ग्रह की दैनिक गति जाननी हो तो उस ग्रह के युग के भगणों को युग के सावन दिन संख्या से भाग देने पर भागफल दैनिक गति होगी। इस के लिये त्रैराशिक की क्रिया करे। १ युग के सावनदिन : युग के भगण :: तो दैनिक भगण या दैनिक भुक्ति क्या होगी। जिस कारण दैनिकगति कलाओं में निकाली जाती है। इस लिये प्रत्येकग्रहों के युगभगण संख्याओं को भिन्न २ बारह से गुणा कर गुणन फल राशि संख्या होगी। उस को ३० से गुणा करने पर अंश होंगे, (अंश संख्या होगी) एवं अंश को ६० से गुणा करने पर कला होगी। उदाहरण के लिये प्रथम सूर्य की मध्यदैनिकगति निकालकर दिखलाता हूं:–

$$\frac{\text{१ युग में सूर्य के भगण ४३२०००० × १२ × ३० × ६०}}{\text{१ युग मे सावनदिन संख्या १५७७९१७८२८}} =$$ ऊपर वाली संख्या को गुणा करने पर कला संख्या होगी। उसमें नीचे वाली संख्या से भाग देने पर कल कला ५९। विकला ८। अनुकला १०। यही सूर्य की मध्यदैनिकगति हुई (यहा कला के अन्तर विकला और अनुकला, ६० से गुणा करने पर होगी। कला में भाग न होसका तो विकला ६० से गुणा कर बनावे, एवं विकला करे। शेषाङ्क को ६० से गुणा करनेपर अनुकला होगी) अब उपरोक्त नियम से प्रत्येक मङ्गलादि ग्रहों की भी दैनिक भुक्ति निकल आवेगी। इस लिये प्रत्येक की क्रिया भिन्न २ नहीं लिखी गई ॥

ग्रहगण	अंश	कला	अनुकला	प्रत्यनुकला
रवि	०	५९	८	१०
चन्द्रमा	१३	१०	५५	०
बुध	०	५९	८	१०
शुक्र	०	५९	८	१०
मङ्गल	०	३१	२६	२८
बृहस्पति	०	४	५९	९
बुधशीघ्रोच्च	४	५	३२	२१
शुक्रशीघ्रोच्च	१	३६	७	४४
मङ्गलशीघ्रोच्च	०	५९	८	१०
बृहस्पतिशीघ्रोच्च	०	५९	८	१०
शनिशीघ्रोच्च	०	५९	८	१०
चन्द्रमा का मन्दोच्च	०	६	४१	०

ग्रहो के मन्दोचो की गति अत्यन्त थोड़ी है अर्थात् प्रति कला के $\frac{1}{3}$. भाग से भी न्यून है। इस लिये गणित में शून्य ही लिया जाता है॥

ग्रहों की दैनिक गति कही गई। अब ग्रहो के भगण काल लाने का नियम लिखा जाता है। जिन ग्रहो का भगण काल(१२ राशियो में१ बार भ्रमण का काल) जानना है, त्रैराशिक द्वारा इस प्रकार लाना चाहिये कि एक युग में भगण में तो इतने (युग) सावन दिन होते हैं तो १ भगण में क्या होगा। इस लिये युग के सावन दिनो मे युग के भगण संख्या से भाग देवे, भागफल, इष्ट ग्रह का भगण काल होगा। उदाहरण के लिये, सूर्य का भगण काल निकाला जाता है। जैसे युगीय सावन दिन १५७७९१७८२८ में युगीय सौरभगण ४३२०००० का भाग दिया तो दिन घड़ी पल वि० हुआ। यही सूर्य का सावन
३६५ ३१ ३१ ३१
दिनो में १ भगण काल हुआ। इसी प्रकार पृथिवी के चारो ओर चन्द्रमा के परिक्रमा करने का काल २७ दिन १९ घड़ी १८ पल है। इतने समय में चन्द्रमा राशिचक्र के एक स्थान से चल कर पुनः उसी स्थान परआजाता है। चान्द्र मास उस [illegible] पूरा होता है जब चन्द्रमा पुनः सूर्य की राशि में आजावे। चान्द्रमास दिन निकालने के लिये युगीय चान्द्र मास से युगीय सावन दिन में भाग दो तो दिन २९ घड़ी ३१ पल ५० यही अमान्त चान्द्र मास होगा।

अब प्रत्येक ग्रहो के भगण काल जो पूर्वोक्त क्रिया से स्थिर हुवे हैं, लिखे जाते हैं। मङ्गल का ६८६ दिन ५९ घड़ी, वृहस्पति का ४३३२ दिन१८घड़ी, शनि का१०७६५ दिन ४६ घड़ी, बुध का ८८ दिन ५८ घड़ी, शुक्र का २२४ दिन ४२ घड़ी। बुध आदि के शीघ्रोच्चो के भगण के लिये देखो श्लोक ३२ का विवरण ॥

प्राग्गतेः सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नयः । कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवन्हयः॥४१॥ खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेषवः । गोऽग्नयः शनिमन्दस्य पातानामथ वामतः॥४२॥ मनुदस्त्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्टसागराः । कृताद्रिचन्द्राजैवस्य त्रिखाङ्काश्च भृगोस्तथा ॥४३॥ शनिपातस्य भगणाः कल्पे यमरसर्तवः । भगणाः पूर्वमेवात्र प्रोक्ताश्चन्द्रोच्चपातयोः ॥ ४४ ॥ षण्मनूनां तु सम्पीड्य कालं तत्सन्धिभिःसह । कल्पादिसन्धिना सार्द्धं वैवस्वतमनोस्तथा ॥ ४५ ॥ युगानां त्रिघनं यातं तथा कृतयुगं त्विदम् । प्रोज्झ्य सृष्टेस्ततःकालं पूर्वोक्तं दिव्यसंख्यया ॥ ४६ ॥ सूर्याब्दसंख्यया ज्ञेया कृतस्यान्ते गताअमी। खचतुष्कयमाद्र्यग्निशररन्ध्रनिशाकराः ॥४७॥

भाषानुवाद–एक कल्प मे सूर्य के मन्दोच्च के (जो पूर्व की ओर चलता है) ३८७ भगण होते हैं। मङ्गल के मन्दोच्च के २०४ और बुध के मन्दोच्च के ३६८ भगण होते हैं ॥ ४१ ॥ एक कल्प में वृहस्पति के मन्दोच्च के ९००, शुक्र के मन्दोच्च के५३५ और शनि के मन्दोच्च के ३९ भगण होते हैं। अब पातो के भगण की सख्या कहते हैं, जो पूर्व से पश्चिम की ओर चलते हैं ॥ ४२ ॥ एक कल्प में मङ्गल के पात के २१४, बुध के पात के ४८८, वृहस्पति के पात के १७४, शुक्र के पात के ९०३ भगण होते हैं ॥ ४३ ॥ और शनि के पात के ६६२ भगण होते हैं, चान्द्रमा के पात और मन्दोच्च के भगण पहिले कहे गये हैं ॥ ४४ ॥ छ मन्वन्तरों के काल को ६ सन्धियो सहित और काल की [illegible] की सन्धि सहित काल को एक स्थान में जोड़ कर रक्खो और सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर

के २७ बीते हुवे चतुर्युगियों को एवं २८ वीं चतुर्युगी के गत सतयुग के काल को एकत्र कर पूर्वोक्त छः मन्वन्तरों के काल में जोड़ने से जो संख्या लब्ध हो उस में से सृष्टि रचना का काल जो दिव्य वर्षों में (२४ वां श्लोकोक्त ४७४००) दिया है। सौर वर्ष बनाकर घटाने से २८वीं चतुर्युगी के अन्त तक१९५३७२०००० सौर वर्ष सृष्टि के गत वर्ष होंगे ॥ ४५ । ४६ । ४७ ॥

विवरण ४७ श्लोक–अब अहर्गण बनाने के नियम लिखे जाते हैं। वर्त्तमान सृष्टि की आदि से इष्टकाल (जिस संवत् मास दिन तक चाहे) तक साबन दिनों की संख्या का नाम है। अब उदाहरण के लिये श्रावण कृष्णा २ संवत् १९४६ तक का लाया जावेगा। गत सौर वर्ष सृष्टि की आदि से संवत् १९४८ के अन्त तक १९५५८८५००२ में १२ वर्ष घटाओ तो शेष संवत् १९४५ के अन्त तक १९५५८८४९९० होगा ॥

अत ऊर्ध्वममी युक्ता गतकालाब्दसंख्यया । मासीकृता युता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतैः ॥ ४८ ॥ पृथक्स्थास्तेऽधिमासघ्नाः सूर्यमासविभाजिताः । लब्धाधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विताः॥४९॥ द्विष्ठास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिताः । लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्द्धरात्रिकः ॥ ५० ॥ सावनो द्युगणः सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः । सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ॥५१॥ मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् । सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥ ५२ ॥

भाषानुवाद–उक्त कृतयुग के अन्त तक के वर्षों की संख्या में इष्ट (जिस संवत्, शाके या समय तक चाहो) काल के गतवर्ष को जोड़ो। पुनः जोड़ने से जो संख्या हो उस को १२ से गुणा करने से मास की संख्या होगी। पुनः इस मास संख्या में चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की परिवा से जितने मास बीते हों जोड़ो तो इष्ट कालतक की मास संख्या होगी ॥ ४८ ॥ इन को भिन्न २ स्थान पर रक्खो। एक स्थान के अङ्कों को युग के अधिमासों से गुणा करो और युग के सौरमास की संख्या से भाग दो। इस से अधिमास की संख्या निकल आ

येगी। इस अधिमाससंख्या को दूसरे स्थान में रक्खे हुए अङ्कों के साथ जोड़ कर उस को ३० से गुणा कर दिन बनावे। एव इष्ट काल से जितने चान्द्र दिन बीते हों उस को जोड़े ॥ ४९ ॥ उक्त जोड़े हुए अङ्कों को भिन्न २ दो स्थानों में रक्खे। उन में से एक को एक महायुग के तिथिक्षयाङ्क द्वारा गुणा करे और पूर्वोक्त एक महायुग के चान्द्रदिनो पर भाग करे और भागावशिष्ट छोड़ कर भागफल गतक्षयतिथिसख्या होगी। इस तिथिक्षय सख्या को दूसरे स्थान में रक्खे हुवे अङ्को में से घटाने पर जो सख्या लब्ध होगी वही लङ्का में आधीरात तक जितने सावन दिन बीते हैं, सावनदिन की सख्या होगी ॥ ५० ॥ उक्त आई हुई सावनदिनसख्या से दिन, मास और वर्ष का अधिपति जाना जावेगा। वार आदित्य वार से गिन कर निकल आते हैं। सह अहर्गण को ७ से भाग करके शेषाङ्क को आदित्यवार से गिने तो उस तिथि का वार निकल आवेगा अर्थात् ७ भाग करने पर १ बचे तो रविवार। २ बचें तो सोमवार, ३ बचें तो मङ्गलवार, ४ बचें तो बुधवार ५ बचें तो बृहस्पतिवार, ६ बचें तो शुक्रवार और यदि कुछ न बचे तो शनिवार जानना ॥५१॥ उक्त अहर्गण को दो स्थानो में अलग २ रखकर एक को ३० से और दूसरे को ३६० से भाग दे। जो फल हो उस को क्रम से २ और ३ से गुणन करो और दोनों के गुणनफल में १ जोड़दो, पुन. ७ से भाग दो तो भागफल क्रम से मास और वर्ष के अधिपति होवे ॥ ५२ ॥

विवरण–अब उक्त सख्याङ्क सौर वर्ष को १२ से गुणा कर मास बनाओ एव गुणनफल में गतमास चैत्र शुक्ल की आदि से आषाढ़ शुक्ल की आदि तक ३ मास हुवे। इन को जोड़ो तो इष्टकाल तक मास संख्या होगी। १९५५८८४८९०×१२+३=२३४७०६१८६८३ मास हुवे ॥४८॥ उक्त संख्या आषाढ़ शुक्ल से आगे आने वाली संक्रांति तक सौर मासों की सख्या है। इन को त्रैराशिक द्वारा चान्द्रमास बनावे। अर्थात इस सख्या को युग के अधिमास से गुणाकर गुणनफल में युगीय सौर मास सख्या से भाग दे। भागफल गत अधिमास संख्या होगी। जैसे–सौरमास २३४७०६१८६८३×१५९३३३६ (युगीय अधिमास)= ३७३९६५८१६८९८९६४८८÷५१८४०००० (युगीय सौर मास)=७२१३८४३१४ गत अधि मास हुए और भाग देने से शेषाङ्क $\frac{२८७३१९६८८}{५१८४००००}$ हुआ। उक्त अधिमास को शेषाङ्को के सहित गत सौर मासों में जोड़ने से योगफल आषाढ शुक्ल के आगे

आने वाली सङ्क्रान्ति तक चान्द्रमास की सङ्ख्या होगी और यदि उक्त शेषाङ्क को छोड़दें तो आषाढ़ शुक्ल के अन्त तक गत चान्द्रमास की सङ्ख्या होगी ॥

आषाढ़ शुक्ला के अन्त तक गत सौरमास =२३४१०८१९९८८३+७२१३८४७१४ (गत अधिमास)=२४१९२००४५९७ (गत चान्द्रमास) ×३०=७२५७६०१३७९१० (दिनहुवे) +१६ (गतदिन आषाढ़ शुक्ल के अन्त से श्रावण कृष्णा २ के आदि तक)= ७२५७६०१३७९२६ (सृष्टि की आदि से इष्टकाल तक गत चान्द्रदिन वा तिथि) अब इन चान्द्रदिन से सावनदिन बनाने के लिये त्रैराशिक की क्रिया करें अर्थात् गत चान्द्रदिन को युगीय तिथिक्षय से गुणा कर गुणन फल में युगीय चान्द्रदिन का भाग दे, भाग फल सङ्ख्या गत तिथिक्षय सङ्ख्या होगी। गत चान्द्रदिन ७२५७६०१३७९२६×२५०८२२५२ (युगीय तिथिक्षय)=१८२०३६९८६७१०३९ ७११८०४—१६०३०००००८० (युगीय चान्द्रदिन)=११३५८०१८५६६ यही गत तिथिक्षय सङ्ख्या हुई और शेष अङ्क जो भाग देने से रहगया $\frac{१२९०२८६३२४}{१६०३००००८०}$। यह तिथिक्षय शेष अङ्कसहित गत चान्द्रदिनों से निकालदे तो गत तिथि के अन्त तक सायनदिनों की सङ्ख्या होगी, परन्तु अहगण इष्टतिथि की अर्द्ध रात्रि पर्यन्त चाहिये। इस लिये शेष अङ्क छोड़देना चाहिये। यह शेष गत तिथि के अन्त से वर्त्तमान तिथि के अर्द्ध रात्रि तक का काल है। इस कारण श्रावण कृष्णा २ सवत् १९४६ को लङ्का की आधीरात तक निम्नलिखित अहर्गण हुये। गत चान्द्रदिन ७२५७६०१३७९२६ गततिथिक्षय ११३५८०१८५६६ और गत सायन दिन ७१४४०५ १९३६० ॥ ४९ ॥ ५० ॥ उक्त अहर्गण में ७ का भाग देने से शेष १ मिला, इस लिये श्रावण कृष्णा २ को रविवार था ॥५१॥ पुन उक्त अहर्गण में ३० का भाग दिया तो २३८१३४७०८४५ (और शेष अङ्क को छोड़दिया)×२=४७६२६९४-१६९०+१=४७८२६९४१६९१—७ से भाग दिया तो शेष अङ्क ६ मिला सो श्रावण कृ० २ को मास का अधिपति शुक्र था। पुन वर्षाधिपति जानने के लिये ७१४४०५१९- ३६०—३६०=१९८४५५८०७ (शेष अङ्क को छोड़दिया)×३=५९५३३६७६२१+१=५९५३-३६७६६२—७ तो शेष अङ्क ४ रहा इस लिये सवत् १९४६ का वर्षाधिपति बुध था ॥५२॥

यथास्वभगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरैः। विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥ ५३ ॥ एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः। विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥ ५४ ॥ द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा-

वर्त्तमानकैः । राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्या स्युर्विज-
यादयः ॥५५॥ विस्तरेणैतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम् ।
मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात् ॥५६॥ अस्मि-
न्कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः । विना तु पातमन्दो-
च्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ॥ ५७ ॥

भाषानुवाद–उक्त अहर्गण को ग्रहों के एक कल्प के भगणों की संख्या से गुणा करो और कल्प के सावनदिन संख्या से भाग दो तो ग्रहों का भगणादि मध्य अर्थात् राशि, अंश, कला आदि निकल आवेंगे । इस प्रकार ग्रहों की मध्यगति से स्थान ज्ञात होजावेगा ॥ ५३ ॥ इसी प्रकार शीघ्रोच्च मन्दोच्चों के मध्यस्थान जिन के भगण पहिले कहे जा चुके हैं और पातों के मध्यस्थान जाने जासकते हैं, परन्तु पातों के स्थान १२ राशि में से घटाकर गणित करे क्योंकि इन की राशि क्रम से विलोम अर्थात् उलटी होती है ॥ ५४ ॥ बृहस्पति के गत भगणों को १२ से गुणा कर गुणनफल में गत राशियों का योग कर योगाङ्क को ६० का भाग देने पर भागफल विजयादि सवत्सर होगा ॥५५॥ ऊपर अर्थात् ४५ श्लोक से ५५ तक ग्रहों के मध्यानयन प्रक्रिया विस्तारपूर्वक कही गयी । व्यवहार में त्रेतायुग के आरम्भ से ग्रहों का मध्य स्थान निश्चय करना चाहिये ॥ ५६ ॥ जिस कारण इस सत्ययुग के अन्त में पात और मन्दोच्च को छोड़कर सब ग्रहों के मध्यस्थान मेष राशि के आरम्भ में थे ॥ ५७ ॥

विवरण–कल्प के आरम्भ में सब ग्रहों का एक ही स्थान था, सब ग्रह रेवती नक्षत्र के योगतारा से चले, इस लिये इष्ट समय पर उन का मध्यम स्थान निकालने के लिये त्रैराशिक की क्रिया करनी चाहिये अर्थात् उक्त अहर्गण को कल्प के भगणों से गुणा कर गुणनफल में कल्प के सावनदिनों का भाग देवे तो ग्रहों का मध्यस्थान निकलेगा । जैसे-७१४४०४११९३२० (अहर्गण) ×४३२००००००००=३०८६२२५३८५६३५२०००००००००÷१५७७९१७८२८००० (कल्प के सायन दिन)=१९५५८९७८४९३० भगण शेष अङ्क ३९६५९८२८००००००×१२=४७५९१७९३६००००० कल्प के सावनदिन से भाग दिया तो २ राशि हुई और शेष अङ्क २५४८२५८७-६०००×३०=७६२७७६२८००००० अंश हुये, इस में उक्त कल्प के सावनदिन का भाग दिया तो फल अंश शून्य हुआ । और जो उक्त अंश को ६० से गुणा

किया तो ४५७६६५७६८०००७० कला संख्या हुई । इस में उक्त कल्प के सावन दिन का भाग दिया तो २९ कला मिलीं । शेष अङ्क ६९५९७८८०००×६०=४१७५-८७२८००७० इस में उक्त सावनदिन का भाग दिया तो फल शून्य विकला हुई । इस लिये श्रावण कृ० २ संवत् १९४६ को सूर्य का मध्यस्थान १९५५८८४९९० भगण, ३ राशि, ० अंश, २९ कला, शून्य विकला । इसी प्रकार चन्द्रमा के भगण से उक्त अहर्गण को गुणन शेष क्रिया पूर्ववत् किया तो चन्द्रमा का मध्यस्थान भगण २१६४७८८९५८७ । रा० ९ । अं० २१ । क० ५२ । वि० ३७ ॥ शेष ग्रहों के निम्नलिखित भगणादि हैं–

	भगण	राशि	अंश	कला	विकला
मङ्गल	१०३९८८३३४१ ।	२ ।	३ ।	२४ ।	५२ ।
बुध	१९५५८७८४९९७ ।	२ ।	१ ।	२९ ।	३ ।
शुक्र	१९५५८७८४९९० ।	२ ।	३ ।	२९ ।	० ।
बृहस्पति	१६४९०१०२५ ।	८ ।	२२ ।	१६ ।	४३ ।
शनैश्चर	६६३५८८३१ ।	३ ।	२० ।	५५ ।	४७ ।

॥ ५२ ॥ ५३ ॥

बुध के शीघ्रोच्च भगण को अहर्गण में गुणा करने और कल्प के सावन-दिनोंपर भाग करने से ८१२१०२४६३५ भगण।० राशि। ३ अंश। ८ कला और ४५ विकला निकलेंगी । इसी प्रकार शुक्र के शीघ्रोच्च का स्थान ३१७९३८८८४५ भगण, १० राशि, २५ अंश, ६ कला और १९ विकला निकलते हैं ॥

मङ्गल, बृहस्पति और शनि के शीघ्रोच्च का वही स्थान होगा जो सूर्य मध्य का है क्योंकि उन के भगण तुल्य हैं ॥ अब मन्दोच्चों को लिखते हैं–

प्रथम चन्द्र का मन्दोच्च

अहर्गण को ४८८२०३००० में गुणा और १५७७९१७८२८०७० पर भाग करने से २२१०३५४७२ भगण २ राशि ११ अंश १८ कला और २२ विकला निकलेंगी, यही चन्द्र मन्दोच्च का मध्यस्थान हुवा ॥

अब चन्द्रपात लिखते हैं:–अहर्गण को २३२, २३८,००० में गुणा करके १, ५७७,९१७, ८२८,००० पर भाग करो तो १०५, १४६, ०२२ भगण ९ राशि ७ अंश ९ कला और ५७ विकला निकलेंगी। इन राशि आदि को। १२ राशि में शोधने से २ । २२ । ५० । ३ चन्द्रपात का मध्यस्थान हुआ ॥

सूर्य का मन्दोच्च निकालने के लिये अहर्गण को ३८७ में गुणाकरके १,५७७,

९१७,८२८,००० पर भाग करो तो १७५ भगण २ राशि १७ अंश १७ कला२७विकला निकलेंगी । मङ्गल के मन्दोच्च निकालने के लिये अहर्गण को २०४ में गुणा औरर, ५७७, ९१७, ८२८, ००० पर भाग करो । लब्ध भगणादि ९२ । ४ । १० । २ । ४१ । इसी तरह बृहस्पति के मन्दोच्च के भगणादि ४०७ । ५।२१ २२। २७ बुध के मन्दोच्च के १६६ । ७ । १० । २८ । २३ शुक्र के मन्दोच्च के २४२ । २ । १९ । ५२ । २१ और शनि के मन्दोच्च के१७।७।२६।३७। ३४ भगण,राशि, १०अंश,कला और विकला निकलेंगे । मङ्गल का पात निकालने के लिये अहर्गण को२१४ में गुणा करके १, ५७७, ९१७, ८२२८, ००० पर भाग करो तो ९६। १० । १९.५६.५६ यह लब्ध हुवे ॥

राशि आदि को १२ राशि में से शोधो तो १ राशि १०अंश ३ कला और ४ विकला । यह मङ्गल के पात का स्थान हुआ । बुध पात निकालने के लिये अहर्गण को ४८८ में गुणाकरके १, ५७७, ९१७, ८२८, ००० पर भाग करो तो ८८०। ११ । ९ । १९ । २२ लब्ध भगणादि हुवे । १२राशि में शोधने से० । २०।४० । ३८ बुध पात का स्थान हुआ। बृहस्पति के पातके७८ भगण ९ राशि १० अंश १९ कला ५६ विकला निकलेगी।राशि आदि को चक्र में शोधने से २ । १९ । ४० ।४ यह बृहस्पति के पात का स्थान हुआ।शुक्र के पातके ५७८।१०।०।२०।४५ भगणादि निकलेंगे । चक्र में शोधने से १ । २९ । ३९ ।१६ राशयादि शुक्र पात का स्थान हुआ। शनि पात के २९९ । ८ । १९ । ३९ । १९ भगणादि हुए । चक्र में शोधने से ३ । १० । ४० । ४१ । यह शनि के पात का स्थान हुआ। चन्द्र का पात पहिले निकाल चुके हैं,सूर्य्य का पात नहीं होता । अब ग्रहों का स्थान एक जगह लिखते हैं:-

सूर्य्य का मध्य स्थान	३ । ० । २९ । ०	बुध मन्दोच्च	,, ७ । १० । २८ । २३
सूर्य्य मन्दोच्च	,, २ । १७ । १७ । २७	बुध शीघ्रोच्च	,, ० । ३ । ८ । ४५
चन्द्र मध्य	,, ९ । २१ । ५२ । ३७	बुध पात	,, ० । २० । ४० । ३८
चन्द्रमन्दोच्च	,, २ । ११ । १८ । २२	बृहस्पति मध्य	,, ८ । २२ । ५६ । ४३
चन्द्र पात	,, २ । २२ । ५० । ३	बृहस्पति मन्दोच्च	,, ५ । २१ । २२ । २७
मङ्गल मध्य	,, २ । ७ । २४ । ५२	बृहस्पति शीघ्रोच्च	,, ३ । ० । २९ । ०
मङ्गल मन्दोच्च	,, ४ । १० । २ । ४१	बृहस्पति पात	,, २ । १९ । ४० । ४
मङ्गल शीघ्रोच्च	,, ३ । ० । २९ । ०	शुक्र मध्य	,, ३ । ० । २९ । ०
मङ्गल पात	,, १ । १० । ३ । ४	शुक्र मन्दोच्च	,, २ । १९ । ५२ । २१
बुधकामध्यस्थान	,, ३ । ० । २९ । ०	शुक्र शीघ्रोच्च	,, १० । २५ । ६ । १९

शुक्रपात	„ १ । २९ । ३९ । १६		मङ्गल शीघ्रोच्च	„	५९ । ८
शनि मध्य	„ ३ । २० । ५५ । ४७		बुध	„	५९ । ८
शनि मन्दोच्च	„ ५ । २६ । ३१ । ३४		बुध मन्दोच्च	„	अत्यन्त अल्प
शनि शीघ्रोच्च	„ ३ । ० । २९ । ८		बुध शीघ्रोच्च	„	२४५ । ३२
शनि पात	„ ३ । १० । २० । ४१		बृहस्पति	„	४ । ५९
सब ग्रहों की भुक्ति या मध्यदैनिक			बृहस्पति मन्दोच्च	„	अत्यन्तअल्प
गति भी नीचे लिखते हैं:-			बृहस्पति शीघ्रोच्च	„	५९ । ८
सूर्य्य की गति फलादि	५९ । ८		शुक्र	„	५९ । ८
सूर्य्य मन्दोच्च	„ अत्यन्त अल्प		शुक्र मन्दोच्च	„	अत्यन्तअल्प
चन्द्रमा की गति	„ ७९० । ३५		शुक्र शीघ्रोच्च	„	९६ । ८
चन्द्रमा मन्दोच्च	„ ६। ४१		शनि	„	२ । ०
चन्द्र पात	„ ३ । ११		शनिमन्दोच्च	„	अत्यन्तअल्प
मङ्गल	„ ३१ । २६		शनि शीघ्रोच्च	„	५९ । ८
मङ्गल मन्दोच्च	„ अत्यन्त अल्प				

मङ्गलादि ग्रहों के पातों की गति अत्यन्त अल्पहै—अतः नहीं लिखी। गणित में शून्यही लेते हैं॥

५५ विवरण—बृहस्पति के एक राशि से दूसरी राशि में जाने का काल एक प्रकार का संवत्सर माना जाता है। ऐसे ६० संवत्सर हैं जिन के नाम विजय से आरम्भ होते हैं। कल्प के आदि में विजय संवत्सर था तो इस समय कौन संवत्सर होगा। यह जानने के लिये जितनी राशि कल्प की आदि से बृहस्पति ने भोगी हैं उन को ६० पर भाग करो—जो शेष रहे तो उस को विजय से गिन कर संवत्सर का नाम निकाल लो॥

उदाहरण—श्रावण वदि १ सं० १९४६ तक बृहस्पति के १६४, ९०१, ०२५ भगण और ८ राशि होती हैं। इस की १,९७८,८१२,३०८ राशि हुईं ६० पर भाग करने से शेष ८ रहे—इस लिये विजय से ८ वां संवत्सर अर्थात् शर्वर संवत्सर हुआ॥

५६ विवरण—त्रेतायुग की आदि से सं० १९४६ श्रावण वदि २ की अर्ध-रात्रि का अहर्गण ३९०, ७८१, ६४७ निकलेगा, इस से सूर्य्यादि ग्रहों के मध्य निकालने से वही निकलेंगे जो ऊपर लिख आए हैं। वार निकालने के लिये बुधवार से गिनना चाहिये क्योंकि छत के अन्त में मङ्गलवार था॥

१ बार्हस्पत्य संवत्सर हमारे १२ सौर वर्ष के समान होता है। अर्थात् बृहस्पति ग्रह को सूर्य की एक परिक्रमा करने में हमारे १२ वर्ष की बराबर समय लगता है और वैदिक समय में ५ वर्ष की १ युग संज्ञा थी और ५ वर्ष का एक ही बार "पञ्चाङ्ग" बनता था। इस कारण बृहस्पति का १ युग अर्थात् ५ वर्ष हमारे ६० वर्ष के तुल्य होता है। इस कारण पञ्चाङ्ग बनाने के साथ ६० वर्ष तक की गणना कर लिखते थे और ६० वर्षों का कल्पित नाम रखते थे। यह नाम रखना अपनी इच्छा पर है, इसी कारण भिन्न २ ग्रन्थों में भिन्न २ प्रकार से ६० वर्षों के नाम पाये जाते हैं। वस्तुतः इस से कोई विशेष प्रयोजन नहीं। परन्तु फलित वालो ने इन ६० वर्षों से भी भिन्न भिन्न प्रकार के शुभाशुभ फल की कल्पना करली है॥

बृहस्पति के ६० वर्षों के नाम ये हैं–१ विजय २ जय ३ मन्मथ ४ दुर्मुख ५ हेमलम्ब ६ विलम्ब ७ विकारी ८ शर्वरी ९ प्लव १० शुभाकृति ११ शोभन १२ क्रोधी १३ विश्वावसु १४ पराभव १५ प्लवङ्ग १६ कीलिक १७ सौम्य १८ साधारण १९ विरोधाकृति २० परिधावी २१ प्रमादी २२ आनन्द २३ राक्षस २४ अनल २५ पिङ्गल २६ कालमुक्त २७ सिद्धार्थी २८ रौद्र २९ दुर्मति ३० दुन्दुभि ३१ रुधिरोद्गारी ३२ रक्ताक्ष ३३ क्रोधन ३४ क्षय ३५ पराभव ३६ विभव ३७ शुक्ल ३८ प्रमोद ३९ प्रजापति ४० अङ्गिरा ४१ श्रीमुख ४२ भव ४३ युवन ४४ धाता ४५ ईश्वर ४६ बहुधान्य ४७ प्रमाथी ४८ विक्रम ४९ वृषा ५० चित्रभानु ५१ स्वर्भानु ५२ दारुण ५३ पार्थिव ५४ व्यय ५५ सर्वजित् ५६ सर्वधारी ५७ विरोधी ५८ विकृत ५९ खर ६० नन्दन॥

मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः। निरंशत्वं गताश्चान्ये नोक्तास्ते मन्दचारिणः॥ ५८॥ योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु। तद्वर्गतोदशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ॥५९॥ लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटोभूपरिधिःस्वकः। तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥ ६० ॥ कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्। रेखाप्रतीचीसंस्थाने प्रक्षिपेत्स्युःस्वदेशजाः॥ ६१ ॥ राक्षसालयदेवौकःशैलयोर्मध्यसूत्रगाः। रोहीतकमवन्ती च यथा सन्निहितं सरः॥ ६२॥

भाषानुवाद—उस समय केवल चन्द्रमा का मन्दोच्च मकर की आदि अर्थात् ९ रा,० शून्य अंश में और चन्द्रमा का पात तुला के आरम्भ में अर्थात् ६ राशि शून्य अंश मे था । एवं अन्यान्य ग्रहों के मन्दोच्च और पात,ये सब भी अंशरहित न थे ॥ ५८ ॥ ८०० योजन को द्विगुण करने से १६००योजन पृथिवी के व्यासका परिमाण होगा । इस को १० से गुणा कर,पुन: इस का वर्ग मूल निकालने से पृथिवी की परिधि होगी॥५९॥पृथिवी की परिधि को अभीष्ट देश के लम्बज्या से गुणा करो।गुणन फल में त्रिज्या का भाग देने पर भागफल उस अभीष्ट स्थान की स्फुट परिधि होगी । देशान्तर को ग्रह की भुक्ति (गति) से गुणा कर गुणन फल में इस स्फुट परिधि द्वारा भाग दे ॥६०॥ भागफल से कलादि निकलें उस को ग्रह के मध्य स्थान से घटाओ, यदि अभीष्ट देश मध्य रेखासे पूर्व दिशा में हो।परन्तु यदि इष्ट देश मध्य रेखा से पश्चिम दिशा में हो तो भागफल कलादिको को जोड़ो तो योगफल स्वदेशीय ग्रहों के मध्यस्थान होंगे ॥ ६१ ॥ लङ्का और सुमेरु पर्वत के मध्य सूत्र पर जो रेखा कल्पित हुई है उस का नाम मध्य रेखा है । इस मध्य रेखा पर रोहीतक नगर उज्जयिनी एवं कुरुक्षेत्रादि देश अवस्थित हैं ॥ ६२ ॥

विवरण ५७। ५८ —ऊपर लिखी रीति से कृत के अन्त तक अहर्गण लेकर ग्रहों का स्थान निकालने से श्लोक ५७ और ५८ के कथन का प्रमाण निश्चय हो सकता है। कृतान्त का अहर्गण ७१३,३३७,६९३,७१३ निकलेगा । इस से सब ग्रहों के मध्य ० । ० । ० । ० निकलते हैं । चन्द्रोच्च १० । ० । ० । ० और चन्द्रपात ३ । ० । ० । ० निकलता है, अहर्गण को ७ पर भाग करने से ३ शेष रहते हैं । इस लिये कृत के अन्त में मङ्गलवार निकलता है ॥

वि० ५९—इस से निरक्ष देश पर परिधि ५०५९ योजन निकलती है ॥

वि०६०—प्रथम चित्र में मि०मेरिर वृत्त पृथिवी का गोल है, म उस का मध्य है, निरक्ष वृत्त वह बड़ा वृत्त है जहा दिन रात्रि सदैव बराबर होते हैं । निर निरक्ष वृत्त का तथा पृथिवी का व्यास है, रि कोई नगर है, जैसे रिवाड़ी, मने अर्ध व्यास है,इस को त्रिज्या भी कहते हैं, ररिधनु रिव।ड़ी का अक्ष है । रिमे रिवाड़ी की मेरुसे दूरी है, इस दूरीको लम्ब कहते हैं, परिधि रिवाड़ी की स्फुट परिधि है । परि स्फुट परिधि का व्यास है, अरि मेरि धनु की ज्या है, अब स्फुट परिधि निकालने के लिये यह त्रैराशिक करो । मर या मने(अर्द्ध व्यास)पर : तत्कभू परिधि :. अरि पर : स्फुट परिधि क्या होगी

अर्थात् लम्बज्या जरि को भूपरिधि में गुणा करके त्रिज्या पर भाग करो॥ उदाहरण-रिवाड़ी का लम्ब अर्थात् मेरु से फ़ासला ६१ अंश ५१ कला है। ज्या और त्रिज्या निकालने की रीति दूसरी अध्याय के श्लोक १५,१६ में लिखेंगे ६१ । ५१ की ज्या ३०३१ है और त्रिज्या ३४३८ होती है। ५०५९ को ३०३१ में गुणा और ३४३८ पर भाग किया तो ४४५९ स्फुट परिधि हुई। लङ्का और उज्जैन से मेरु के बीच होकर जो वृत्त कल्पित किया जावे उस को मध्य रेखा कहते हैं। जैसे ग्रीनिच अंगरेज़ों का है। उस रेखा से इष्ट स्थान की दूरी को जो उस की स्फुट परिधि पर मापी जाती है, देशान्तर कहते हैं। ग्रह की भुक्ति किसी स्थानपर उस के स्फुट परिधि के एक परिवर्तन के काल में पूरी होती है। उज्जैन वा लङ्का में जिस राशि आदि में ग्रह होगा उस के पश्चिम की ओर जितने देश हैं उन में उस का भोग कुछ अधिक होगा, क्योंकि ग्रह की गति पश्चिम से पूर्व की ओर है, पश्चिम देशों में ग्रह पहिले दृष्टि पड़ेगा और उस के मध्य रेखा तक पहुंचने तक पश्चिम देश में उस का कुछ विशेष भोग हो जायगा। इसी तरह उज्जैन वा लङ्का से पूर्व में जो देश हैं वहां ग्रह की राशि आदि न्यून होंगी॥

इस ग्रह का भोग कितना न्यून वा अधिक होगा, सो जानने के लिये यह त्रैराशिक करो। इष्ट देश की स्फुट परिधि पर : उक्त ग्रह की भुक्ति :: देशान्तर : ग्रह की विशेष गति क्या होगी॥

इस लिये भुक्ति को देशान्तर में गुणा करके स्फुट परिधि में भाग करने से ग्रह की विशेष गति निकल आवेगी जिस को मध्य रेखा पर ग्रह के स्थान में जोड़ने या घटाने से इष्ट देश में ग्रह का मध्य स्थान निकल आवेगा॥

उदाहरण-रिवाड़ी का देशान्तर ११ योजन पूर्व की ओर है इस लिये ग्रह की मध्य भुक्ति को ११ में गुणा करके ४४५९ पर भाग करने से जो गति न्यूनाधिक करनी है वह निकल आवेगी॥

यि० ६१-सूर्य्य की भुक्ति ५९ । ८ है, उस को ११ योजन में गुणा करके ४४५९ पर भाग करें, तो ९ विकला आती हैं। चूंकि रिवाड़ी मध्य रेखा से पूर्व की ओर है इस लिये सूर्य्य के स्थान से ९ विकला घटाओ, तो रिवाड़ी में सूर्य का स्थान ३ । ० । २८ । ५१ यह हुआ। चन्द्रमा की भुक्ति ७९० । ३५ है इस को ११ में गुणा और ४४५९ में भाग करने से १ । ५७ कलादि लब्ध हुई इन को चन्द्रमा के स्थान से घटाने से ९ । २१ । ५० । ४० यह रिवाड़ी में

चन्द्रमा का मध्यस्थान हुआ। इसी तरह मङ्गल का ५ विकला, बुध के शीघ्रोच्च का ३६ विकला, बृहस्पति का १ विकला, शुक्र के शीघ्रोच्च का १४ विकला, शनि का ० विकला, चन्द्रमन्दोच्च का १ विकला और चन्द्रपात का ० विकला देशान्तर फल निकलेगा। इन को ग्रहों के स्थान में से घटाने से निम्न लिखित ग्रह हो जायेंगे ॥

सूर्य्य ३ । ० । २८ । ५१ । चन्द्रमा ९ । २१ । ५० । ४० । मङ्गल २ । ७ । २४ । ४७ बुध शीघ्रोच्च ० । ३ । ८ । ९ बृहस्पति ८ । २२ । २६ । ४२ शुक्र शीघ्रोच्च १० । २५ । ६ । ५ शनि ३ । २० । ५५ । ४७ चन्द्र मन्दोच्च २ । ११ । १८ । २९ चन्द्रपात २ । २२ । ५० । ३ ॥

विवरण ६२–यहां लङ्का से वर्तमान लङ्का देश नहीं समझना चाहिये क्योंकि यह तो निरक्ष से ऊपर है और उज्जैन की मध्य रेखा से बहुत पूर्व है। लङ्का कोई टापू या नगर निरक्ष पर वर्तमान लङ्का देश के दक्षिण पश्चिम कोण में था, अब वहां समुद्र है। कोई नगर या टापू नहीं है। जो वृत्त पृथिवी के उत्तर दक्षिण मेरु तथा रोहीतक उज्जैन तथा लङ्का के बीच में होकर कल्पित किया जाये उस को मध्य रेखा कहते हैं ॥

अतीत्योन्मीलनादिन्दोः पश्चात्तद्गणितागतात्। यदा भवेत्तदा प्राच्यां स्वस्थानं मध्यतो भवेत् ॥६३॥ अप्राप्य च भवेत् पश्चादेवं वापि निमीलनात्। तयोरन्तरनाडीभिर्हन्याद् भूपरिधिं स्फुटम् ॥६४॥ षष्ट्या विभज्य लब्धैस्तु योजनैः प्रागथापरैः। स्वदेशपरिधिर्ज्ञेयः कुर्याद्देशान्तरं हि तैः ॥६५॥ वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपाऽर्द्धेऽभ्यधिके भवेत्। तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ॥ ६६ ॥

भाषानुवाद–इष्ट स्थान पर यदि चन्द्रमा के सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ या अन्त गणित से आये हुये काल से पीछे हो तो इष्ट स्थान उक्त मध्य रेखा से पूर्व दिशा में है, जानना ॥ ६३ ॥ (उन्मीलन से मोक्ष) परन्तु यदि चन्द्रमा के सर्वग्रास ग्रहण का आरम्भ या अन्त गणित से आये हुये काल से पहिले हो तो इष्ट स्थान मध्यरेखा की पश्चिम दिशा में जानना (निमीलन से स्पर्श) गणितागत काल और ग्रहणदर्शनकाल दोनों काल का अन्तर दण्ड, पलादि में निकाल

वियोगफल जो दण्ड पलादि होंगे, उन को स्फुट परिधि से गुणा करो ॥ ६४॥ उक्त गुणन फल को ६० से भाग करके जो भाग फल हो वह इष्ट स्थान की दूरी (देशान्तर) मध्य रेखा से पूर्व या पश्चिम कितनी होगी उस की संख्या योजन में निकल आवेगी। पूर्वोक्त ६०–६१ श्लोक लिखित नियमानुसार इस देशान्तर योजन को कला बनाय ग्रह मध्य में जोड़े या घटाये। इससे ग्रहों के मध्यस्थान का निश्चय होगा ॥ ६१ ॥ मध्यरेखा से जिस देश के दण्ड, पलादि जितने होंगे मध्य रेखा में सूर्योदय के पहिले या पीछे उतने ही दण्डपलादि में वार का आरम्भ होगा अर्थात् मध्य रेखा के पूर्व देशों में पहिले एवं मध्य रेखा से पश्चिम के देशों में पीछे वार का आरम्भ जानना ॥

विवरण–गणित द्वारा लाया हुआ काल मध्य रेखा पर उन्मीलन का सर्वत्र होता है । ६३। दिन रात ६० घड़ी की होती है। देशान्तर निकालने के लिये त्रैराशिक की क्रिया करनी चाहिये अर्थात् देशान्तर घटिकाओं को स्फुट परिधि में गुणा कर गुणन फल में ६० का भाग देवे। भाग फल देशान्तर की योजन सख्या होगी। उदाहरण–रेवाड़ी (ज़िला है) में गणितागत और प्रत्यक्ष सब पास का मोक्ष काल का अन्तर ८ पल ५२ विपल है और स्फुट परिधि ४४५८ योजन है। दोनो को गुणा करके ६० घड़ी×६०×६०=२१६००० विपल से भाग दिया तो ११ योजन रिवाड़ी का देशान्तर मिला ॥ ६५ ॥ रिवाड़ी मध्यरेखा के पूर्व है इस लिये वहां श्रावण कृष्णा २ सं० १९४६ को ८ पल ५२ विपल उपरान्त सोमवार होगा ॥ ६६ ॥

इष्टनाडीगुणा भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्।गते शोध्यं युतं गम्ये कृत्वा तात्कालिको भवेत् ॥ ६७ ॥ भचक्रलिप्ताशीत्यंशपरमं दक्षिणोत्तरम् । विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः ॥ ६८॥ तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः। बुधशुक्रार्कजाःपातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ॥ ६९ ॥ एवं त्रिघनरन्ध्रार्करसार्कार्कादशाहताः । चन्द्रादीनां क्रमादुक्ता मध्यविक्षेपलिप्तिकाः ॥ ७० ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥

भाषानुवाद-ग्रहका स्थान आधी रात से पहिले या पीछे जानना हो तो ग्रह की दैनिक भुक्ति (गति) को इष्ट (जिस समय मध्यस्थान स्थित करना हो) घड़ियों से गुणा कर गुणन फल में ६० का भाग दे, भागफल जो कलादि होंगे उन को ग्रह के स्थान से घटावे। यदि इष्टकाल आधी रात से पहिले हो तो, एवं यदि इष्ट काल आधी रात से पीछे होतो जोड़ देवे। इस प्रकार करने से ग्रह का तात्कालिक मध्यस्थान निरूपित होगा ॥ ६७ ॥ रवि मार्ग के जिस स्थान में चन्द्रमा की क्रान्ति का शेष मिला है उस स्थान से २१६०० कला के ८० वें भाग का एक भाग (४°-३०') उत्तर या दक्षिण में पात द्वारा चन्द्रमा चलायमान हो जाता है अर्थात् चन्द्रमा उक्त परिमाण से अपने स्थान से उत्तर या दक्षिण की ओर चला जाता है। इस को चन्द्रमा का विक्षेप कहते हैं उक्त ४°-३०' चन्द्रमा का परम विक्षेप है ॥ ६८ ॥ चन्द्रमा का जो परम विक्षेप हो, उस को ९ से भाग करके, भाग फल को दो भाग में जितना होगा वही बृहस्पति का परम विक्षेप। इसी प्रकार मङ्गल का परम विक्षेप ½ एवं ⅔ चन्द्रमा के परम विक्षेप का ⅔ बुध, शुक्र और शनि का होगा ॥ ६९ ॥ चन्द्रमा का मध्य परम विक्षेप २७० कला, मङ्गल का ९० कला, बुध का १२० कला, बृहस्पति का ६० कला, शुक्र का १२० कला, एवं शनि का १२० कला ॥ ७० ॥

विवरण-ग्रहों के मध्यस्थान जो श्लोक ६१ के अर्थ में लिखे हैं वह रिवाड़ी के अर्धरात्रिक हैं। यदि आधी रात के ७ घड़ी ३० पल उपरान्त समय के ग्रह बनाने हों तो ७ घड़ी ३० पल को ग्रहों की भुक्ति में गुणा कर गुणन फल में ६० का भाग देवे और भाग फल को ग्रहों के स्थान में जोड़देवे तो तात्कालिक ग्रह हो जायेंगे। गणित करने से सूर्य के ७ कला २४ विकला, चन्द्रमा के ९८ कला ४९ वि०, मङ्गल के ३ कला १६ विकला, बुध शीघ्रोच्च के ३० कला ५२ वि०, बृहस्पति के कला शून्य० वि० ३७, शुक्रशी० के १२ का० १ वि०, शनि के कला० वि० १५, चन्द्रमा के मन्दोच्च के कला० वि० ५० और चन्द्रपात के कला० विकला २४ इन को ग्रहों के अपने २ स्थान में जोड़ने से आषाढ़ कृष्ण २ की आधी रात से ७ घड़ी ३० पल बीतने पर होंगे॥ पात में से कलाओं को घटाना चाहिये। सूर्य ३ । ० । ३९ । १५, चन्द्रमा ९ । २३ । २९ । २६, मङ्गल २ । ७ । २८ । ४३, बुध शीघ्रोच्च ० । ३ । ३८ । ५१, बृहस्पति ८ । २२ । २७ । १९, शुक्रशीघ्रोच्च १० । २४ । १८ । ६, शनि ३ । २० । ४६ । २, चन्द्रमा के मन्दोच्च ९ । ११ । १९ । ११, और चन्द्रपात २ । २३ । ४९ । ३६ ॥ ६७ ॥

ग्रह की कक्षा का वृत्त जिस विन्दु में क्रान्ति वृत्त को काट कर उस के उत्तर की ओर चढ़ता है उस विन्दु को " पात " कहते हैं। जब ग्रह पात से दूर होता है तो क्रान्ति वृत्त से उस की दूरी को जो दक्षिण या उत्तर में होती है विक्षेप कहते हैं। जब ग्रह पात से ३ राशि आगे वा पीछे होता है तब वह क्रान्ति वृत्त से अत्यन्त दूर हो जाता है। इस अत्यन्त दूरी का नाम "परम विक्षेप" है। ३ राशि और भोग कर ग्रह का कक्षा वृत्त पुनः क्रान्ति वृत्त को काट के उस से दक्षिण में जाता है यह दूसरा पात है परन्तु गणित में पहिला ही पात लिया जाता है। चन्द्रमा का परम विक्षेप राशिचक्र की कलाओं का $\frac{१}{८०}$ है अर्थात् राशि चक्र २१६०० कला में २७० चन्द्रमा का परम विक्षेप है॥६८॥

इति भाषानुवादे प्रथमोऽध्यायः



ओ३म्

अथ द्वितीयोऽध्यायः

अदृश्यरूपाःकालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः। शीघ्रम-
न्दोच्चपाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः ॥ १ ॥ तद्वातरश्मि-
भिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः। प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते
यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥ २ ॥ प्रवहाख्यो मरुत् तांस्तु
स्वोच्चाभिमुखमीरयेत्। पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति
पृथग्विधाम् ॥ ३ ॥ ग्रहात् प्राग्भगणार्धस्थः प्राङ्मुखं
कर्षति ग्रहम्। उच्चसंज्ञोऽपरार्धस्थस्तद्वत् पश्चान्मुखं ग्रहम्
॥ ४ ॥ स्वोच्चापकृष्टा भगणैः प्राङ्मुखं यान्ति यद्ग्रहाः।
तत् तेषु धनमित्युक्तमृणं पश्चान्मुखेषु तु ॥५॥ दक्षिणो-
त्तरतोऽप्येवं पातो राहुः स्वरंहसा। विक्षिपत्येष विक्षेप-
श्चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥ ६ ॥

भाषानुवाद—अदृश्यरूप, शीघ्रोच्च, मन्दोच्च, एवं पात काल की मूर्त्ति हैं और भगणों के आश्रित हैं। इन्हीं के कारण ग्रहों की (स्पष्ट) गति होती है ॥ १ ॥ यह शीघ्रोच्च, मन्दोच्च एवं पात अपने वायुरूप रस्सियों से सब ग्रहों को बान्ध कर अपनी ओर खींचते हैं। यह ही मन्दोच्चादि अपने दहिने और बायें रज्जु को पकड़ कर पूर्व और पश्चिम की ओर आकर्षण करते हैं। जो ग्रह इन के वामभाग में हैं उन को बायें हाथ से एवं जो इन के दहिने ओर हैं, उन को दहिने हाथ से अपनी ओर खैंचते हैं ॥ २ ॥ प्रवह नामक वायु भी सब ग्रहों को अपने उच्चकी ओर खैंचता है। इस लिये ग्रहगण पूर्व और पश्चिम की ओर आकर्षित होते हैं और इसी कारण ग्रहों की अनेक

प्रकार की गति होती है ॥ ३ ॥ ये उच्चादि यदि ग्रहस्थान से पूर्व छः राशि अर्थात् मेषादि छः राशियों में होने से ग्रहों को पूर्व की ओर एवं दूसरे आधे में अर्थात् तुलादि छः राशियों में रहने से पश्चिम की ओर आकर्षण करते हैं ॥ ४ ॥ ग्रहगण अपने उच्च से आकर्षित होकर जितने अंशादिक पूर्व की ओर जाते हैं उतने अंशादि उन के मध्यस्थान में जोड़ना पड़ता है और इसी प्रकार जितना अंशादि पश्चिम में आकर्षित होते हैं उतने अंशादि ग्रहमध्यस्थान से घटाना चाहिये ॥ ५ ॥ इसी प्रकार पात (राहु) अपनी शीघ्रता से चन्द्रादि ग्रह को रविमार्ग में चन्द्रमा के शेष क्रान्तिस्थान से उत्तर या दक्षिण की ओर ले जाता है। इस प्रकार जिस ग्रह को जितना विक्षेप करता है उस ग्रह का उतना उत्तर या दक्षिण विक्षेप होता है ॥ ६ ॥

विवरण—चन्द्रमा की कक्षा जिस स्थान में क्रान्ति वृत्त को काट कर ऊपर पड़ती है, उस को राहु कहते हैं और ६ राशि भोग कर दूसरे स्थानमें पुनः क्रान्ति वृत्त को काट कर दक्षिण की ओर जाती है, उस को केतु कहते हैं ॥६॥

वि० श्लो० १—६ ग्रहों की जो उच्च, पात आदि की गणना का वर्णन है वह केवल गणित की सुगमता के लिये है, वस्तुतः ग्रहों से भिन्न पातादि कोई जीव वा ग्रह की नाईं अपर ग्रह नहीं हैं, जैसा कि भास्कराचार्य ने लिखा है:—

ग्रहः पूर्वगत्या प्रतिमण्डलेनैव भ्रमति। यदेत-
न्नीचोच्चवृत्तं तत्प्राङ्गैर्गणकैः फलार्थं कल्पितम्।
(सि० शिरोमणि गोलाध्याय छेद्यकाधिकार)

अर्थात्—वस्तुतः ग्रहगण पूर्व गति से प्रति वृत्त में भ्रमण करते हैं। ये जो नीच एवं उच्च वृत्त हैं, केवल गणकों ने गणित की सुगमता के लिये कल्पना किये हैं। इसी प्रकार ब्रह्मगुप्त ने भी अपने "ब्रह्मसिद्धान्त" में लिखा है कि:—

प्रतिपादनार्थमुच्चाः प्रकल्पिताः।
ग्रहगतेस्तथा पाताः ॥ २९ ॥ गोलाध्याये।

अर्थात्—ग्रहों की स्पष्ट गति (True motion) प्रतिपादन के लिये "उच्च" और "पात" की कल्पना की गई है॥

उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्धगः। ग्रहं प्राग्भगणार्धस्थो याम्यायामपकर्षति॥ ७॥ बुधभार्गवयोः शीघ्रा-

त्तद्बत्पातो यदा स्थितः। तच्छीघ्राकर्षणात्तौ तु विक्षिप्येते यथोक्तवत् ॥ ८ ॥ महत्वान्मण्डलस्यार्कः स्वल्पमेवापकृष्यते । मण्डलाल्पतया चन्द्रस्ततो बह्वपकृष्यते ॥ ९ ॥ भौमादयोऽल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसंज्ञकैः । दैवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः ॥ १० ॥ अतोधनर्णं सुमहत् तेषां गतिवशाद्भवेत् । आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः ॥ ११ ॥

भाषानुवाद–यही पात यदि पश्चिम विभागस्थ अर्थात् तुलादि छः राशि के अन्तर्गत होता है तो ग्रहों को उत्तर की ओर विक्षेप करता है। एवं यह पात यदि ग्रहों के पूर्व भागस्थ अर्थात् मेषादि छः राशि के मध्यवर्ती होता है तो ग्रहादिकों को दक्षिण की ओर विक्षेप करता है ॥ ७ ॥ परन्तु जब बुध और शुक्र के पात उन के शीघ्रोच्च से समान गति और समान अन्तर होता है उस समय उन के शीघ्रोच्च के आकर्षण द्वारा पूर्वोक्त रीति से विक्षेप को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ सूर्य का मण्डल की गुरुता के कारण उस के उच्च का आकर्षण बहुत थोड़ा होता है। एवं चन्द्रमा के मण्डल लघु होने के कारण सूर्य की अपेक्षा इस को उच्च बहुत आकर्षण करता है। मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि इन पांच ग्रहों के मण्डल छोटे होने से इन को शीघ्रोच्च और मन्दोच्च बहुत वेग से आकर्षण करते हैं ॥ १० ॥ पूर्वोक्त कारण से ग्रहों के मन्दोच्च के आकर्षण में जो गति होती है उस का योगफल या वियोगफल अधिक होता है। इस प्रकार ग्रहगण शीघ्रोच्च और मन्दोच्च से आकर्षित हो कर और प्रवह वायु से ताड्यमान होकर आकाश मार्ग में भ्रमण करते हैं ॥११॥

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा । तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥ १२ ॥ तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा। ऋज्वीति पञ्चधा ज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥ १३ ॥ तत्तद्गतिवशान्नित्यं यथा दृक्तुल्यतां ग्रहाः । प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ॥ १४ ॥

भाषानुवाद—ग्रहों की गति ८ प्रकार की है,वक्रा १,अति वक्रा २,विकला ३, मन्दा ४, मन्दतरा ५, समा ६, शीघ्रतरा ७ और शीघ्रा ८ ॥ १२ ॥ पूर्वोक्त ८ प्रकार की गतियों में से अतिशीघ्रा, शीघ्रा, मन्दा, मन्दतरा और समा ये ५ सरला (सीधी) गति हैं और वक्रा, अतिवक्रा और कुटिला,ये ३ वक्रगति हैं ॥ १३ ॥ ग्रहगण प्रतिदिन गमन करते हैं। उन की गति किसी दिन शीघ्र, कभी अति शीघ्र होती है । सुतरां उन की गति अनेक प्रकार की हो जाया करती है। इस समय यही ग्रहगणों की गति स्थिति निरूपणके लिये स्फुट प्रकरण कहूंगा इस स्फुट करने से जो निश्चय होगा, वही देखने पर भी जाना जायेगा ॥१४॥

राशिलिप्ताष्टमो भागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते । तत्तद्विभक्तलब्धोनमिश्रितं तद्द्वितीयकम् ॥ १५ ॥ आद्येनैवं क्रमात्पिण्डान् भक्त्वा लब्धोनसंयुताः । खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज्ज्यार्धपिण्डाः क्रमादमी ॥ १६ ॥ तत्त्वाश्विनोऽङ्काब्धिकृता रूपभूमिधरर्तवः । खाङ्काष्टौ पञ्चशून्येशा बाणरूपगुणेन्दवः ॥ १७ ॥ शून्यलोचनपञ्चैकाश्छिद्ररूपमुनीन्दवः । वियच्चन्द्रातिधृतयो गुणरन्ध्राम्बराश्विनः ॥ १८ ॥ मुनिषड्यमनेत्राणि चन्द्राग्निकृतदस्रकाः । पञ्चाष्टविषयाक्षीणि कुञ्जराश्विनगाश्विनः ॥ १९ ॥ रन्ध्रपञ्चाष्टकयमा वस्वद्र्यङ्कयमास्तथा । कृताष्टशून्यज्वलना नगाद्रिशशिवह्नयः ॥ २० ॥ षट्पञ्चलोचनगुणाश्चन्द्रनेत्राग्निवह्नयः । यमाद्रिवह्निज्वलनारन्ध्रशून्यार्णवाग्नयः ॥ २१ ॥ रूपाग्निसागरगुणावस्वग्निकृतवह्नयः । प्रोज्झ्योत्क्रमेण व्यासार्द्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥ २२ ॥

भाषानु०—एक राशिमें १८०० कला होती हैं,उस के अष्टमभाग में २२५ कला, इसी को इस राशि का प्रथम ज्यार्द्ध कहते हैं । इस प्रथम ज्यार्द्ध २२५ को २२५ से भाग करने पर जो १ भाग फल होता है इस १ को प्रथम ज्यार्द्ध २२५ से

घटाने पर शेष २२४ होगा। इस २२४ को प्रथम ज्यार्द्ध २२५ के साथ जोड़ देने से योगफल ४४९ होगा । यही द्वितीय ज्यार्द्ध है ॥१५॥ उक्त द्वितीय ज्यार्द्ध ४४९ को प्रथम ज्यार्द्ध से भाग करके भागफल २ लेकर यह २ इस के साथ पूर्व द्वितीय ज्यार्द्ध निष्कासन भाग फल से जो १ मिला है, जोड़ने से ३ होगा । इस ३ को उक्त भाजक २२५ से घटाने पर २२२ बचेगा, इसी २२२ को द्वितीय ज्यार्द्ध ४४९ के साथ जोड़ने से ६७१ होगा, यही तृतीय ज्यार्द्ध है । इसी प्रकार क्रमशः २४ ज्यार्द्ध गणना करनी होगी ।।१६॥ किसी वृत्त के चतुर्थांश जिस का व्यासार्द्ध ३४३८ उस के ३४ अंश की ज्यार्द्ध निम्नलिखित होंगी ॥

	अंश या	कला	ज्या		अंश या	कला	ज्या
प्रथम कोण	३ ३/४	२२५	२२५	१३ वां कोण	४८॥।	२९२५	२२६७
द्वितीय ,,	७ १/२	४५०	४४९	१४ वां ,,	५२ १/२	२७००	२४३१
तृतीय ,,	११ १/४	६७५	६७१	१५ वां ,,	५६ १/४	२९२५	२५८२
चतुर्थ ,,	१५	९००	८९०	१६ वां ,,	६०	३१५०	२७२८
पञ्चम ,,	१८ ३/४	११२५	११०५	१७ वां ,,	६३॥।	३३७५	२८५९
छठा ,,	२२ १/२	१३५०	१३१५	१८ वां ,,	६७ १/२	३६००	२९७८
सप्तम ,,	२६ १/४	१५७५	१५२०	१९ वां ,,	७१ १/४	३८२५	३०८४
अष्टम ,,	३०	१८००	१७१९	२० वां ,,	७५	४०५०	३१७७
नवम ,,	३३ ३/४	२०२५	१९१५	२१ वां ,,	७८॥।	४७२५	३२७२
दशम ,,	३७ १/२	२२५०	२०९३	२२ वां ,,	८२ १/२	४९५०	३४०९
एकादश ,,	४१ १/४	२४७५	२२६७	२३ वां ,,	८६ ३/४	५१७५	३४३१
द्वादश ,,	४५	२७००	२४३१	२४ वां ,,	९०	५४००	३४३८

पूर्वोक्त ज्यार्द्ध परिमाण सब को उलटे प्रकार से ३४३८ व्यासार्द्ध से पृथक् पृथक् घटाने पर जो अङ्क घटाने से बचेंगे उन को उत्क्रमज्या कहते हैं । प्रति ३४ अंश में इस प्रकार उत्क्रमज्या हो जाती हैं । १६–२२ श्लोक तक ॥

मुनयोरन्ध्रयमला रसषट्कामुनीश्वराः । द्व्यष्टैकारूपषड्दस्राः सागरार्थहुताशनाः ॥२३॥ खर्तुवेदा नवाद्र्यर्था दिङ्नगास्त्र्यर्थकुञ्जराः। नगाम्बरवियच्चन्द्रारूपभूधरशा-

ङ्कराः ॥ २४ ॥ शरार्णवहुताशैका भुजङ्गाक्षिशरेन्दवः । नवरूपमहीध्रैका गजैकाङ्कनिशाकराः ॥ २५ ॥ गुणाश्विरूपनेत्राणि पावकाग्निगुणाश्विनः । वस्वर्णवार्थयमलास्तुरङ्गर्तुनगाश्विनः ॥ २६ ॥ नवाष्टनवनेत्राणि पावकैकयमाग्नयः । गजाग्निसागरगुणा उत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥ २७ ॥

भाषानुवाद–अब क्रम से १ से २४ तक की उत्क्रमज्या और अपक्रमज्या नीचे लिखी जाती है ॥

संख्या	उत्क्रमज्या	अपक्रमज्या	संख्या	उत्क्रमज्या	अपक्रमज्या
१	७	७१	१३	११७१	१०५०
२	२९	१८१	१४	१३४५	११०७
३	६६	२७३	१५	१५२८	११६२
४	११७	३६२	१६	१७१९	१२१०
५	१८२	४४९	१७	१९१८	१२५३
६	२४१	५३५	१८	२१२३	१२९१
७	३५४	६१८	१९	२३३३	१३२३
८	४६०	६९९	२०	२५४८	१३४९
९	५७९	७७६	२१	२७६७	१३७०
१०	७१०	८५०	२२	२९६९	१३८८
११	८५३	९११	२३	३२१३	१३९५
१२	१००७	९८८	२४	३४३८	१३९७

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दवः । तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता सच्चापं क्रान्तिरुच्यते ॥ २८॥ ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च। शेषं केन्द्रपदं तस्माद् भुजज्या कोटिरेव च ॥ २९ ॥ गताद् भुजज्या विषमे गम्यात् कोटिः पदे भवेत्। युग्मे तु गम्याद् बाहुज्या को-

टिज्या तु गताद् भवेत् ॥ ३० ॥ लिप्तास्तत्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्। गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत् तत्त्वलोचनैः ॥ ३१ ॥ तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गत-संज्ञके। स्यात् क्रमज्याविधिरयमुत्क्रमज्यास्वपिस्मृतः॥३२॥

भाषानुवाद-ग्रहों की परम क्रान्तिज्या १३९७। जब ग्रहों की मध्यक्रान्ति लानी हो तो अभीष्टज्या को परम क्रान्तिज्या १३९७ से गुणा कर-गुणन फल को व्यासार्द्ध ३४३८ से भागदेवे। जो भाग फल हो वह पूर्वोक्त जो ज्यार्द्धसंख्या के साथ समान, इस ज्यार्द्धाङ्क में धनु होगी वही धनु ग्रह की मध्य क्रान्ति होगी ॥२८॥ ग्रह के मन्दोच्च से उसी ग्रह का मध्य घटाने से जो शेष रहे उस को मन्दकेन्द्र कहते हैं। एवं मन्द केन्द्र और मध्य को शीघ्रोच्च से घटाने पर जो बचे उस को शीघ्र केन्द्र कहते है। इसी शीघ्र केन्द्र और मन्द केन्द्र से भुजज्या और कोटिज्या निरूपित होंगी। १२ राशि के वृत्त में किसी चतुर्थांश में यह केन्द्र होता है उस को (केन्द्र) जान कर इस केन्द्र की भुजज्या और कोटिज्या स्थिर करे ॥ २९ ॥ १२ राशि के वृत्त के विषम खण्ड में (अर्थात् मेष,वृष,मिथुन प्रथम-एवं तुला, वृश्चिक, धनु तृतीय-इन की विषम पद संज्ञा है) अर्थात् राशि चक्र के प्रथम और तृतीय भाग में धनु का जितना भाग बीत गया है उस को भुजज्या और गम्य अर्थात् इस खण्ड के पूरा होने को जितना भाग अवशिष्ट (बाकी) है उस को कोटिज्या कहते हैं। और सम मण्डल (अर्थात् कर्क, सिंह, कन्या द्वितीय-एवं मकर, कुम्भ, मीन चतुर्थ भाग-इन की युग्म वा सम पद संज्ञा है) अर्थात् द्वितीय, चतुर्थ भाग मे धनु का गम्य अर्थात् इस खण्ड के पूरा होने में जितने भाग अवशिष्ट हैं उस को भुजज्या, एवं इस धनु के जितना भाग पूरा हुआ है उस को कोटिज्या कहते हैं ॥ ३० ॥ अभीष्ट अंश को कला बनाकर २२५ से भाग देवे। इस भागफल संख्या में पूर्व कथित जो ज्या के साथ समान होगा, उस का नाम गतज्या। इस गत ज्या के पीछे जो ज्या लिखी है, उस को गम्यज्या कहते हैं। इस गत और गम्यज्या को घटाने से जो बचेगा, उस के द्वारा पूर्व भाग के अवशिष्टाङ्क से गुणा कर गुणनफल में २२५ का भाग देवे। इस भागफल को उक्त गतज्या के साथ जोड़ देवे। योगफल अभीष्ट ज्या होगी। इसी नियमसे अभीष्ट अंश की क्रमज्या निकालनी चाहिये। एवं इसी प्रक्रिया से अवशिष्ट

अंश की व्युत्क्रमज्या भी निरूपित होगी ॥ ३१ । ३२ ॥

ज्यां प्रोज्झ्य शेषं तत्त्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम् । संख्या तत्त्वाश्विसंवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ॥ ३३ ॥ रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगोरदाः । युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः ॥ ३४ ॥ युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्नी सुराः सूर्या नवार्णवाः । ओजे द्व्यगा वसुयमा रुद्रा रुद्रा गजाब्धयः ॥ ३५ ॥ कुजादीनामतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः । गुणाग्निचन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः ॥ ३६ ॥ ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः । खर्त्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्त्तिताः ॥ ३७ ॥

भाषानुवाद—जिस ज्या पिण्ड का धनु स्थिर करना हो उस ज्या से पूर्ववर्त्ती अशुद्ध ज्या को घटावे । जो शेष रहे, उस को २२५ से गुणन करे । पुनः उस गुणन फल को शुद्ध और अशुद्ध दोनों ज्याओं के अन्तर (घटाने से जो हो) से भाग देवे । पुनः जितनी ज्या अभीष्ट हो उतनी संख्या और २२५ इन्हीं दोनों के गुणनफल में पूर्वोक्त भागफल जोड़ने से जो हो वही अभीष्ट ज्या पिण्ड की धनु होगी ॥ ३३ ॥ युग्म खण्ड में सूर्य की मन्द परिधि १४ अंश और चन्द्रमा की मन्द परिधि ३२ अंश । किन्तु विषमखण्ड में पूर्वोक्त दोनों मन्द परिधि बीस २ कला न्यून होगी । अर्थात् विषमखण्ड में सूर्य की मन्द परिधि १३ अंश ४० कला और चन्द्रमा की मन्द परिधि ३१ अंश ४० कला ॥ ३४ ॥ युग्म खण्ड मे मङ्गल की मन्द परिधि ७५ अंश, बुध की म० प० ३० अंश, बृहस्पति की म० प० ३३ अंश, शुक्र की म० प० १२ अंश और शनि की म० प० ४९ अंश और विषम खण्ड में मङ्गल की मन्द परिधि ७२ अंश, बुध की म० प० २८ अंश, बृहस्पति की म० प० ३२ अंश, शुक्र की म० प० ११ अंश, एवं शनि की म० प० ४८ अंश ॥ ३५ ॥ अब इस समय मङ्गलादि ग्रहों की शीघ्रपरिधि का परिमाण कहा जाता है । युग्म खण्ड में मङ्गल की शीघ्रपरिधि २३५ अंश, बुध की शी० प० १३३ अंश, बृहस्पति की शी० प० ७० अंश, शुक्र की शीघ्रपरिधि २६२ अंश, एवं शनि की शीघ्रपरिधि ३९ अंश ॥ ३६ ॥ विषम खण्ड में मङ्गल की

शीघ्रपरिधि २३२ अंश, बुध की शीघ्रपरिधि १३२ अंश, बृहस्पति की शी० प० ७२ अंश, शुक्र की शी० प० २६० अंश, एवं शनि की शी० प० ४० अंश ॥ ३७ ॥

ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ।
युग्मे वृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ॥३८॥
तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांशविभाजिते ।
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम् ॥३९॥

भाषानुवाद–जिस ग्रह की शुद्ध परिधि लानी होवे–उस ग्रह के पूर्वोक्त युग्मखण्ड और विषम की दोनों मन्दपरिधि को आपस में घटाकर उस अन्तर फल को अभीष्ट केन्द्र की भुजज्या से गुणन करे, एवं गुणन फल में त्रिज्या से भाग देवे, अनन्तर इस भाग फल को पूर्वोक्त युग्मखण्ड के मन्दपरिधि से यदि न्यून हो तो उस को जोड़े, एवं यदि अधिक हो तो घटावे । यही योग या वियोग फल उस ग्रह की शुद्ध परिधि होगी ॥३८॥ मान्द्य और शीघ्र केन्द्र की भुजज्या और कोटिज्या को अपने२ स्फुट परिधि से अलग२ गुणन करके गुणन फल को ३६० से भाग देवे, दोनों भागफल, भुजपरिधिफल और कोटि फल होगा । पुनः यह देखना चाहिये कि जो ज्या इस भुजफल के समान है उसी ज्या की धनु में जितनी कला हैं, वही मन्दफल है ॥३९॥

शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम् । संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्कादौ कोटिजं फलम्॥ ४० ॥ तद्बाहुफलवर्गैक्यांमूलंकर्णश्चलाभिधः । त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्णविभाजितम् ॥४१॥ लब्धस्य चापं लिप्तादिफलंशैघ्र्यमिदं स्मृतम्। एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि॥४२॥ मान्द्यं कर्मैकमर्केन्द्वोर्भौमादीनामथोच्यते । शैघ्र्यंमान्द्यं पुनर्मान्द्यं शैघ्र्यञ्चत्वार्यनुक्रमात् ॥ ४३ ॥ मध्येशीघ्रफलस्यार्द्धं मान्द्यमर्धफलं तथा । मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्र्यमेव च ॥४४॥

भाषानुवाद–पूर्वोक्त प्रक्रियानुसार शीघ्र केन्द्र से शीघ्र कोटि फल स्थिर करके

से जो अङ्क होगा वह केन्द्र यदि ३ राशि से न्यून और ९ राशि से अधिक हो तो व्यासार्द्ध (३४३८) के साथ यह कोटिफल योग करे और यदि केन्द्र ३ राशि से अधिक किंवा ९ राशि से न्यून हो तो यह कोटिफल व्यासार्द्ध से घटावे ,तो स्फुट कोटि निकल आवेगी) ॥४०॥ इस योग वा वियोग फल करे वर्ग की द्वितीय भुजफल के वर्ग के साथ जोड़े, पुनः इस योगफल का वर्ग मूल निकाले। वर्ग मूल संख्या ही शीघ्र कर्ण होगी। तदनन्तर द्वितीय भुज फल के अङ्क को(श्लोक ३९ में कहा गया है)व्यासार्द्ध से गुणन कर गुणन फलमें उक्त शीघ्र कर्णकी संख्याका भाग देवे॥४१॥इस शीघ्र कर्णसे भाग कर जो भाग फल हो, उस ज्या के अनुसार धनु स्थिर करनेपर जो हो वही ग्रहोंका कलादि शीघ्र फल होगा। मङ्गलादि ५ ग्रहोंके स्फुट साधन समय प्रथम संस्कार में और चतुर्थ संस्कार में इस शीघ्र फल की आवश्यकता होती है ॥४२॥ सूर्य और चन्द्रमा का केवल एक ही वार मान्द्य फल संस्कार करने से इन का स्फुट स्थिर होगा, किन्तु मङ्गलादि पांच ग्रहों का यथाक्रम से शीघ्र फल पीछे मान्द्य फल अनन्तर पुनर्वार मान्द्य फल एवं पुनर्वार शीघ्र फल संस्कार करने से उन का स्फुट होगा॥४३॥ पहिले ग्रहों के मध्य में शीघ्र फल का अर्द्धांश संस्कार करना, संस्कार करने पर जो फल मिले उस के साथ मान्द्य फल का अर्द्धांश संस्कार करना चाहिये अर्थात् जो मान्द्य फल उल्लिखित शीघ्र फलार्द्ध संस्कृत मध्य से स्थिर हुआ है, वही संस्कार करना होगा, उस के पश्चात् पुनः ग्रहों के मध्य में मान्द्य फल का समस्त भाग (जो शीघ्र फलार्द्ध और मान्द्य फलार्द्ध संस्कृत मध्य द्वारा जाना गया है) संस्कार किया जावेगा। इसी का नाम मन्द स्पष्ट है, पुनः इस मन्द स्पष्ट द्वारा जो शीघ्र फल स्थिर होगा वही शीघ्र फल का सम्पूर्ण भाग मन्द स्पष्ट में संस्कार करना चाहिये। इस प्रकार संस्कार करने से ग्रहों का स्फुट स्थिर होगा ॥४४॥

अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्मणि। धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च ॥ ४५ ॥ अर्कबाहुफलाभ्यस्ताः ग्रहभुक्तिर्विभाजिता। भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ता कार्या ग्रहेऽर्कवत् ॥ ४६ ॥ स्वमन्दभुक्तिसंशुद्धा मध्यभुक्तिर्निशापतेः।दोर्ज्यान्तरादिकं कृत्वा भुक्तावृण-

णधनं भवेत् ॥ ४७ ॥ ग्रहभुक्तेः फलं कार्य्यं ग्रहवन्मन्द-
कर्मणि। दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्वनेत्रोद्धृता पुनः४८

भावानुवाद्–सब ही ग्रहों के शीघ्र केन्द्र वा मन्द केन्द्र मेषादि छ राशि के अन्तर्वर्त्ती होने से उन की कलादि शीघ्र फलाङ्क वा मन्द फलाङ्क धन अर्थात् जोड़ना होगा और तुलादि छ राशि के अन्तर्वर्त्ती होने से ये ही कलादि फल सकल ऋण अर्थात् घटाना पड़ेगा ॥ ४६ ॥ * भुजान्तर संस्कार ग्रह के दैनिक स्फुट गति संख्या को सूर्य के मन्द फल के कलाङ्क से गुणा कर गुणनफलके अङ्क को राशि चक्र के २१६०० कला द्वारा भाग करने से जो भाग फल मिले उस के कलादि को अङ्क संख्या जिस प्रकार सूर्य का मन्द फल जोड़ा या घटाया जाता है उसी प्रकार ग्रह के स्फुट में जोड़ना या घटाना पड़ेगा। इस प्रकार लङ्का के मध्य रात्रि का स्फुट निर्णीत होगा। ग्रहस्थान में जो जोड़ने वा घटाने का उल्लेख हुआ है उस को लङ्का के मध्य रात्रि के अहर्गण से ग्रह का जो मध्य निरूपित होता है उस से जानना चाहिये। चन्द्रमा की दैनिकगति के अङ्क से चन्द्रमा के मन्दोच्च के दैनिकगति के अङ्क को घटाने से जो अङ्क अवशिष्ट रहे (वही बचा हुवा द्वारा चन्द्रमा के मन्दोच्च से गति का परिमाण जाना जावेगा) इस अवशिष्ट अङ्कद्वारा पश्चात् लिखित नियमानुसार चन्द्रमा का मन्दफल निरूपण करके चन्द्रमा के दैनिक गति के अङ्क साथ घटाने या जोड़ने से चन्द्रमा की यथार्थ गति निरूपित होगी ॥ ४७ ॥ मन्द फल संस्कार में जिसप्रणाली से ग्रह का मन्दफल निर्णीत होता है, उसीप्रकार ग्रह की दैनिकगति से ग्रह का मन्दगति फल साधन करना चाहिये। ग्रह के मन्दकेन्द्र की ज्या निरूपण करने के समय जो "गत" और "गम्य" ज्या निर्णीत हुआ है, वही दोनों ज्या के परस्पर घटाने से जो बचे उस के द्वारा ग्रह की दैनिक भुक्ति के अङ्क को गुणाकर गुणनफल को २२५ से भाग करे, पुन भाग फल को अपने मन्दपरिधि द्वारा गुणन करे ॥४८॥

स्वमन्दपरिधिक्षुण्णा भगणांशोद्धृताः कलाः। कर्कादौ तु

* टिप्पणी–लङ्का में यथार्थ मध्यरात्रि स्फुट गणना के लिये अहर्गण निरूपण पूर्वक जो ग्रहस्फुट स्थिर किया जाता है उसी ग्रहस्फुट में यह भुजान्तर संस्कार करना पड़ता है ॥

धनं तत्र मकरादावृणंस्मृतम् ॥४९॥ मन्दस्फुटीकृतां
भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्चभुक्तितः । तच्छेषं विवरेणाथ
हन्यात् त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥५०॥ चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे
त्रिज्याधिके धनम् । ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्र-
गतिर्भवेत् ॥५१॥ दूरस्थितः स्वशीघ्रोच्चाद्ग्रहः शिथिल-
रश्मिभिः । सव्येतराकृष्टतनुर्भवेद्वक्रगतिस्तदा ॥५२॥ कृत-
र्तुचन्द्रैर्वेदेन्द्रैः शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टभिः । शररुद्रैश्चतुर्थेषु
केन्द्रांशैर्भूसुतादयः ॥५३॥

भाषानुवाद–पूर्वोक्त गुणनफल को ३६० से भाग देवे, भागफल जो कलादि मिले (उसी को मन्दगति फल कहते हैं) उस को ग्रह की दैनिक मध्यगति के अङ्क के साथ जोड़े या घटावे । यदि मन्द केन्द्र कर्कादि छः राशि के अन्तर्वर्ती हो तो जोड़े, एवं मकरादि छः राशि के अन्तर्वर्ती हो तो घटावे तो सूर्य और चन्द्रमा की दैनिकगति और मङ्गलादि अन्यान्य ग्रह की मन्द स्पष्ट गति साधित होगी ॥ ४९ ॥ पूर्वोक्त मन्द स्पष्टगति के अङ्क को दैनिक शीघ्रोच्च गति के अङ्क से घटाकर बचे हुवे अङ्क को व्यासार्द्ध और द्वितीय शीघ्र कर्ण-इन दोनो के अन्तराङ्क (घटा कर जो बचे) से गुणा कर गुणन फल को इसी शीघ्र कर्ण की अङ्क संख्या से भाग करे। यदि कर्ण व्यासार्द्ध की अपेक्षा अधिक होवे तो उक्त भाग फल को मन्द स्पष्ट गति के अङ्क के साथ जोड़े । एवं कर्ण व्यासार्द्ध की अपेक्षा न्यून होने से घटावे, किन्तु यदि भाग फल मन्द स्पष्ट गति की अपेक्षा अधिक हो अर्थात् घट न सके तो भाग फल से मन्द स्पष्ट गति के अङ्क को घटावे, घटाने से जो शेष हो उसी को ग्रह की वक्र गति कहते हैं ॥५०॥५१॥ जिस समय कोई ग्रह अपने शीघ्रोच्च से दूर में अर्थात् ३ राशि अपेक्षा अधिक दूर में हो रहता है, उस समय उस की रश्मि शिथिल हो जाने से उच्च बाईं या दहनी ओर उस को आकर्षण करता है अर्थात् ग्रह उस के बाईं ओर होने से दक्षिण ओर को, एवं दहिनी ओर होने से उस को बाईं ओर खेंचता है । इसी कारण ग्रहों की वक्रगति होती है ॥ ५२ ॥ ग्रहस्फुट गणना समय चतुर्थ संस्कार का केन्द्रांश १६४ होने से मङ्गल वक्र गमन आरम्भ

हो जाता है इसी प्रकार १४४ अंश होने से बुध, १३० अंश होने से बृहस्पति, १६३ अंश होने से शुक्र, एवं ११५ अंश होने से शनि का वक्रगमन आरम्भ होता है ॥ ५३ ॥

भवन्ति वक्रिणस्तैस्तु स्वैः स्वैश्चक्राद्विशोधितैः । अव-
शिष्टांशतुल्यैः स्वैः केन्द्रैरुज्झन्ति वक्रताम् ॥ ५४ ॥ म-
हत्त्वाच्छीघ्रपरिधेः सप्तमे भृगुभूसुतौ । अष्टमे जीवश-
शिजौ नवमे तु शनैश्चरः ॥५५॥ कुजार्किगुरुपातानां ग्रह-
वच्छीघ्रजं फलम् । वामं तृतीयकं मान्दं बुधभार्गवयोः
फलम् ॥ ५६ ॥ स्वपातोनाद्ग्रहाज्जीवाशीघ्राद्भृगुजसौ-
म्ययोः।विक्षेपघ्नान्त्यकर्णाप्ता विक्षेपस्त्रिज्ययाविधोः॥५७॥

भाषानुवाद—उल्लिखित सब अंशों को अलग अलग ३६० अंश से घटाने से

वियोग करे, घटाने से जो शेष रहे उस की भुजज्या को उक्त ग्रहों के परम विक्षेप अङ्क से (जो अ० १ श्लोक ७० में कहा गया है) गुणा कर गुणनफल को चतुर्थ शीघ्रकरण के अङ्क से भाग देवे। जो भागफल मिले वही मङ्गल, वृहस्पति, शनि, बुध और शुक्र का विक्षेप है, किन्तु चन्द्रमा के विक्षेप साधन काल में चतुर्थ शीघ्रकर्ण स्थल में व्यासार्द्ध से भाग करना होता है। वही भागफल चन्द्रमा का विक्षेप होगा ॥ ५७ ॥

विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेपसंयुता। दिग्भेदे वियुता स्पष्टा भास्करस्य यथा गता ॥ ५८ ॥ ग्रहोदयप्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गतिः। चक्रासवो लब्धयुताः स्वाहोरात्रासवःस्मृतः ॥ ५९ ॥ क्रान्तेः क्रमोत्क्रमज्ये द्वे कृत्वा तत्रोत्क्रमज्यया। हीना त्रिज्या दिनव्यासदलं तद्दक्षिणोत्तरम् ॥६०॥ क्रान्तिज्याविषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता। त्रिज्यागुणाहोरात्रार्ध कर्णाप्ताचरजासवः ॥६१॥

भाषानुवाद—किसी ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति स्थिर करनी हो तो (मेष से कन्या तक ६ राशि उत्तर और तुला से मीन तक ६ राशि दक्षिण) उस ग्रह के विक्षेप और अपक्रम (क्रान्ति) यदि रविमार्ग से एक दिशा में अवस्थित हों तो उस की मध्य क्रान्ति के साथ विक्षेपाङ्क को जोड़े और एक दिशा में अवस्थित न हो तो मध्य क्रान्ति से विक्षेपाङ्क घटावे। इसी प्रकार योग या वियोग करके जो फल मिले वही उस ग्रह की स्पष्ट क्रान्ति है। परन्तु सूर्यकी मध्य क्रान्ति ही उस की स्पष्ट क्रान्ति है ॥ ५८ ॥ सायन ग्रह जिस राशि में अवस्थित हो उस राशि के लग्नमान के प्राणाङ्क से उस ग्रह की दैनिक कलादि गति के अङ्क को गुणन करके गुणन फल को १८०० से भाग देवे, भागफल को १२ राशि के लग्नमान के प्राणाङ्क के साथ जोड़ने से जो समष्टि होगी, वही उस ग्रह के अहोरात्र का परिमाण होगा॥५९॥ पूर्वोक्त अनुसार ग्रह की क्रान्ति का क्रमज्या और उत्क्रमज्या साधन पूर्वक उत्क्रमज्या को व्यासार्द्ध से घटा कर जो बचे वही महाविषुव रेखा के दक्षिण या उत्तर दैनिक वृत्त का व्यासार्द्ध होगा। इसी को द्युज्या कहते हैं। एवं क्रमज्या को ही क्रान्तिज्या कहते हैं ॥ ६० ॥ उपरोक्त क्रान्तिज्या को विषुव दिन की पलभा से गुणा कर, गुणन फल में १२ का भाग दे। भागफल कुज्या होगी। कुज्या को व्यासार्द्ध से गुणा

फर गुणनफल को पूर्व कथित द्युज्या से भाग देवे। भागफल चरज्या होगी। इस चरज्या की कला आदि धनु ही चरार्द्ध का प्राण होगा॥६१॥

तत्कार्मुकमुदक्क्रान्तौ धनहानी पृथक् स्थिते। स्वाहोरात्रचतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते॥६२॥ याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे। विक्षेपयुक्तोनितया क्रान्त्या भानामपि स्वके॥ ६३॥ भभोगोऽष्टशतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः। ग्रहलिप्ता भभोगोप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम्॥ ६४॥ रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिताः। गता गम्याश्च षष्टिघ्ना भुक्तियोगाप्तनाडिकाः॥६५॥

भाषानुवाद—यदि क्रान्ति उत्तरदिग्वर्त्तिनी हो तो अहोरात्र के परिमाण के चतुर्थांश को दो भिन्न स्थानों में रखकर एक स्थानस्थ उक्त चरार्ध जोड़े और अन्य स्थानस्थ अङ्क से घटाये तो यथाक्रम दिनार्द्धमान और रात्र्यर्द्धमान निरूपित होगा और यदि यह क्रान्ति दक्षिणदिग्वर्त्तिनी हो तो उक्त चरार्द्ध को यथाक्रम घटावे और जोड़े इस प्रकार—इस प्रकार करने से पूर्ववत् दिनार्द्धमान और रात्र्यर्द्धमान स्थिर होवेगा। दिनार्द्धमान और रात्र्यर्द्धमान को द्विगुण करने से दिनमान और रात्रिमान होगा। इस प्रकार नाक्षत्रिक दिन के परिमाण को जानने ही से यथाक्रम उन २ की क्रान्ति के अङ्क के साथ उन २ के विक्षेपाङ्क को जोड़े या घटावे॥ ६२। ६३॥ भभोग अर्थात् नक्षत्र के परिमाण ८०० कला और तिथि या चान्द्रदिन का परिमाण ७२० कला अभीष्ट समय के ग्रह स्फुट की राश्यादि की कला बनाकर पूर्वोक्त भभोग (८००) से भाग करने

हुवे अङ्क को ८००,से घटावे, घटाने से जो मिले उस का नाम "गम्य" है। इन दोनों अङ्कों को भिन्न भिन्न ६० से गुणा कर गुणनफल को सूर्य और चन्द्रमा की स्फुट गति की समष्टि से भाग करने से, जो फल हो वह यथाक्रम वर्त्तमान योग के गत एवं गम्य दण्डादि होंगे ॥ ६५ ॥

विवरण–विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्मा, इन्द्र, वैधृति, ये ही २७ योग एक आदि क्रम से अश्विनी आदि नक्षत्रों के योग का नाम है।

अर्कोनचन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिताः । गता गम्याश्च षष्टिघ्ना नाड्योभुक्त्यन्तरोद्धृताः ॥ ६६ ॥ ध्रुवाणि शकुनिर्नागं तृतीयं तु चतुष्पदम् । किंस्तुघ्नं तु चतुर्दश्याः कृष्णायाश्चापरार्धतः ॥ ६७ ॥ ववादीनि ततः सप्त चराख्यकरणानि च । मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणानां प्रवर्तते ॥६८॥ तिथ्यर्द्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रकल्पयेत् । एषा स्फुटगतिः प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम् ॥ ६९ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

भाषानुवाद–अभीष्ट समय में चन्द्रमा के स्फुट से सूर्य स्फुट घटाने पर जो राश्यादि बचें उन की कला बना कर तिथि भोग ७२० से भाग देवे, जो भागफल हो वह गत तिथि वा चान्द्र दिन और जो अवशिष्ट रहे, वह वर्तमान तिथि के गत (बीता) अंश, एवं इस अवशिष्ट अङ्क को ७२० से घटाने पर जो बचे वही गम्य बीतने वाला। इस गत और गम्य इन दो अङ्कों को पृथक् पृथक् ६० से गुणन कर गुणन फल को भिन्न २ दो स्थानों में रक्खे तदनन्तर चन्द्रमा की दैनिक स्फुट गति से सूर्य की दैनिक स्फुट गति घटा कर जो बचे उस से पूर्व स्थापित दोनों अङ्कों को यथाक्रम से भाग देवे, भागफल यथाक्रम से वर्तमान तिथि का गत और गम्य दण्डादि अवगत हो सकता है। ॥ ६६ ॥ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के परार्द्ध से आरम्भ होकर शुक्लपक्ष की परिवा के पूर्वार्द्ध तक क्रमशः शकुनि, नाग, चतुष्पद और किंस्तुघ्न, ये चार स्थिर करण होते हैं ॥६७॥ और ववादि ७ चर नामक करण शुक्लपक्ष की परिवा के परार्द्ध से यथाक्रम से होते हैं। ये करण प्रत्येक मास में आठ बार परिवर्त्तित

होते हैं ॥६८॥ तिथिमान का अर्द्धभाग ही प्रत्येक करण का भोग काल है। सूर्यादि की दर्शनोपयोगी गति आदि का वर्णन किया गया ॥६९॥

विवरण—किस तिथि के पूर्वार्द्ध और परार्द्ध में कौन करण होगा, यह नीचे लिखित चक्र द्वारा भली भांति ज्ञात होगा। चक्रकी प्रथम पङ्क्ति में १ से ३० तिथि अर्थात् शुक्लपक्ष की परिवा से अमावस्या तक लिखा है, द्वितीय और पञ्चम पङ्क्ति में इस २ तिथिके पूर्वार्द्ध में जो २ करण होंगे उस २ का अङ्क रक्खा गया है। और तृतीय और ६ठी पङ्क्तिमें इसर तिथि के परार्द्ध में जोर करण होंगे उस२ का अङ्क रक्खा गया है। जैसे-प्रथम पांति के एक के अङ्क में शुक्ल पक्ष की परिवा है। इस तिथि के पूर्वार्द्ध होने से द्वितीय पांति के प्रथम में "कि०" द्वारा किंस्तुघ्न करण, एव परार्द्ध होने से तृतीय पाति के १ अङ्क में बव करण होगा। इस प्रकार क्रमशः गणना करनी होगी। इन सम्पूर्ण करणों का नाम—बव, चतुष्पद्, नाग और किंस्तुघ्न है। ये ही चार करण मिल कर ११ करण होंगे। निम्नलिखित चक्र मे विष्टि के बदले में (०) शून्य और शकुनि के बदले में (श०), चतुष्पद के बदले में (च०), नाग के बदले में (ना०), किंस्तुघ्न के बदले में (किं०), ये सब लिखे हैं॥

करणों के नाम—शकुनि, चतुष्पद, नाग, किंस्तुघ्न, ये चार ध्रुव करण हैं और बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज् विष्टि; ये सात चर करण हैं॥

तिथियों के अनुसार करण ज्ञापकचक्र ॥

तिथियो के अङ्क	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	कृष्णपक्ष
तिथियों के पूर्वार्द्ध में जो करण होते हैं	कि	२	४	६	१	३	५	०	२	४	६	१	३	५	०	
तिथियों के परार्द्ध में जो करण होते हैं	१	३	५	०	२	४	६	१	३	५	०	२	४	६	१	
तिथियो के अङ्क	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	शुक्लपक्ष
तिथियों के पूर्वार्द्ध में जो अङ्क होते हैं	२	४	६	१	३	५	०	२	४	६	१	३	५	०	च०	
तिथियों के परार्द्ध में जो करण होते हैं	३	५	०	२	४	६	१	३	५	०	२	४	६	श०	ना०	

करण के जो भिन्न २ नाम हैं वह फलित ज्योतिष का विषय है और "करण" संज्ञा भी प्राचीन ग्रन्थों में अर्थात् गृह्यसूत्र और महाभारत आदि में नहीं पाई जाती परन्तु इस समय "पञ्चाङ्ग" के ५ अङ्गों में से करण एक अङ्ग माना जाता है और फलित भी महाराज इस से भी नाना प्रकार के शुभाशुभ फल की कल्पना करते हैं। देखो भूमिका॥

इति भाषानुवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥



ओ३म्

अथ तृतीयोऽध्यायः

त्रिप्रश्नाधिकारः

शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे। तत्र शङ्क्वङ्गुलैरिष्टैः समं मण्डलमालिखेत् ॥ १ ॥ तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कुं कल्पनाद्द्वादशाङ्गुलम्। तच्छायाग्रं स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापरार्धयोः ॥ २ ॥ तत्र बिन्दू विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ। तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्या दक्षिणोत्तरा ॥३॥ याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा। दिङ्मध्यमत्स्यैः संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥ ४ ॥

भाषानुवाद—जल की नाईं बराबर पत्थर पर या कठिन समक्षेत्र में इष्ट अङ्गुली के परिमाण का समवृत्त रचना करे। उस में १२ अङ्गुल का शङ्कु (काठ का दण्ड उत्तम बना हुआ) स्थापन करे उस के आगे वृत्त को पूर्वान्ह या अपरान्ह में जिस जगह छुए वहां दो पूर्वापर (पूर्वान्तिक और अपरान्हिक) बिन्दु (चिन्ह) लिखे। तिमि रेखा (दो वृत्त के छेद में उत्पन्न मछली की नाईं स्थान का नाम "तिमि" है) द्वारा उन दोनों बिन्दु के बीच दक्षिणोत्तर रेखा खैंचे, दक्षिणोत्तर के दो बिन्दुओं को केन्द्रकारक (मान कर) व्यासार्द्ध परिमाण से वृत्त खैंचे, वही तिमि होगी, उस से पूर्व और पश्चिम रेखा बनती है, दिशा के मध्य उत्त तिमि द्वारा ईशानादि (ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य, इन चार विदिशाओं का निश्चय करे) विदिशा की रेखा होगी ॥१।२।३। ४॥

चतुरस्रं बहिः कुर्यात्सूत्रैर्मध्याद्विनिर्गतैः। भुजसूत्राङ्गुलैस्तत्र दत्तैरिष्टप्रभा स्मृता ॥ ५ ॥ प्राक्पश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डलम्। उन्मण्डलञ्च विषुवन्मण्डलं परि

कीर्त्यते ॥ ६ ॥ रेखा प्राच्यपरा साध्या विपुवद्भाग्रगा तथा । इष्टच्छायाविपुवतोर्मध्यमग्राभिधीयते ॥ ७ ॥ शङ्कुच्छाया कृतियुतेर्मूलं कर्णोऽस्य वर्गतः । प्रोज्झ्य शङ्कुकृतिं मूलं छायाशङ्कुर्विपर्ययात् ॥ ८ ॥

भाषानुवाद—अभीष्ट स्थान से दिक् सम्पातरूप रेखा से निकली हुई आठों दिशाओं की रेखा द्वारा जो केन्द्र के वृत्त से बाहर है, छाया के परिमाण से वृत्त खैंचकर पूर्व पश्चिम की रेखा से वृत्त के बाहर एक सम चतुष्कोण क्षेत्र खैंचे, वृत्त में छाया के अनुसार भुज (शङ्कु के आगे की छाया की दूरता के परिमाण को भुज कहते हैं) पूर्व में या पश्चिम में उत्तर में या दक्षिण में खैंचकर भुजाग्र के साथ जहां केन्द्र का संयोग हुआ है, वहां इष्ट छाया दिशा ज्ञात हो जावेगी ॥ ५॥ पूर्वापर रेखा का नाम सममण्डल रेखा विपुवन्मण्डल रेखा और उन्मण्डल रेखा, ये तीनों नाम हैं ॥ ६ ॥ उक्त सम चतुष्कोण में विपुव छाया के परिमाण पूर्वापर रेखा से दूर उत्तर भाग में एक सम रेखा साधन करे। विपुवद् रेखा से इष्ट छाया रेखा के अन्तर को "अग्रा" कहते हैं॥७॥ शङ्कु छाया का वर्ग करे और इस शङ्कुवर्ग में शवर्ग को जोड़े। पुनः उस योगफल का वर्ग मूल निकालने से छाया कर्ण होता है । छाया कर्ण का वर्ग करे, इस को शङ्कु वर्ग से घटावे । पुनः शेष अङ्क का वर्ग मूल निकालने से छाया होगी। और उस के विपरीत करने से अर्थात् छाया कर्ण के वर्ग से छाया वर्ग घटाने से शेष फल शङ्कु वर्ग होगा ॥ ८ ॥

* त्रिंशत्कृत्यो युगेभानां चक्रं प्राक्परिलम्बते । तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद्द्युगणाद्यदवाप्यते ॥ ९ ॥ तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधाः । तत्संस्कृताद्ग्रहात्क्रान्तिच्छायाचरदलादिकम् ॥ स्फुटं दृक्तुल्यतां गच्छेदयने विपुवद्द्वये ॥ १० ॥ प्राक्चक्रं चलितं हीने छायार्कात्करणागते । अन्तरांशैरथावृत्य पश्चाच्छेषैस्तथाधिके॥११॥

* इस के टीकाकार पं० रङ्गनाथ ने लिखा है कि यह पाठ (त्रिंशत् इत्यादि) प्रामादिक है । सोमसिद्धान्त ग्रन्थ में ऐसा पाठ है कि—"युगे षट्शत कृत्वो हि भक्रं प्राग्विलम्बते" ॥

एवं विषुवती छाया स्वदेशे या दिनार्धजा। दक्षिणोत्तररेखायां सा तत्र विषुवत्प्रभा ॥ १२ ॥

भाषानुवाद–एक महायुग में भचक्र (राशिचक्र) पूर्व और पश्चिम दिशा में ६०० बार चलता है अर्थात् राशिचक्र विषुव रेखा से पश्चिम ओर २७ अंश चल कर पुनः अपनी विषुव रेखा पर (अपने स्थान पर) फिर आता है और उस स्थान से पूर्व की ओर इसी प्रकार २७ अंश जाकर पुनः अपनी विषुवरेखा पर वापिस आजाता है। इस प्रकार एक महायुग में ६०० बार जाता और आता है, इस लिये एक कल्प में ६००००० बार जाता और आता है। इसी को "अयन" कहते हैं। एवं इसी के अंश को अयनांश कहते हैं। इस ६०० को अहर्गणसे गुणा कर गुणनफलको युगके सावनदिनसे भाग देवे। भागफल भगणादि (भगण, राशि, कला, विकला) होवे। इस भागफल में से भगण को छोड़ देवे और राशि, कला, विकला जो हो उस का भुज बनावे (पूर्वोक्त रीति से) उस भुजांश को तीन से गुणा कर गुणनफल में १० से भाग देवे। भागफल अयनांश होगा। ग्रहों का अयन संस्कार करने से ग्रहों की क्रान्ति, ज्या, चर आदि स्थिर होते हैं। दोनों विषुव दिन में (दोनों उत्तरायण और दक्षिणायन की सन्धि) उक्त नियमों का अनायास निश्चय होता है ॥ ९। १० ॥ छाया द्वारा जाना हुआ सूर्य से गणित द्वारा लाया हुआ स्पष्ट सूर्य यदि न्यून हो तो चक्र (क्रान्तिवृत्त) पूर्वचारी है और छायागत सूर्य से गणितागत स्पष्ट सूर्य अधिक हो तो चक्र (क्रान्तिवृत्त) पश्चिमगामी होगा। अन्तरांश द्वारा क्रान्तिवृत्त चलता है ॥११॥ अपने अभीष्ट देश में इष्ट प्रकार से विषुव दिन के मध्यान्ह की छाया दक्षिणोत्तर रेखा में दिखाई देती है वही वहां की विषुव छाया है ॥ १२ ॥

शङ्कुच्छायाहते त्रिज्ये विषुवत्कर्णभाजिते। लम्बाक्षज्ये तयोश्चापे लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥ १३ ॥ मध्यच्छायाभुजस्तेन गुणिता त्रिभमौर्विका। स्वकर्णाप्ता धनुर्लिप्ता नतास्ता दक्षिणे भुजे ॥ १४ ॥ उत्तराश्चोत्तरे याम्यास्ताः सूर्यक्रान्तिलिप्तिकाः। दिग्भेदे मिश्रिताः साम्ये विश्लि-

ष्टाश्राक्षलिप्तिकाः ॥१५॥ ताभ्योऽक्षज्या च तद्वर्गं प्रोज्झ्य त्रिज्याकृते पदम्। लम्बज्यार्कगुणाक्षज्या विषुवद्भाथ लम्बया ॥१६॥ स्वाक्षार्कनतभागानां दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा।दिग्भेदेऽपक्रमः शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता॥१७॥

भाषानुवाद—दो स्थानों में रक्खी हुई त्रिज्या को अलग २ शङ्कु अर्थात् १२ से गुणा कर गुणनफल को विषुवच्छाया कर्ण से भाग देवे, भागफल पहिले स्थान में रक्खी हुई त्रिज्या की लम्बज्या होगी और दूसरे स्थान में रक्खी हुई त्रिज्या की अक्षज्या होगी और लम्बज्या का धनु बनाने से लम्ब होगा और अक्षज्या का धनु बनाने से अक्ष होगा ॥ १३ ॥ इष्टदिन के मध्यान्ह की छाया का नाम "भुज" है, उस को त्रिज्या से गुणा कर गुणनफल को मध्यान्ह छायाकर्ण से भाग देवे, भागफल का धनु बनावे, वही "नति" होगी, यह नतकला मध्यान्ह छाया (भुज) यदि पूर्वापर रेखा से दक्षिण में हो तो उत्तर नत कला होगी और यदि पूर्वापर रेखा से उक्त भुज उत्तर में हो तो दक्षिण नतकला होगी। उक्त नत कला और सूर्य क्रान्ति यदि एक दिशा में हों तो दोनों को एकत्र जोड़े और यदि दोनों भिन्न दिशा में हों तो एक में से दूसरे को घटावे तो योगफल वा वियोगफल स्वीय अक्ष होगा ॥ १४ । १५ ॥ उक्त अक्ष कलाओं से अक्षज्या होती है, अक्षज्या का वर्ग करे, एवं इस को त्रिज्या वर्ग से घटावे, शेष अङ्क का मूल निकाले, वही लम्बज्या होगी। अक्षज्या को १२ से गुणा कर गुणनफल में लम्बज्या का भाग देवे, भागफल विषुवच्छाया होगी ॥ १६ ॥ स्वदेश के अक्ष और इष्ट दिन के मध्यान्ह सूर्य नतांश एक दिशा में हों तो दोनों के अन्तर (घटाने से) करने से शेष फल सूर्य क्रान्ति होगी, एवं यदि दोनों भिन्न दिशा में हों तो दोनों को योग करने से योगफल सूर्य क्रान्ति होगी। इस सूर्य क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणन करे ॥१७॥

परमापक्रमज्याप्ता चापं मेषादिगोरविः। कर्कादौ प्रोज्झ्य चक्रार्धात् तुलादौ भार्धसंयुतात्॥ १८ ॥ मृगादौ प्रोज्झ्य भगणान्मध्यान्हेऽर्कः स्फुटोभवेत्। तन्मान्दमसकृद्वामं फलं मध्योदिवाकरः ॥ १९ ॥ स्वाक्षार्कापे-

क्रमयुतिदिक्साम्येऽन्तरमन्यथा । शेषं नतांशाः सूर्यस्य
तद्बाहुज्या च कोटिजा ॥ २० ॥ शङ्कुमानाङ्गुलाभ्यस्ते
भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् । कोटिज्यया विभज्याप्ते छाया
कर्णावहर्दले ॥२१॥ क्रान्तिज्या विषुवत्कर्णगुणाप्ता शङ्कु-
जीवया । अर्काग्रा स्वेष्टकर्णघ्नी मध्यकर्णोद्धृता स्वका
॥ २२ ॥ विषुवद्भायुतार्काग्रा याम्ये स्यादुत्तरो भुजः ।
विषुवत्यां विशोध्योदग्गोले स्याद्बाहुरुत्तरः ॥ २३ ॥

भाषानुवाद—उक्त गुणनफल में परम क्रान्तिज्या (१३९७) का भाग देवे, भागफल की ज्या बनावे तो मेषादि (मेष, वृष, मिथुन) राशियोंसे सायन रवि स्पष्ट होगा और उक्त भागफल ज्या कर्कटादि (कर्क सिंह कन्या) राशियो में चक्रार्द्ध से (६ राशि से) घटाने पर शेष फल मध्यान्ह काल मे स्फुट सूर्य होगा और तुलादि (तुला, वृश्चिक, धनु) राशियों में [illegible]: राशि योग करने से सायन रवि स्पष्ट होगा और मकरादि (मकर, कुम्भ, मीन) राशि में १२ राशि से वियोग करने पर सायन रवि स्पष्ट होगा । सूर्य स्पष्ट से मान्द्यफल निर्णय करके उलटी रीति से अनेक बार संस्कार करने से सूर्य मध्य होगा अर्थात् सूर्य स्पष्ट को सूर्य मध्य की भांति गणित कर मन्दोच्चादि संस्कार द्वारा मान्द्यफल लाभ होकर उलटी रीति से संस्कार करने से स्थूल सूर्य होगा । उस को मध्य जान कर मान्द्यफल पुनः उक्त रीति से सूर्य स्पष्ट में विपरीत भाव से संस्कार करे ॥ १७ । १८ । १९ ॥ स्वदेश का नतांश और

कर्ण से गुणा कर गुणनफल में त्रिज्या का भाग देवे, भागफल स्वकर्ण की अग्रा होगी ॥ २२ ॥ दक्षिण गोल में विषुवच्छाया से सूर्य के अभीष्ट कालिक कर्ण की अग्रा को जोड़े तो उत्तरभुज होगा और उत्तरगोल में विषुवच्छाया से सूर्य के अभीष्ट कालिक कर्ण की अग्रा को घटावेतो शेष फल उत्तरभुज होगा॥२३॥

विपर्ययाद्भुजो याम्योभवेत् प्राच्यपरान्तरे । माध्याह्निकोभुजोनित्यं छाया माध्याह्निकी स्मृता॥२४॥लम्बाक्षजीवे विषुवच्छायाद्वादशसंगुणे । क्रान्तिज्याप्ते तु तौ कर्णौ सममण्डलगे रवौ॥२५॥ सौम्याक्षोना यदा क्रान्तिः स्यात्तदा द्युदलश्रवः । विषुवच्छाययाभ्यस्तः कर्णो मध्याग्रयोद्धृतः ॥ २६ ॥ स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवाघ्नी लम्बज्याप्ताग्रामौर्विका । स्वेष्टकर्णहता भक्ता त्रिज्ययाग्राङ्गुलादिका ॥ २७ ॥

भाषानुवाद—यदि सूर्य से अभीष्ट कालिक कर्ण की अग्रा विषुवच्छाया न घट सके तो विषुव छाया को अभीष्ट कालिक सूर्य के कर्ण की अग्रा, को घटावे, शेषफल दक्षिण भुज होगा । पूर्वापर रेखा के मध्य में दक्षिण , और उत्तरभुज होता है और मध्यान्ह कालिक छाया का नाम भुज है ॥ २४ ॥ लम्बज्या को विषुव छाया से गुणा कर गुणनफल में क्रान्तिज्या का भाग देवे, भागफल यदि सम मण्डलस्थ सूर्य हो तो "छाया" होगी । पुनः अक्षज्या को १२ से गुणा कर गुणनफल में क्रान्तिज्या का भाग देवे । भागफल यदि सम वृत्तस्थ सूर्य हो तो छाया कर्ण होगा ॥ २५ ॥ यदि उत्तर क्रान्ति अक्ष, से न्यून हो तो समवृत्तस्थ सूर्य की साधित क्रान्ति मध्याह्न कर्ण को विषुवछाया से गुणा कर गुणनफल में मध्याह्न कर्ण की अग्रा का भाग देवे, भागफल सम मण्डलस्थ ग्रह का छाया कर्ण होगा ॥२६॥ इष्ट कालिक क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा कर गुणनफल को लम्बज्या से भाग देवे, भागफल अग्रा होगी, उस को अपने इष्ट कर्ण से गुणा कर गुणनफल में त्रिज्या से भाग देवे, भागफल अङ्गुलादिक होंगे ॥ २७ ॥

त्रिज्यावर्गार्धतोऽग्रज्या वर्गोनाद् द्वादशाहतात् । पुनर्द्वा-

दशनिघ्नाच्च लभ्यते यत् फलं बुधैः ॥२८॥ शङ्कुवर्गार्द्धसंयुक्तविषुवद्वर्गभाजितात्। तदेव करणी नाम तां पृथक् स्थापयेद्बुधः ॥२९॥ अर्कघ्नी विषुच्छायाग्रज्यया गुणिता तथा। भक्ता फलाख्यतद्वर्गसंयुक्तकरणीपदम् ॥३०॥ फलेन हीनसंयुक्तं दक्षिणोत्तरगोलयोः। याम्ययोर्विदिशोः शङ्कुरेवं याम्योत्तरे रवौ ॥३१॥ परिभ्रमति शङ्कोस्तु शङ्कुस्तत्रयोस्तु सः। तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं दृग्ज्याभिधीयते ॥३२॥ स्वशङ्कुना विभज्याप्ते दृक्त्रिज्ये द्वादशाहते। छायाकर्णौ तु कोणेषु यथास्वं देशकालयोः ॥३३॥

भाषानुवाद–त्रिज्या वर्ग के आधे से (५९०८८२४) पूर्व प्रकार छाया हुआ तात्कालिक अग्रज्या वर्ग को घटाकर वियोगफल को १४४ से गुणा कर गुणन फल को विषुवछाया में ७२ मिला कर वर्ग करे, इस वर्ग से उक्त गुणनफल में भाग देवे, भागफल "करणी" होगी। इस को अलग एक स्थान में रख छोड़े ॥२८।२९॥ विषुवछाया को १२ से गुणा करे गुणनफल को अग्रज्या से गुणा कर गुणनफल को ७२ मिला कर विषुवछाया के वर्ग से भाग देवे, भागफल "फल" होगा। इस फल के वर्ग और करणी को एकत्र जोड़े, पुन इस का वर्गमूल निकाले, इस वर्गमूल को दक्षिण गोल में "फल" से घटावे और उत्तर गोल में "फल" में जोड़े तो योग या वियोग फल कोण शङ्कु होगा। 'सूर्य दक्षिण में हो तो कोणशङ्कु दक्षिणदिशा के दो कोणों में (आग्नेय, नैर्ऋत्य=विदिशा) और सूर्य उत्तर गोल में हो तो कोण शङ्कु उत्तर के दो कोणों (ईशान, वायव्य=विदिशा) में ॥३०।३१॥ उस का वर्ग और त्रिज्या वर्ग का अन्तर (बाकी घटाने पर) का वर्गमूल निकालने से दृग्ज्या होगी। दृग्ज्या को १२ से गुणा कर गुणनफल को और त्रिज्या को १२ से गुणा कर गुणनफल को क्रम से कोण कटाङ्कु से भाग देने से भागफल इष्ट स्थान में इष्ट स्थान की छाया (पहिला फल) होगी और कर्ण होगा (दूसरे का फल) ॥३२॥ उत्तर दिशा में सूर्य होने पर त्रिज्या से चरज्या को योग करे, योगफल "अन्त्या" होगी। दक्षिणगोल में सूर्य हो तो त्रिज्या से चरज्या को घटावे। शेष फल

"अन्त्या" होगी। मध्यान्ह से इष्ट काल घटाने पर वियोग फल का अर्थात् (अंश, कला) बनाने से "नत" होगा, नत के अनुसार उत्क्रमज्या अन्त्य से घटाकर वियोगफल को अपने अहोरात्रार्ध व्यास से गुणा करे ॥ ३३ ॥

त्रिज्योदक्चरजायुक्ता याम्यायां तद्विवर्जिता । अन्त्या नतोत्क्रमज्योना स्वाहोरात्रार्धसंगुणा॥३४॥ त्रिज्याभक्ता भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नोऽथभाजितः। त्रिभज्ययाभवेच्छङ्कु-स्तद्वर्गं परिशोधयेत् ॥ ३५ ॥ त्रिज्यावर्गात्पदं दृग्ज्या छायाकर्णौ तु पूर्ववत् । अभीष्टच्छाययाभ्यस्ता त्रिज्या तत्कर्णभाजिता ॥ ३६ ॥ दृग्ज्या तद्वर्गसंशुद्धात् त्रिज्या वर्गाच्च यत्पदम् । शङ्कुःसत्रिभजीवाघ्नः स्वलम्बज्याविभाजिताः ॥ ३७ ॥ छेदः सत्रिज्ययाभ्यस्तः स्वाहोरात्रार्द्धभाजितः । उन्नतज्या तया हीना स्वान्त्या शेषस्य कार्मुकम् ॥ ३८ ॥

भाषानुवाद—उक्त गुणनफल को त्रिज्या (३४३८) से भाग देवे, भागफल छेद होगा। छेद को लम्बज्या से गुणा कर, गुणन फल को त्रिज्या से भाग देवे, भागफल इष्ट काल का शङ्कु होगा। त्रिज्या वर्ग (११८१९८४४) से उस शङ्कु वर्ग (१४४) को घटाने से शेष फल का वर्गमूल निकाले तो दृग्ज्या होती है। इस से छाया और कर्ण पूर्वोक्त रीति से स्थिर होता है ॥३३। ३४। ३५। अभीष्ट कालिक छाया को त्रिज्या से गुणा कर, गुणनफल को छाया कर्ण से भाग देवे, भागफल दृग्ज्या होगी। इस के वर्ग को त्रिज्या वर्ग से घटावे और शेष अङ्क का वर्ग मूल निकालने से शङ्कु होगा। उस शङ्कु को त्रिज्या से गुणा कर गुणनफल को अपनी लम्बज्या से भाग करे, भागफल "छेद" होगा। उस छेद को त्रिज्या से गुणाकर गुणनफल को स्वाहोरात्रार्द्ध से भाग करे, भागफल को स्वीय "अन्त्य" से घटाने पर शेष "उन्नतज्या" होगी, उस का धनु करे ॥ ३६। ३७ ॥

उत्क्रमज्याभिरेवं स्युः प्राक्पश्चार्धनतासवः ॥ ३८ ॥ इष्टाग्राघ्नी तु लम्बज्या स्वकर्णाङ्गुलभाजिता। क्रान्तिज्या सा

त्रिजीवाघ्नी परमापक्रमोद्धृता । तच्चापं भादिकं क्षेत्रं पदैस्तत्र भवेोरविः ॥३९॥ इष्टेऽह्नि मध्ये प्राक् पश्चाद्धृते बाहुत्रयान्तरे । मत्स्यद्वयान्तरयुते त्रिस्पृक्सूत्रेण भाभ्रमः ॥४०॥ त्रिभद्युकर्णार्धगुणाः स्वाहोरात्रार्धभाजिताः। क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक् पृथक् । स्वाधोधः परिशोध्याथ मेषाल्लङ्कोदयासवः ॥४१॥खागाष्टयोऽर्थगोऽगैकाः शरत्र्यङ्कहिमांशवः ॥

भावानुवाद–उन्नत ज्या के परिमाण से धनु बनाने पर पूर्वार्द्ध और अपरार्द्ध नति प्राण स्थिर होगा ॥ ३८ ॥ इष्ट भुजा से लम्बज्या को गुणा कर गुणनफल को अपनी कर्णाङ्गुल संख्या से भाग देवे, भागफल सूर्य की क्रान्तिज्या होगी, उस को त्रिज्या से गुणा कर गुणन फल में परमापक्रमज्या से भाग करे, भागफल ज्या का धनु (राश्यादि) करने से (यदि यह बात मालूम हो कि चक्र के विषमपद या समपद में) सायन सूर्य स्फुट होगा॥३९॥ अभीष्ट दिन को पूर्वापर सूत्र के मध्यस्थान से ३ चिन्ह करके मत्स्यद्वय गत रेखा के संयोग स्थान से तीन चिन्ह को स्पर्श करता हुआ तीन वृत्त खींचने से छाया शेष का भ्रमण मार्ग निर्णीत होगा ॥४०॥ एक दो और तीन राशि की ज्या को क्रमशः तीन राशि के द्युज्या (१३९७) द्वारा गुणा करके स्व स्व राशि के अहोरात्रार्द्ध ज्या द्वारा भागकर धनु निश्चय करे । प्रथम द्विराशि के फल से प्रथम वियोग और त्रिराशि फल से द्विराशि फल घटाकर कला मेषादि का लङ्कोदय प्राण होगा । प्राण संख्या मेष १६७०, वृष १७९३,मिथुन १९३५ ॥४१॥

स्वदेशचरखण्डोना भवन्तीष्टोदयासवः ॥ ४२ ॥ व्यस्ता व्यस्तैर्युताः स्वैः स्वैः कर्कटाद्यास्ततस्त्रयः ॥४३॥ उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टा तुलादयः ॥ ४४॥ गतभोग्यासवः कार्य्याभास्करादिष्टकालिकात् । स्वोदयासुहता भुक्तभोग्याभक्ताः स्ववह्निभिः ॥ ४५ ॥ अभीष्टघटिकासुभ्यो भो-

ग्यासून्प्रविशोधयेत् । तद्वत्स्वदेश्यलग्नासूनेवं यातांस्त-
थोत्क्रमात् ॥ ४६ ॥ शेषं चेत्त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभा-
जितम् । भागहीनं च युक्तं च तल्लग्नं क्षितिजे तदा॥४७॥

भाषानुवाद–उस से स्वदेश चरखण्डा वियोग करने से इष्ट देश का उदय प्राण होगा ॥४२॥ पश्चिम से क्रम से लङ्कोदय प्राण के साथ पश्चिम से चर खण्डा योग करने से कर्कादि उदय प्राण होगा ॥ ४३ ॥ मेषादि छः राशि के उदय प्राण पश्चिम से तुलादि के उदयप्राण होंगे ॥ ४४ ॥ उदय मान द्वारा तात्कालिक (सायन) रविस्पष्ट के गत और भोग्य प्राण होंगे ॥४५॥ स्वाभीष्ट घटिका के प्राण से भोग्य घटावे । फिर क्रम २ से पिछली पिछली राशियों के प्राण जब तक घट न सकें इसी प्रकार करता जावे ॥ ४६ ॥ शेष को ३० से गुणा कर गुणन फल में शोध्य राशि की प्राणसंख्या से भाग देने से जो अंशादि हो उसको गत राशिकी संख्या में जोड़ने से (सायन) लग्न स्पष्ट होगा ॥४७॥

प्राक्पश्चान्नतनाडीभिस्तस्माल्लङ्कोदयासुभिः।भानौ क्षय-
धने कृत्वा मध्यलग्नं तदा भवेत्॥४८॥भोग्यासूनूनकस्याथ
भुक्तासूनधिकस्य च । संपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेवं स्यात्
कालसाधनम् ॥४९॥ सूर्याद्गूने निशाशेषे लग्नेऽर्कादधिके
दिवा । भचक्रार्धयुताद्भानोरधिकेऽस्तमयात्परम् ॥ ५० ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भाषानुवाद–उक्त प्रकार से पश्चात् नत प्राण लङ्कोदय प्राण खण्डा लेकर रविस्फुट में ऋण और योग करने से मध्य वा दशम लग्न स्थिर होगा ॥४८॥ लग्न और रवि स्पष्ट के मध्य में न्यून का भोग्य और अन्य का भुक्त एवं इन दोनों के मध्य स्थित राशि गण के प्राण संख्या को एकत्र करने से जो प्राण संख्या होगी, उस से काल साधित होगा ॥ ४९ ॥ लग्नस्पष्ट सूर्यस्फुट से न्यून होने से निशा शेष और अधिक होने से दिन में और छः राशि युक्त सूर्य से लग्न अधिक हो तो सन्ध्या के पीछे होगा ॥ ५० ॥

इति भाषानुवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥



ओ३म्

अथ चतुर्थोऽध्यायः

अथ चन्द्रग्रहणाधिकारः

सार्धानि षट्सहस्राणि योजनानि विवस्वतः। विष्कम्भो मण्डलस्येन्दोः सहाशीत्या चतुःशतम् ॥१॥ स्फुटस्वभुक्त्या गुणितौ मध्यभुक्त्योद्धृतौ स्फुटौ। रवेः स्वभगणाभ्यस्तः शशाङ्कभगणोद्धृतः ॥ २ ॥ शशाङ्ककक्षागुणितो भाजितो वार्ककक्षया। विष्कम्भश्चन्द्रकक्षायां तिथ्याप्ता मानलिप्तिकाः ॥ ३ ॥ स्फुटेन्दुभुक्तिर्भूव्यासगुणिता मध्ययोद्धृता। लब्धं सूचीमहीव्यासस्फुटार्कश्रवणान्तरम् ॥४॥ मध्येन्दुव्यासगुणितं मध्यार्कव्याससभाजितम्। विशोध्य लब्धं सूच्या तु तमोलिप्तास्तु पूर्ववत् ॥५॥

भाषानुवाद-सूर्यमण्डल अर्थात् सूर्य के बिम्ब व्यास का परिमाण ६५०० योजन और चन्द्रमा के बिम्ब व्यास का परिमाण ४८० योजन है, इन को क्रम से सूर्य के बिम्ब व्यास को सूर्य की स्पष्ट गति से गुणा कर, गुणनफल में सूर्य की मध्य गति से भाग दे, भागफल सूर्य के स्फुट बिम्ब व्यास का परिमाण होगा। इसी प्रकार चन्द्रमा के बिम्ब व्यास को चन्द्रमा की स्पष्टगति से गुणा कर गुणनफल में चन्द्रमा की मध्य गति का भाग दे, भागफल चन्द्रमा के स्फुट व्यास का परिमाण होगा ॥१॥ सूर्य के स्पष्ट व्यास को अपने भगण (पृ०३८) से गुणा कर, गुणनफल में चन्द्रमा के भगण का भाग दे, या चन्द्रमा की कक्षा योजन संख्या से गुणा कर, गुणनफल में सूर्य की कक्षा योजन संख्या का भाग दे, भागफल चन्द्रमा की कक्षा में अर्थात् चन्द्राधिष्ठित आकाश गोल में सूर्य स्पष्ट व्यास का परिमाण होगा। इस के पश्चात् सूर्य स्पष्ट बिम्ब व्यास की योजन संख्या को १५ से भाग दे, भागफल सूर्य के बिम्ब व्यास की कला होंगी

उस चन्द्रमा के स्पष्ट बिम्ब व्यास योजन संख्या को १५ से भाग दे, भागफल चन्द्रमा के स्पष्ट बिम्ब व्यास की कला होगी॥ २ । ३ ॥ चन्द्रमा की स्पष्ट गति को पृथिवी के व्यास (१६००) से गुणा कर गुणनफल में चन्द्रमा की मध्य गति का भाग दे, भागफल "सूची" होगी। पृथिवी के स्पष्ट व्यास को सूर्य के स्पष्ट बिम्ब व्यास से घटावे, जो अवशिष्ट हो, उस को चन्द्रमा के मध्य व्यास (४८०) से गुणा कर, गुणनफल में सूर्य के मध्य व्यास योजन संख्या का भाग दे, भागफल को उक्त "सूची" से घटाने पर शेष अङ्क "तमव्यास" संख्या होगी। इस को पहिले की नाईं १५ से भाग दे, भागफल तम व्यास की कला होगी॥ ४ । ५ ॥

भानोर्भार्धे महीच्छाया तत्तुल्येऽर्कसमेऽपि वा। शशाङ्क-
पाते ग्रहणं कियद्भागाधिकोनके॥६॥ तुल्यौ राश्यादि-
भिः स्याताममावास्यान्तकालिकौ। सूर्येन्दू पौर्णमास्यन्ते
भार्धे भागादिकौ समौ ॥ ७ ॥ गतैष्यपर्वनाडीनां स्वफ-
लेनोनसंयुतौ। समलिप्तौ भवेतां तौ पातस्तात्कालिकोऽन्यथा ॥ ८ ॥ छादको भास्करस्येन्दुरधःस्थो घनवद्भ-
वेत्। भूच्छायां प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥९॥
तात्कालिकेन्दुविक्षेपं छाद्यच्छादकमानयोः। योगार्धात्
प्रोज्झ्य यच्छेषं तावच्छन्नं तदुच्यते ॥ १० ॥

भाषानुवाद—सूर्य से ६ राशि दूर अर्थात् १८० अंश पर पृथिवी की छाया स्थित है। चन्द्रपात या छाया (भूछाया) सूर्य के बराबर राशि अंश में यदि अवस्थित हो तो ग्रहण का सम्भव होगा। उक्त परिमाण से न्यून या अधिक होने पर भी ग्रहण होगा॥ ६ ॥ अमावस्या के अन्त काल में सूर्य और चन्द्रमा की राशि अंश कलादि बराबर होती हैं और पूर्णमासी के अन्त में सूर्य और चन्द्रमा में १८० अंश (६ राशि) का अन्तर (फरक) हो जाता है अर्थात् अमावास्या को सूर्य के अधोभाग में चन्द्रमा आजाता है और पूर्णमासीको चन्द्रमा और पृथिवी की छाया समसूत्रस्थ हो जाती है और सूर्य १८० अंश पर रहता है ॥ ७ ॥ मध्य रात्रिक स्पष्ट (अ० १ । ६७ श्लोक) राश्यादि (राशि,

तद्ग्राह्यमधिके तस्मिन्सकलं न्यूनमन्यथा।योगार्धादधिके न स्याद्विक्षेपे ग्राससम्भवः ॥ ११ ॥ ग्राह्यग्राहकसंयोगवियोगौ दलितौ पृथक्। विक्षेपवर्गहीनाभ्यां तद्वर्गाभ्यामुभे पदे ॥ १२ ॥ षष्ट्या संगुण्य सूर्येन्द्वोर्भुक्त्यन्तरविभाजिते। स्यातां स्थितिविमर्दार्धे नाडिकादिफले तयोः ॥ १३ ॥ स्थित्यर्धनाडिकाभ्यस्ता गतयः षष्टिभाजिताः। लिप्तादिप्रग्रहे शोध्यं मोक्षे देयं पुनःपुनः ॥१४॥ तद्विक्षेपैः स्थितिदलं विमर्दार्धं तथा सकृत्। संसाध्यमन्यथा पाते तल्लिप्तादिफलं स्वकम् ॥१५॥

भाषानुवाद–जो ग्राह्यमान ग्रहबिम्ब से "छादकमान" अधिक हो तो 'खग्रास" वा सम्पूर्ण ग्रहण होगा (सर्वग्रास) और ग्राह्य मान से "छादकमान" न्यून हो तो, न्यून ग्रहण किया जावेगा। और ग्राह्य और ग्राहकमान को जोड़ कर, आधा करने पर यदि वह आधा विक्षेप से न्यून हो तो, ग्रहण नहीं होगा। ग्रहण दो प्रकार का है एक सर्वग्रास वा सम्पूर्ण ग्रहण, और दूसरा आंशिक वा खण्ड ग्रहण होता है ॥ ११ ॥ ग्राह्यमान और ग्राहकमान को एकत्र जोड़े, पुनः उस जोड़े हुए अङ्क को आधा कर एक स्थान में रक्खे और ग्राह्यमान से ग्राहकमान को घटावे, जो शेष अङ्क हो उस को दूसरे स्थान में रक्खे। एवं पहिले रक्खे हुवे योगार्द्ध का वर्ग करे, इसी प्रकार दूसरे स्थान में रक्खे हुए वियोगार्द्ध का वर्ग करे, और योगार्द्ध वर्ग से विक्षेप वर्ग को घटावे, इसी प्रकार वियोगार्द्ध वर्ग से विक्षेप वर्ग को घटावे, और दोनों घटा हुए वर्ग का भिन्न वर्ग मूल निकाले, पुनः उन दो वर्ग मूलों को भिन्न ६० से गुणा करे, गुणनफल में सूर्य की स्पष्टगति से चन्द्रमा की स्पष्टगति को घटावे, घटाने से जो फल हो, उस के दोनो भिन्न २ स्थापित गुणनफल में भाग दे, भागफल क्रम से योगार्द्ध का फल स्थूलस्थित्यर्द्ध दण्डादि और वियोगार्द्ध का फल स्थूल विमर्दार्ध दण्डादि होंगे ॥ १२। १३ ॥ सूर्य चन्द्रमा और पात (राहु) की गति को स्थित्यर्द्ध दण्ड से गुणा कर, गुणनफल में ६० का भाग देवे, भागफल कलादि स्पर्श में सूर्य और चन्द्रमा के घटावे और मोक्ष

में सूर्य और चन्द्रमा में जोड़े, और पात में इस के विपरीत करे अर्थात् मोक्ष में पात से घटावे और स्पर्श में पात में जोड़े उस से अर्थात् तात्कालिक चन्द्रमा और उस के पात द्वारा लाई हुई शर कला से स्थित्यर्द्ध निर्णय करे जबतक निश्चय न हो बारम्बार इसी प्रकार करता जावे ॥१४॥१५॥

स्फुटतिथ्यवसाने तु मध्यग्रहणमादिशेत्। स्थित्यर्धनाडिकाहीने ग्रासोमोक्षस्तु संयुते ॥१६॥ तद्वदेव विमर्दार्धनाडिकाहीनसंयुते। निमीलनोन्मीलनाख्ये भवेतां सकलग्रहणे ॥ १७ ॥ इष्टनाडीविहीनेन स्थित्यर्धेनार्कचन्द्रयोः। भुक्त्यन्तरं समाहन्यात् षष्ट्याप्ताः कोटिलिप्तिकाः ॥ १८ ॥ भानोर्ग्रहे कोटिलिप्ता मध्यास्थित्यर्धसङ्गुणाःस्फुटस्थित्यर्ध सम्भक्ताः स्फुटाः कोटिकलाःस्मृताः ॥ १९ ॥ क्षेपोभुजस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रवस्तु तत्। मानयोगार्धतःप्रोज्झ्य ग्रासस्तात्कालिको भवेत् ॥ २० ।

भाषानुवाद–स्पष्ट तिथि के अन्त में मध्यग्रहण होता है। उस से सूक्ष्म स्थित्यर्द्ध दण्ड घटाने पर स्पर्श (ग्रास) काल होता है और स्पष्ट तिथि के अन्त में सूक्ष्म स्थित्यर्द्ध दण्ड जोड़ने से मोक्ष काल होता है ॥१६॥ इसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रहण में (१६ श्लोक में जैसा कहा है) सूक्ष्म विमर्द्दार्ध घटिका मध्यग्रहण समय से घटावे तो निमीलन काल होगा और मध्यग्रहण समय में सूक्ष्म विमर्द्दार्द्ध दण्ड जोड़े तो उन्मीलन काल होगा। सम्पूर्ण ग्रहण में "स्पर्श" को "निमीलन" और " मोक्ष " को "उन्मीलन" कहते हैं ॥१७॥ सूर्य और चन्द्रमा की गति के (परस्पर घटा कर) अन्तर कला से ग्रहणारम्भ से इष्ट दण्डादि घटाकर शेष अङ्क को स्थित्यर्द्ध से गुणा करे, गुणन फल में ६० का भाग दे, भाग फल कोटि कला होगी ॥१८॥ सूर्य ग्रहण में पूर्वोक्त प्रकार से लाई हुई कोटि कला को स्थित्यर्ध से गुणा करे, गुणन फल में स्फुट स्थित्यर्द्ध का भाग देवे, भागफल स्फुट कोटि कला होगी ॥१९॥ विक्षेप के वर्ग और कोटि फल के वर्ग को एकत्र जोड़े, पुनः इस का वर्गमूल निकाले, वही मूल कारण होगा। चन्द्रमा और सूर्य के मान

को एकत्र जोड़ कर इस का आधा करे। इस आधे से कर्ण को घटावे। शेष अङ्क तात्कालिक होगा ॥ २० ॥

मध्यग्रहणतश्चोर्ध्वमिष्टनाडीर्विशोधयेत्। स्थित्यर्धान्मौक्षिकाच्छेषं प्राग्वच्छेषं तु मौक्षिके ॥२१॥ ग्राह्यग्राहकयोर्योगार्धाच्छोध्याः स्वच्छन्नलिप्तिकाः। तद्वर्गात् प्रोज्झ्य तत्कालविक्षेपस्य कृतिम्पदम् ॥ २२ ॥ कोटिलिप्तारवेः स्पष्टस्थित्यर्धेनाहताहताः। मध्येन लिप्तस्तन्नाड्यः स्थितिवद्ग्रासनाडिकाः ॥२३॥ नतज्याक्षज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्ता तस्य कार्मुकम्। वलनांशाःसौम्ययाम्याः पूर्वापरकपालयोः ॥२४॥ राशित्रययुताद् ग्राह्यात् क्रान्त्यंशैर्दिवसमैर्युताः। भेदेऽन्तराज्ज्यावलनासप्तत्यङ्गुलभाजिता ॥ २५ ॥ सोन्नतं दिनमध्यर्धं दिनार्धाप्तं फलेन तु। छिन्द्याद्विक्षेपमानानि तान्येषामङ्गुलानि तु ॥२६॥

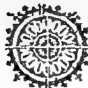
इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

भाषानुवाद—मध्य ग्रहण के अनन्तर मौक्षिक स्थित्यर्द्ध से इष्ट नाडी घटा कर कोटि स्थिर करे और शेष क्रिया पूर्वोक्त (श्लोक १८ में जैसा कहा है) रीति से करे ॥ २१ ॥ ग्राह्य और ग्राहक के मान को एकत्र जोड़े और योग फल को आधा करे। उस आधे से अभीष्ट ग्रास की कला को घटावे, शेष अङ्क को वर्ग करे। वर्ग फल से अभीष्ट ग्रास कालिक विक्षेप के वर्ग को घटावे, शेष अङ्क का वर्गमूल निकाले वही कोटि कला होगी ॥ २२ ॥ परन्तु सूर्यग्रहण में कोटि कला स्पष्ट स्थित्यर्द्ध से गुणा कर गुणन फल में मध्य स्थित्यर्द्ध से भाग करे, भाग फल कोटि कला होगी। उस से जिस प्रकार " स्थिति " का साधन किया जाता है, अर्थात् जिन नियमों से स्थिति का निश्चय करते हैं, उसी प्रकार ग्रास नाडी को स्थिर करना चाहिये ॥२३॥ जिस काल का वलन स्थिर करना हो उस काल के नत का निर्णय करे। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा का एवं सूर्य ग्रहण में सूर्य का नत स्थिर करे। स्वदिनार्द्धोत्सर्गत

दण्ड पूर्व नत दण्ड एवं स्वदिनार्द्ध से न्यून दण्ड पश्चिम नत दण्ड होता है। उस नत को ९० से गुणा कर गुणन फल में स्वदिनार्द्ध से भाग दे, भाग फल नतांश होगा, उस की ज्या, नत ज्या होती है, उस को अभीष्ट अक्षज्या से गुणा कर, गुणन फल में त्रिज्या से भाग दे, भाग फल ज्या को धनु बनावे-ग्रह-वलनांश होगा, उस को ६० से भाग देवे, भागफल क्रम से पूर्वापर कपाल के पूर्वापर नत का पूर्व का उत्तर वलनांश एवं पश्चिम का उत्तर वलनांश होगा ॥ २४ ॥ जिस काल का वलनांश लाना हो उस काल के ३ राशियुक्त ग्राह्य से ग्रह स्फुट की क्रान्ति निर्देश करे। वलनांश और यदि एक दिशा में हो तो योग करे, और यदि भिन्न दिशा में हो तो घटावे तो स्फुट वलन होगा। स्फुट वलन ज्या को ७० अङ्गुल से भाग दे, भागफल अङ्गुलादिक वलन ग्रस्त ग्रह का होगा ॥२५॥ दिनमान में स्वीय अर्द्ध और अभीष्ट काल की उन्नत घटिका के साथ योग करे, योगफल को दिनार्द्ध से भाग दे, जो भाग फल हो उस से कलात्मक विक्षेप ग्राह्य और ग्राहक बिम्बमान प्रभृति को भाग करने से भाग फल, अङ्गुलादि होंगे ॥ २६ ॥

इति भाषानुवादे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥





ओ३म्

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अथ सूर्यग्रहणाधिकारः

मध्यलग्नसमे भानौ हरिजस्य न सम्भवः। अक्षोदङ्मध्यमक्रान्तिसाम्येनावनतेरपि ॥ १ ॥ देशकालविशेषेण यथा वनतिसम्भवः। लम्बनस्यापि पूर्वान्यदिग्वशाच्च तथोच्यते ॥२॥ लग्नं पर्वान्तनाडीनां कुर्यात्स्वैरुदयासुभिः। तज्ज्यान्त्यापक्रमज्याघ्नी लम्बज्याप्तोदयाभिधा॥३॥ तदा लङ्कोदयैर्लग्नं मध्यसंज्ञं यथोदितम्। तत्क्रान्त्यक्षांशसंयोगो दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ॥४॥ शेषं नतांशस्तन्मौर्विमध्यज्या साभिधीयते।

भाषानुवाद—अमावास्या के अन्त काल में यदि सूर्य स्फुट और मध्य लग्न (अ० ३। ४८) तुल्य हो तो लम्बन का सम्भव नहीं होता है अर्थात् उस समय लम्बन नहीं होता। उत्तर अक्षांश और दृक्षम लग्न की क्रान्ति समान हो तो अवनति (नति) की भी सम्भावना नहीं होती, अर्थात् उस समय नति नहीं होती है ॥ १ ॥ देश और काल की विशेषता से जो गोल स्थित द्वारा जिस प्रकार नति की सम्भावना या उत्पत्ति होती है और मध्य रेखाके पूर्व या पश्चिम में होने के कारण जो लम्बन होता है सो इस समय कहा जाता है ॥ २ ॥ स्वदेशीय उदय माण से पर्वान्त(अमावास्या या पूर्णमासी) काल की (सायन) स्थिर करे। उस की भुजज्या को परमापक्रमज्या (१३९७) से गुणा कर, गुणनफल में स्वदेशीय लम्बज्या का भाग दे, भागफल को "उदय" कहते हैं ॥ ३ ॥ पर्वान्त काल में लङ्का के उदय माण से (सायन) मध्य लग्न साधन करे। मध्यलग्न की क्रान्ति और अक्षांश एक दिशा मे हों तो योग करे और यदि भिन्न दिशा में हो तो घटावे,शेष अङ्क नतांश होता है। उस की ज्या करने से मध्यज्या होती है ॥ ४ ॥

मध्योदयज्ययाभ्यस्ता त्रिज्याप्ता वर्गितं फलम् ॥ ५ ॥ मध्यज्या वर्गविश्लिष्टं दृक्क्षेपः शेपतः पदम् । तत्त्रिज्यावर्गविश्लेषान्मूलं शङ्कुः स दृग्गतिः ॥ ६ ॥ नतांशबाहुकोटिज्ये स्फुटे दृक्क्षेपदृग्गती । एकज्यावर्गतश्छेदो लब्धं दृग्गतिजीवया ॥ ७॥ मध्यलग्नार्कविश्लेषज्या छेदेन विभाजिता । रवीन्द्वोर्लम्बनं ज्ञेयं प्राक्पश्चाद् घटिकादिकम् ॥ ८ ॥ मध्यलग्नाधिके भानौ तिथ्यन्तात् प्रविशोधयेत् । धनमूनेऽसकृत्कर्म यावत्सर्वं स्थिरीभवेत् ॥ ९ ॥ दृक्क्षेपः शीततिग्मांशोर्मध्यभुक्त्यन्तराहतः। तिथिघ्नत्रिज्यया भक्तो लब्धं सावनतिर्भवेत् ॥१०॥ दृक्क्षेपात् सप्ततिहृताद्भवेद्वावनतिः फलम् । अथवा त्रिज्यया भक्तात्सप्तसप्तकसङ्गुणात् ॥ ११ ॥

भाषानुवाद—पूर्वोक्त मध्यज्या को पूर्वानीत उदयज्या से गुणा करे,गुणन फल को त्रिज्या से भाग दे, भागफल को वर्ग करे । वर्गफल को मध्यज्या के वर्ग से घटावे शेष अङ्क का वर्ग मूल निकाले, वही मूल दृक्क्षेप होगा । इस दृक्क्षेप वर्ग से त्रिज्या वर्ग घटाकर शेष अङ्क का मूल निकाले, वही मूल दृग्गति होगी ॥ ५ । ६ ॥ स्थूल पक्ष में दशम लग्न के नतांश की भुजज्या को दृक्क्षेप कहते हैं और कोटिज्या को दृग्गति कहते हैं ॥ ७ ॥ एक राशि के ज्या के वर्ग को दृग्गति (पूर्वोक्त ज्या) से भाग करे, भागफल "छेद" होगा । मध्यलग्न से उस काल के सूर्य को घटाकर उस की ज्या बनावे, इस ज्या में छेद का भाग दे, भागफल दण्डादि मध्यलग्न से पूर्व और पश्चिम निश्चय कर सूर्य से चन्द्रमा के लम्बन दण्डादि स्थिर होंगे ॥ ८ ॥ मध्यलग्न से सूर्य अधिक हो तो तिथ्यन्त से काल लम्बन घटावे और यदि न्यून हो तो जोड़े । पुनः लम्बन साधन करके तिथ्यन्त में संस्कार करे । जब तक स्थिर न हो तब तक ऐसा ही करता जावे ॥ ९ ॥ दृक्क्षेप (पूर्वानीत) को सूर्य की गति से चन्द्रमा की भुक्ति घटाकर, शेष अङ्क से गुणा कर गुणनफल में १५ गुणित त्रिज्या से (त्रिज्या

ओ३म्

अथ षष्ठोऽध्यायः

परिलेखाधिकारः ॥

न छेद्यकमृते यस्माद्भेदा ग्रहणयोः स्फुटाः। ज्ञायन्ते तत्प्रवक्ष्यामि छेद्यकज्ञानमुत्तमम् ॥ १ ॥ सुसाधितायामवनौ विन्दुं कृत्वा ततो लिखेत्। सप्तवर्गाङ्गुलेनादौ मण्डलं वलनाश्रितम् ॥ २ ॥ ग्राह्यग्राहकयोगार्धसम्मितेन द्वितीयकम्। मण्डलं तत्समासाख्यं ग्राह्यार्धेन तृतीयकम् ॥ ३ ॥ याम्योत्तरप्राच्यपरासाधनं पूर्ववद्दिशाम्। प्रागिन्दोर्ग्रहणं पश्चान्मोक्षोऽर्कस्य विपर्ययात् ॥ ४ ॥ यथादिशं प्राग्ग्रहणं वलनं हिमदीधितेः। मौक्षिकं तु विपर्यस्तं विपरीतमिदं रवेः ॥ ५ ॥

भाषानुवाद–छेद्यक (गोल स्थिति को दिखलाने के लिये कल्पित प्रकार) के विना सूर्यग्रहण और उस की स्पर्श और मोक्ष दिशा और परिमाण का स्पष्ट ज्ञान नहीं होता अर्थात् सूर्य और चन्द्रग्रहण में बिम्ब मण्डल के किस ओर से ग्रहण आरम्भ हो कर किस ओर समाप्त होगा और कितना भाग मण्डल का आच्छादित (ग्रहण) होगा, यह विषय विना छेद्यक के भली भांति नहीं ज्ञात होगा इस लिये उत्तम ज्ञानसाधक छेद्यक को कहता हूं ॥ १ ॥ जल की नांई बराबर की हुई भूमि (अभीष्ट स्थान) में वृत्त मध्य विन्दु अर्थात् केन्द्र ज्ञापक चिन्ह (point) करे, पुनः उस विन्दु से ४९ अङ्गुल परिमित व्यासार्द्ध से, "वलन" देने के लिये एक वृत्त लिखे ॥ २ ॥ ग्राह्य और ग्राहक के बिम्बमान की अङ्गुलियों के आधे परिमित, व्यासार्द्ध से दूसरा वृत्त लिखे। इस का नाम समास वृत्त होगा। और ग्राह्य के बिम्बमान के अङ्गुलियों के अर्ध परिमित व्यासार्द्ध से तीसरा वृत्त लिखे ॥ ३ ॥ पूर्ववत् (अ० ३। श्लो० १४

वक्र) आठ दिशाओं में से याम्योत्तर एवं पूर्वापर रेखा अर्थात् दक्षिण उत्तर रेखा एवं पूर्व और पश्चिम को गई रेखा को साधन करे। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा के बिम्बमण्डल की पूर्व ओर स्पर्श (ग्रहण आरम्भ) एवं पश्चिम ओर मोक्ष (ग्रहण समाप्त) होता है और सूर्यग्रहण में इस के विपरीत होता है अर्थात् सूर्यमण्डल के पश्चिम भाग में स्पर्श एवं पूर्व भाग में मोक्ष होता है ॥४॥

विवरण–शीघ्रगामी चन्द्रमा सूर्यसे छः राशि (१८० अंश) अन्तर में पूर्व की ओर चलता२ पृथिवी की छाया में आजाता है इस कारण चन्द्रग्रहण में पहिले पूर्व दिशा से (मण्डलके) म्लान होता है। एवं पश्चिम दिशा में मोक्ष होता है। और सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को पीछे आकर ढक लेता है इस लिये सूर्य के पश्चिम दिशा में स्पर्श और पूर्वभाग में मोक्ष होता है ॥४॥

चन्द्रमा के ग्रास्य स्पार्शिक वलन को पूर्व चिन्ह से दक्षिण हो तो दक्षिण में, उत्तर हो तो उत्तराभिमुख देवे। पूर्व और पश्चिम सूत्र (रेखा) अर्द्धज्या की नांई वलनाश्रित वृत्त में वलन देवे, (इस लिये उस वृत्त की वलनाश्रित वृत्त संज्ञा है) चन्द्रमा के मोक्ष कालिक वलन को विपरीत भाव से पश्चिम चिन्ह से पूर्वापर सूत्र से अर्द्ध ज्या की नांई दक्षिण हो तो उत्तराभिमुख, उत्तर हो तो दक्षिणाभिमुख वलन देवे । सूर्यग्रहण में चन्द्रग्रहण की अपेक्षा उलटे प्रकार से वलनदान होगा। मोक्ष कालिक वलन पूर्व चिन्ह से पूर्वापर सूत्र से अर्द्ध ज्या की नांई दक्षिण हो तो दक्षिणाभिमुख, उत्तर हो तो उत्तराभिमुख देना। स्पर्श कालिक वलन, पश्चिम चिन्ह से पूर्वापर सूत्र (रेखा) अर्द्ध ज्या की नाई दक्षिण हो तो उत्तराभिमुख, उत्तर हो तो दक्षिणाभिमुख देना ॥५॥

वलनाग्रान्नयेन्मध्यं सूत्रं यदत्र संस्पृशेत् । तत्समासे
ततो देयौ विक्षेपौ ग्रासमोक्षिकौ ॥ ६ ॥ विक्षेपाग्रात्
पुनःसूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् । तद्ग्राह्यविन्दुसंस्प-
र्शाद्ग्रासमोक्षौ विनिर्दिशेत् ॥७॥ नित्यशोऽर्कस्य विक्षे-
पाः परिलेखे यथादिशम् । विपरीताः शशाङ्कस्य तद्व-
शादथ मध्यमम् ॥ ८ ॥ वलनं प्राङ्मुखं देयं तद्विक्षेपै-
कता यदि। भेदे पश्चान्मुखं देयमिन्दोर्भानोर्विपर्ययात्

॥ ९ ॥ वलनाग्रात्पुनःसूत्रं मध्यविन्दुं प्रवेशयेत् । मध्य सूत्रेण विक्षेपं वलनाभिमुखं नयेत् ॥ १० ॥

भाषानुवाद–वलनाग्र (प्रथम वृत्त में जहां स्पार्शिक वलनाग्र और जहां मौक्षिक वलनाग्र जाना गया है) से मध्यविन्दु (केन्द्ररूप) तक सूत्र (रेखा) रचना करे। इस रेखा को समास नामक द्वितीय वृत्त में जिस प्रदेश में स्पर्श (छुए) करे, उस रेखा से समास वृत्त में अर्द्ध ज्या की नाईं, स्पर्श और मोक्ष का विक्षेप यथायोग्य देना ॥ ६ ॥ समास वृत्त में विक्षेपाग्र से जिस स्थान में ग्राह्यवृत्त को स्पर्श किया है, वहां से रेखा को द्वितीय वार वलनाग्र से रेखा में मध्य केन्द्र तक उसी प्रकार विक्षेपाग्र से मध्य विन्दु तक रेखा प्रवेश करे। उस रेखा से ग्राह्य विम्ब के वृत्त और परिधि के संयोग स्थान से ग्रास और मोक्ष दिखलावे, स्पार्शिक शराग्ररेखा को ग्राह्यवृत्त में जहां पर मिला हुआ है वहां स्पर्श और मौक्षिक शराग्ररेखा को ग्राह्य वृत्त में जहां संयोग हुआ है, वहां मोक्ष कहे ॥७॥ सूर्यग्रहण के परिलेख (ग्रहण को दिखलाने के लिये कल्पित प्रकार) में नित्य ही चन्द्रमा के विक्षेप अपनी ठीक दिशा में होते हैं। और चन्द्रग्रहण में चन्द्र विक्षेप यदि विपरीत दिशा में हों तो अर्थात् दक्षिण में हों तो उत्तर और उत्तर में हों तो दक्षिण विक्षेप होते हैं। इसी के अनुसार स्पार्शिक और मौक्षिक विक्षेप देवे, (यह उदाहरण विपरीत दिशा का दिया गया है) तत्पश्चात् मध्य ग्रहण कालिक दिशा के साथ सूर्यग्रहण में मध्य ग्रहण कालिक स्पष्ट विक्षेप दिक् चिन्ह से और चन्द्रग्रहण में मध्य कालिक विपरीत दिक् चिन्ह से, यदि उस विक्षेप को एकता हो तो वलन विक्षेप मध्यग्रहण कालिक विक्षेप है। आशय यह है कि इन दोनों की एक दिशा होगी। (यहां चन्द्र विक्षेप दिशा का यथा दिक् स्थित होना ही विपरीत दिशा जानना)

विक्षेपाग्राल्लिखेद्वृत्तं ग्राहकार्धेन तेन यत् । ग्राह्यवृत्तं समाक्रान्तं तद् ग्रस्तं तमसा भवेत् ॥ ११ ॥ छेद्यकं लिखता भूमौ फलके वा विपश्चिता। विपर्ययो दिशां कार्यः पूर्वापरकपालयोः ॥ १२ ॥ स्वच्छत्वाद् द्वादशांशोऽपि ग्रस्तश्चन्द्रस्य दृश्यते। लिप्तात्रयमपि ग्रस्तं तीक्ष्णत्वान्न वि-

वस्वतः ॥१३॥ स्वसंज्ञिताख्यः कार्या विक्षेपाग्रेषु बिन्दवः।
तत्र ग्राह्यमध्ययोर्मध्ये तथा मौक्षिकमध्ययोः ॥ १४ ॥

भाषानुवाद–मध्यकालिक वलनाग्र से मध्यबिन्दु तक रेखा रचना करे। इस रेखा पर मध्यबिन्दु से पुनः वलनाभिमुख विक्षेप का चिन्ह करे। ग्राहक के मान को आधा करे। उस आधे परिमाण को व्यासार्द्ध के साथ विक्षेपाग्र के चारों ओर वृत्त कल्पना करने से जो वृत्त होगा वह वृत्त ग्राह्य वृत्त में जितना व्याप्त हो वही तमसावृत अर्थात् उतना भाग मण्डल का ग्राहक से आच्छादित होकर अन्धकार से घिर जावेगा ॥ १० । ११ ॥ समतल भूमि में या फलक (काठ की पट्टी) पर छेद्यक लिख कर पूर्वापर कपाल लौट पौट करे अर्थात् पूर्व कपाल में बाएँ ओर से पश्चिम लिखना और पश्चिम कपाल में बाएं ओर से पूर्व लिखना, यह तो ठीक क्रम से हुआ। परन्तु इस को बदल कर करना कि पूर्व के स्थान में पश्चिम और पश्चिम के स्थान में पूर्व लिखना ॥ १२ ॥ चन्द्रमा की स्वच्छता के कारण चन्द्रमण्डल के १२ अंश ग्रहण होने पर भी हम लोग देखते हैं। परन्तु सूर्य की किरणों की प्रखरता से ३ कला का सूर्य ग्रहण भी हम लोगों को नहीं दिखलाई देता ॥ १३ ॥ विक्षेपाग्रों में स्पार्शिक विक्षेप मौक्षिक विक्षेप एवं माध्य विक्षेपों का पहिले अपने अपने स्थान में स्पर्श मोक्ष और मध्यग्रहण जानने के लिये अग्रिम भाग में अपने २ नाम का साङ्केतिक ३ बिन्दु लिखे। जैसे–स्पर्श शर के अग्रभाग में स्पर्श चिन्हाङ्कित बिन्दु, मोक्ष शर के आगे मो० चि० बिन्दु, एवं मध्यशर के आगे म० चि० बिन्दु लिखे। इस प्रकार तीनों बिन्दुओं को स्थापन करे ॥१४॥

लिखेन्मत्स्यौ तयोर्मध्यान्मुखपुच्छविनिःसृतम्। प्रसार्य सूत्रद्वितयं तयोर्यत्र युतिर्भवेत् ॥ १५ ॥ तत्र सूत्रेण विलिखेच्चापं बिन्दुत्रयस्पृशा। स पन्था ग्राहकस्योक्तो येनासौ सम्प्रयास्यति ॥ १६ ॥ ग्राह्यग्राहकयोगार्धात् प्रोज्झ्येष्टग्रासमागतम्। अवशिष्टाङ्गुलसमां शलकां मध्यबिन्दुतः ॥१७॥ तयोर्मार्गोन्मुखींदद्याद्ग्रासतः प्राग्ग्रहाश्रिताम्। विमुञ्चतो मोक्षदिशि ग्राहकाध्वानमेव सा ॥१८॥ स्पृशे-

तत्र ततोवृत्तं ग्राहकार्धेन संलिखेत् । तेन ग्राह्यादयदाक्रान्तं तत्तमोग्रस्तमादिशेत् ॥१९॥

भाषानुवाद—स्पर्श और मध्यबिन्दु के द्वारा (अ० ३ श्लोक २ । ३) और मोक्ष एवं मध्यबिन्दु द्वारा दो मत्स्य अङ्कित करे और दोनों मत्स्य रेखाओं के बीच से उन के मुख और पुच्छ से निकलती हुई दो रेखा खैंचे । जहां इन दो रेखाओं का संयोग हो उस को केन्द्र मान कर उक्त तीन बिन्दुओं को छूता हुआ एक धनुष् बनावे । वह धनुष् ही ग्राहक का मार्ग होगा । अर्थात् जिस मार्ग से ग्राहक ग्राह्य बिम्ब को आच्छादन के लिये जावेगा ॥ १५ । १६ ॥ ग्राह्य और ग्राहक मान को एकत्र जोड़े, पुनः इस के आधे से इष्ट ग्रास घटा कर जो बचे, उस परिमाण से मध्यबिन्दु से रेखा उसी मार्ग की ओर खैंचे । मध्य-ग्रहण के पूर्व होने पर स्पर्श दिशा में और मध्यग्रहण के पश्चिम दिशा में होने पर मोक्षाभिमुख एक रेखा लावे। रेखान्त बिन्दु को केन्द्र मान कर ग्राहक मान के आधे परिमाण से सम्यक्रूप। एक वृत्त रचना करे, यह वृत्त और ग्राह्य वृत्त दोनोंके अधिकृत अंश ही तत्कालीन आच्छादित अंश हैं ॥१७।१८।१९॥

मानान्तरार्धेन मितां शलाकां ग्रासदिङ्मुखीम् । निमीलनाख्यां दद्यात् सा तन्मार्गे यत्र संस्पृशेत् ॥२०॥ ततोग्राहकखण्डेन प्राग्वन्मण्डलमालिखेत् । तद्ग्राह्यमण्डलयुतिर्यत्र तत्र निमीलनम् ॥ २१ ॥ एवमुन्मीलने मोक्षदिङ्मुखीं सम्प्रसारयेत् । विलिखेन्मण्डलं प्राग्वदुन्मीलनमथोक्तवत् ॥२२॥ अर्धादूने सधूम्रं स्यात्कृष्णमर्धाधिकं भवेत् । विमुञ्चतः कृष्णताम्रं कपिलं सकलग्रहे ॥ २३ ॥ रहस्यमेतद्देवानां न देयं यस्य कस्य चित् । सुपरीक्षितशिष्याय देयं वत्सरवासिने ॥ २४ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

भाषानुवाद—ग्राह्य मान से ग्राहकमान को घटावे, शेष फल के आधे परिमाण की एक शलाका ग्रास दिशा में उस मार्ग पर स्थापन करे और उस

के अग्र भाग को केन्द्र कर ग्राहकमान के परिमाण का वृत्त खेंचे । उस वृत्त में जहां पर वह मण्डल को छुवे उसी दिशा में निमीलन आरम्भ होगा ॥२० । २१ ॥ इस प्रकार से मोक्ष दिशा की ओर उक्त शलाका को स्थापन करके पूर्ववत् अर्थात् जहां पर मण्डल स्पर्श करे "वही उन्मीलन" दिशा होगी ॥२२॥ चन्द्रग्रहण में ग्रास आधे से न्यून होने पर धूम्रवर्ण, आधे से अधिक होने पर काला रक्त, जब मण्डल का तीन हिस्सा तो काला और लाल मिला हुआ रक्त, और संपूर्ण ग्रास होने पर मण्डल कपिलवर्ण (जर्द रक्त) होगा । एवं मोक्ष काल में लाल काला मिला हुआ रक्त होता है ॥ २३ ॥

विवरण–भूमि की छाया में कोई प्रकाश नहीं, इस कारण चन्द्रमाकी आच्छादिका होने पर चन्द्रग्रहण में अनेक प्रकार के रक्त दीखते हैं और चन्द्रमा जलस्वरूप सूर्य का आच्छादक होता है । इसकारण सूर्यग्रहण में सदा काला रक्त होता है, दूसरा रक्त नहीं होता । इस कारण यहां सूर्य ग्रहणका रक्त नहीं कहा गया ॥ २३ ॥

यह छेद्यक ज्ञान का तत्त्व विद्वानों के लिये रहस्य है, इस लिये जिस किसी अपरीक्षित (जिस की भलीभांति ज्योतिष विद्या में तीक्ष्ण बुद्धि न पाई जाये) सर्वसाधारण व्यक्ति को इस का उपदेश न करना चाहिये । किन्तु एक वर्ष तक जिस विद्यार्थी की परीक्षा ले ली है, उसी शिष्य को इस का उपदेश करना चाहिये ॥ २४ ॥

इति भाषानुवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ओ३म्

अथ सप्तमोऽध्यायः

तारा ग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्धसमागमौ । समागमः शशाङ्केन सूर्येणास्तमनं सह ॥१॥ शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगोभवितान्यथा । द्वयोः प्राग्यायिनोरेवं वक्रिणो-स्तुविपर्ययात् ॥२॥ प्राग्यायिन्यधिकेऽतीतोवक्रिण्येष्यः समागमः । ग्रहान्तरकलाःस्वस्वभुक्तिलिप्ता समाहताः ॥ ३ ॥ भक्त्यन्तरेण विभजेदनुलोमविलोमयोः । द्वयो-र्वक्रिण्यथैकस्मिन् भुक्तियोगेन भाजयेत् ॥ ४ ॥ लब्धं लिप्तादिकं शोध्यं गते देयं भविष्यति । विपर्ययाद्वक्र-गत्योरेकस्मिंस्तु धनव्ययौ ॥ ५ ॥

भाषानुवाद-तारा और पांच ग्रहों अर्थात् मङ्गल, बुध बृहस्पति, शुक्र, और शनि के परस्पर योग (एक के साथ दूसरे का मिलना) का नाम "युद्ध" और "समागम" कहते हैं। चन्द्रमा के साथ उक्त पांचो ग्रहों में से किसी एक ग्रह के योग का नाम "समागम" और सूर्य के साथ उक्त पांचों ग्रहों में से किसी एक ग्रह के योग का नाम "अस्तमन" है ॥ १ ॥ जिन दो ग्रहों का "योग" जानना हो उन में से यदि शीघ्रगामी ग्रह मन्दगामी ग्रह की अपेक्षा अधिक हो तो "योग" गत (हो गया अभीष्ट काल से पहिले) और मन्दगामी ग्रह शीघ्रगामी ग्रह की अपेक्षा अधिक हो तो "योग" भावी (इष्ट काल के पीछे होगा) जानना । यह नियम दो पूर्वगामी ग्रहों के लिये है और वक्रगामी ग्रहों का तो उस के उलटा होता है, अर्थात् वक्री मन्दगामी ग्रह की अपेक्षा वक्री शीघ्रगामी ग्रह अधिक हो तो "योग" भावी और वक्रीशीघ्रगामीग्रह की अपेक्षा वक्रीमन्दगामी ग्रह अधिक हो तो "योग" गत जानना और दोनों ग्रहों में से एक वक्री, एवं दूसरा पूर्वगामी ग्रह हो तो वक्रीग्रह से पूर्वगामी

ग्रह अधिक हो तो "योग" गत और पूर्व गामीग्रह से मन्दगामी ग्रह अधिक हो तो "योग" भावी जानना ॥ २ ॥ दो (जिन का योग) इष्टकालिक ग्रहों की अन्तर कला को (एक की कला को दूसरे की कला से घटा कर) अलग अलग अपनी २ गति कला द्वारा गुणा कर, गुणनफल में दोनों सरलगामी या वक्रगामी हों उन की स्फुटगति के अन्तर कला (घटाकर) का भाग देवे । अब इस में विशेषता यह है कि यदि दोनों ग्रहों में से एक वक्री हो तो दोनों के गति कला के योग से भाग देवे और अपने २ भागफल कलादिक को योगगत हो तो सरलगामी ग्रहों से घटावे और योग भावी हो तो दोनों में योग करे और दोनों वक्रगामी ग्रहों के अपने २ भागफल कलादिको योग गत हो तो जोड़े और भावी हो तो घटावे । दोनों ग्रह में से एक ग्रह वक्री हो तो दोनों सरलगामी एवं वक्रगामी ग्रहों के अपने २ कलात्मक फलाङ्क को योग और वियोग करे, अर्थात् योग गत होने पर सरलगामी ग्रह से फल को घटावे और वक्रीग्रह में फल को जोड़े और यदि योग भावी हो तो वक्री ग्रह से फल को घटावे, एवं सरलगामी ग्रह में जोड़े ॥ ३ । ४ । ५ ॥

समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहौ भगणसंस्थितौ । विवरं तद्वदुद्धृत्य दिनादि फलमिष्यते ॥६॥ कृत्वा दिनक्षपामानं तथा विक्षेपलिप्तिकाः । नतोन्नतं साधयित्वा स्वकालग्नवशात्तयोः ॥ ७ ॥ विषुवच्छाययाभ्यस्ता द्विक्षेपाद्द्वादशोद्धृतात् । फलं स्वनतनाडीघ्नं स्वदिनार्धविभाजितम् ॥ ८ ॥ लब्धं प्राच्यामृणं सौम्याद्विक्षेपात्पश्चिमे धनम् । दक्षिणे प्राक्कपाले स्वं पश्चिमे तु तथा क्षयः ॥९॥ सत्रिभग्रहजक्रान्तिभागघ्नाः क्षेपलिप्तिकाः । विकलाः स्वमृणं क्रान्तिक्षेपयोर्भिन्नतुल्ययोः ॥ १० ॥

भाषानुवाद—उक्त क्रिया पर दोनों ग्रहों की राशि चक्र में संस्थिति (क्रम) अर्थात् राशि, अंश, कला समान होंगी । "योग" काल ... से दोनों ग्रहों की अन्तर कला को पूर्वोक्त हारक द्वारा प्राप्त करने ...

फल जो दिनादि होगा वह समकला काल से इष्ट काल के अन्तर दिनादि होगा ॥६॥ दोनो समकलाकालीन ग्रहो का दिनमान, रात्रिमान और विक्षेप कला का निश्चय करके,ग्रहस्थानगत लग्न से नत और उन्नत का निश्चय करे॥७॥

विवरण–अ० ३। श्लोक ४९ के अनुसार ग्रहो के दिनगत,रात्रिगत का निश्चय करे। दिन में जो भाग बीत गया,तथा बीतने वाला है उसके अर्थात् गत और गम्य के अल्प भाग का नाम "उन्नत" और दिन और रात्रि से न्यून अर्थात् दिन के आधे या रात्रि के आधे की ग्रह का "नत" होता है। जिस अंश में ग्रह स्थित है उस के उदय (लग्न) का समय स्थिर करके उस से ग्रह का मध्योदय काल ग्रह का दिनार्द्धमान योग करने से निकल आता है। मध्योदय काल निपत हो जाने पर इष्टग्रह की पृथकृता से नतोन्नत अनायास ज्ञात हो जाते हैं ॥ ७ ॥

विक्षेप को विषुवच्छाया से गुणा कर,गुणनफल को १२ से भाग करे, भाग फल को अपने नतदण्ड से गुणा कर, गुणनफल में दिनार्द्ध (रात्रि में रात्र्यर्द्ध से) का भाग देवे,भागफल अक्षदृग् ग्रह होगा। इस फल को उत्तर विक्षेप होने से पूर्व कपाल में अक्षदृग् ग्रह स्पष्ट से घटावे और पश्चिम कपाल में जोड़े और यदि दक्षिण विक्षेप हो तो उत्तर भागफल,को पूर्व कपाल में योग और पश्चिम कपाल में घटावे ॥८। ९॥ तीन राशि मिले हुवे ग्रह स्पष्ट के अनुसार लाये हुवे क्रान्ति के अंश से विक्षेप कला को गुणा करे। गुणनफल विकला (आयन दृक्कर्म की) होगी। पूर्वोक्त क्रान्ति और विक्षेप यदि भिन्न २ दिशा में हो तो ग्रह में योग करे और यदि दोनो एक दिशा में हो तो ग्रह में घटावे ॥१०॥

नक्षत्रग्रहयोगेषु ग्रहास्तोदयसाधने। शृङ्गोन्नतौ तु चन्द्रस्य दृक्कर्मादाविदं स्मृतम् ॥११॥ तात्कालिकौ पुनः कार्यौ विक्षेपौ च तयोस्ततः। दिक्तुल्ये त्वन्तरं भेदे योगः शिष्टं ग्रहान्तरम् ॥ १२ ॥ कुजार्किज्ञामरेज्यानां त्रिंशदर्धार्धवर्धिताः । विष्कम्भाश्चन्द्रकक्षायां भृगोःषष्टिरुदाहृताः ॥ १३ ॥ त्रिचतुष्कर्णयुक्त्याप्तास्ते द्विघ्नास्त्रिज्यया हृताः। स्फुटाः स्वकर्णास्तिथ्याप्ता भवेयुर्मानलिप्तिकाः ॥ १४ ॥

भाषानुवाद-नक्षत्र और ग्रह के योग जानने के लिये ग्रहों के उदयास्त के निमित्त चन्द्रमा की शृङ्गोन्नति के निमित्त नक्षत्रों के उदयास्त निमित्त पूर्ववत् पहिले आक्षदृक् एवं आयन दृक्कर्म करे। (यहां नक्षत्रों का आयन दृक्कर्म हो चुका है। इस लिये नक्षत्रों का आयन दृक्कर्म न करे) ॥११॥ पुनः उसी प्रकार (श्लोक २। ३। ६) मध्य और स्पष्टादि क्रिया द्वारा दोनों को तात्कालिक करे, इन के विक्षेप को भी तात्कालिक करे, यदि इस से भी दोनों ग्रह समकलाकालीन न हों तो अनेक बार इसी प्रकार करता जावे, जब स्थिर हो जावे तो यदि विक्षेप एक दिशा में हो तो वियोग करे और भिन्न दिशा में हो तो योग करने पर ग्रहान्तर अर्थात् दोनों ग्रहों के बिम्ब और केन्द्र का उत्तर, एवं दक्षिण सिद्ध होगा ॥१२॥ चन्द्रमा की कक्षा में मङ्गल का बिम्ब व्यास ३०, शनि का बिम्ब व्यास ३७½, बुध का बिम्ब व्यास ४५, बृहस्पति का बिम्ब व्यास ५२½, शुक्र का ६० बिम्ब व्यास है। इन बिम्ब व्यासों को द्विगुणित त्रिज्या से गुणा कर गुणनफल में त्रिज्या और चतुर्थ कर्म में शीघ्र कर्ण में जोड़ कर योगफल से भाग देवे, भागफल स्वस्पष्ट बिम्ब व्यास होगा। इस स्पष्ट व्यास को १५ से भाग करे, भागफल कलादिमान होगा ॥१३। १४॥

छायाभूमौ विपर्यस्ते स्वच्छायाग्रे तु दर्शयेत्। ग्रहः स्वदर्पणान्तस्थः शङ्क्वग्रे सम्प्रदृश्यते ॥ १५ ॥ पञ्चहस्तोच्छ्रितौ शङ्कू यथादिग्भ्रमसंस्थितौ। ग्रहान्तरेण विक्षिप्तावधोहस्तनिखातगौ ॥ १६ ॥ छायाकर्णौ ततो दद्याच्छायाग्राच्छङ्कुमूर्धगौ। छायाकर्णाग्रसंयोगे संस्थितस्य प्रदर्शयेत् ॥ १७ ॥ स्वशङ्कुमूर्धगौ व्योम्नि ग्रहौ दृक्तुल्यतामितौ। उल्लेखं तारकास्पर्शाद्भेदे भेदः प्रकीर्त्यते युद्धमंशुविमर्दाख्यमंशुयोगे परस्परम् ॥ १८ ॥ अंशादूनेऽपसव्याख्यं युद्धमेकोऽत्र चेदणुः। समागमोंऽशादधिके भवतश्चेद्बलान्वितौ ॥ १९ ॥

भाषानुवाद-छाया देने के लिये बराबर किये हुई भूमि में शङ्कु स्थापन करके ग्रह के दूसरी दिशा में दृग्ज्या से छायाग्र दिखलावे। छायाग्र में दर्पण (आइना) रखने से दर्पणान्तर स्थित ग्रह और शङ्कु के आगे सम सूत्र में दिखाई देगा ॥ १५ ॥ पांच २ हाथ की लम्बी (२४ अङ्गुल का एक हाथ) दो शङ्कु (काष्ठ का सकोमल बनाया हुआ दण्ड) को युति काल में दोनों ग्रह अपने स्थान से जिधर को हों उसी ओर दक्षिण और उत्तर रेखा के बीच एक अङ्गुल अन्तर में भूमि में एक हाथ गहरा करके गाड़ देवे। जिस से दोनों शङ्कु चार हाथ ऊपर को खड़ी रहें। छायाग्र से शङ्कु के ऊर्ध्वाग्र तक दो छाया निर्णय करे। छाया और कर्णाग्र रेखा में स्थित मनुष्य को ग्रह दिखलावे, वह भी शंकु के आगे ग्रह को देखेगा ॥ १६। १७ ॥ भौमादि (मङ्गल बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर) पांच ग्रहों के परस्पर योग में ग्रहस्पर्श से बिम्बनेमि स्पर्शमात्र का नाम "उल्लेख" युद्ध है। दोनों ग्रहों के मान के एक खण्ड के तुल्य दक्षिण और उत्तर में मण्डल भेद होने से "भेद" नामक युद्ध होता है। परस्पर दोनों की किरणें यदि मिलजावें तो "अंशुविमर्द" नामक युद्ध होता है। दोनों के दक्षिण उत्तर अंश से ६० कलात्मक से एक अंश भी न्यून पार्थक्य होने पर "अपसव्य" नामक युद्ध होता है। इस अपसव्य युद्ध में दोनों ताराओं में से यदि एक तारा छोटी है तो प्रकाशयुद्ध होता है और दोनों यदि समान हों तो अप्रकाश युद्ध होता है। दक्षिण और उत्तर अन्तर में ६० भाग में से एक भाग अधिक होने पर "समागम" होता है, परन्तु यदि दोनों ग्रह बलवान् (स्थूल मण्डल तथा स्थूल बिम्ब वाले) हों तो समागम प्रकाश होगा और यदि ऐसा न हो तो समागम अप्रकाश होगा ॥ १८। १९ ॥

अपसव्ये जितो युद्धे पिहितोऽणुरदीप्तिमान् । रूक्षोविवर्णो विध्वस्तो विजितो दक्षिणाश्रितः ॥ २० ॥ उदक्स्थोदीप्तिमान्स्थूलो जयीयाम्येऽपि योबली ॥२१॥ आसन्नावप्युभौ दीप्तौ भवतश्चेत्समागमः । स्वल्पौ द्वावपि विध्वस्तौ भवेतां कूटविग्रहौ ॥२२॥ उदक्स्थो दक्षिणस्थो वा भार्गवः प्रायशोजयी । शशाङ्केनैवमेतेषां

कुर्यात्संयोगसाधनम् ॥ २३ ॥ भावाभावाय लोकानां कल्पनेयं प्रदर्शिता । स्वमार्गगाः प्रयान्त्येते दूरमन्योन्यमाश्रिताः ॥ २४ ॥

इति सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥

भाषानुवाद–दोनों ग्रहों में से एक दूसरे से विध्वस्त होजावे उस को पराजित जानना । अपसव्य युद्ध में थोड़ी प्रभावाला ढका हुआ छोटे बिम्ब वाला ग्रह पराजित होता है । यह ग्रह रूखा, विवर्ण, प्रभारहित और दक्षिणस्थ होता है ॥ २० ॥ अन्य ग्रह की अपेक्षा उत्तर दिक्स्थ ग्रह प्रकाशयुक्त स्थूलबिम्ब और जयी होता है । दक्षिण दिशा में बलवान् होने पर ग्रह जयी होता है ॥ २१ ॥ दोनों ग्रह दीप्तिमान् होकर निकट एक भाग में आजायं तो "समागम" युद्ध होता है । जो दोनों ही थोड़ी दीप्ति वाले और विध्वस्तबिम्ब हों तो "कूटविग्रह" (कूट और विग्रह) नामक युद्ध होता है ॥ २२ ॥ उत्तर दिशा में या दक्षिण दिशा में हो, शुक्र प्रायः इतर ग्रहों की अपेक्षा दोनों ही दिशाओं में जयी होता है । मङ्गलादि पांच ग्रहों का चन्द्रमा के साथ संयोग काल पूर्वोक्त रीति से साधन करे ॥ २३ ॥ ग्रहगण परस्पर दूरस्थित अपनी २ कक्षा में चलते हैं । वे कभी २ इकट्ठे चलते दीखपड़ते हैं । इस कारण मनुष्यों के ज्ञान के लिये उन ग्रहों के युतिविषयक नियम दिखलाये गये ॥ २४ ॥

इति भाषानुवादे सप्तमोध्यायः ॥ ७ ॥



ओ३म्

अथाष्टमोऽध्यायः

प्रोच्यन्ते लिप्तिकाभानां स्वभोगोथ दशाहतः। भवन्त्यतीतधिष्ण्यानां भोगलिप्तियुता ध्रुवाः॥ १ ॥ अष्टार्णवाः शून्यकृताः पञ्चषष्टिर्नगेषवः। अष्टार्था अब्धयोऽष्टागा अङ्गागा मनवस्तथा ॥२॥ कृतेषवो युगरसाः शून्यबाणा वियद्रसाः। खवेदाः सागरनगा गजागाः सागरर्तवः ॥३॥ मनवोऽथ रसा वेदा वैश्वमाप्यार्धभोगगम्। आप्यस्यैवाभिजित्प्रान्ते वैश्वान्ते श्रवणस्थितिः ॥४॥ त्रिचतुःपादयोः संधौ श्रविष्ठा श्रवणस्य तु। स्वभोगतो वियन्नागाः षट्कृतिर्यमलाश्विनः ॥५॥ रन्ध्रादयः क्रमादेषां विक्षेपाः स्वाःपदक्रमात्। दिङ्मासविषयाः सौम्ये याम्ये पञ्च दिशोनव ॥६॥ सौम्ये रसाः खं याम्ये गाः सौम्ये खार्कास्त्रयोदश। दक्षिणे रुद्रयमलाः सप्तत्रिंशदथोत्तरे॥ ७ ॥ याम्येऽध्यर्धत्रिककृता नवसार्धशरेषवः। उत्तरस्यां तथा षष्टिस्त्रिंशत्षट्त्रिंशदेव हि ॥ ८ ॥ दक्षिणेत्वर्धभागस्तु चतुर्विंशतिरुत्तरे। भागाःषड्विंशतिः खंच दस्रादीनां यथाक्रमम् ॥ ९ ॥

भाषानुवाद—उत्तराषाढा, अभिजित, श्रवण और धनिष्ठा, इन चार नक्षत्रों को छोड़ कर अन्यान्य नक्षत्रों की कला संख्या कही जाती है। प्रत्येक नक्षत्र के वक्ष्यमाण भोगाङ्क को १० से गुणा कर, गुणनफल में अश्विन्यादि गत नक्षत्रों की भोग कला की समष्टिसंख्या को जोड़े अर्थात् प्रतिनक्षत्र भोग ८०० कला के अनुसार अभीष्ट नक्षत्र (जिस नक्षत्र का ध्रुव जानना हो) पर्यन्त जितने नक्षत्र हों उन की समष्टि (योग) जोड़े, पुनः जोड़ने से जो योग फल हो वही नक्षत्रों का अपना २ ध्रुव (द्राघिमा) होगा ॥ १ ॥

भाषानु०—२—९ श्लोकतक अर्थ निम्नलिखित चक्रद्वारा लिखागया है:—

अनुक्रम संख्या	नक्षत्रों का नाम	स्वभोग	ध्रुव			विक्षेप		
		कला	राशि	अंश	कला	अंश	दिशा	
२३	धनिष्ठा	०	९	२०	०	३६	उत्तर	श्रवणा के तृतीय एवं चतुर्थ पादकी सन्धिमें है॥
२४	शतभिषक्	८०	१०	२०	०	॥	द०	
२५	पूर्वाभाद्रपदा	३६	१०	२६	०	२४	उ०	
२६	उत्तराभाद्रपदा	२२	११	३७	०	२६	”	
२७	रेवती	५९	११	२९	५०	०		ठीक क्रान्ति वृत्त रेखा पर है वि० शून्य॥

नक्षत्र योग तारा का कदम्बाभिमुख भोग | नक्षत्र योग तारा का कदम्बाभिमुख श॰

अनुक्रम संख्या	नक्षत्र	भोग		शरदिशा	शर	
		अंश	कला		अंश	कला
१	अश्विनी	११	५०	उत्तर	९	११
२	भरणी	२४	३५	उत्तर	११	६
३	कृत्तिका	३९	८	उत्तर	४	४४
४	रोहिणी	४९	९	दक्षिण	४	५९
५	मृगशीर्ष	६१	३	दक्षिण	९	५९
६	आर्द्रा	६५	५०	दक्षिण	८	५३
७	पुनर्वसु	९२	५२	उत्तर	६	०
८	पुष्य	१०६	०	उत्तर	०	०
९	आश्लेषा	१०९	५९	दक्षिण	६	५६
१०	मघा	१२९	०	उत्तर	०	०
११	पूर्वाफल्गुनी	१३९	५८	उत्तर	११	१९
१२	उत्तराफल्गुनी	१५०	१०	उत्तर	१२	५
१३	हस्त	१७४	२२	दक्षिण	१०	६
१४	चित्रा	१८०	४८	दक्षिण	१	५०
१५	स्वाति	१८३	२	उत्तर	३३	५०
१६	विशाखा	२१३	२१	दक्षिण	१	२५
१७	अनुराधा	२२४	४५	दक्षिण	२	५२

अनुक्रम संख्या	नक्षत्र	भोग		शरदिशा	शर	
		अंश	कला		अंश	कला
१८	ज्येष्ठा	२२९	७	दक्षिण	३	५८
१९	मूल	२४१	४२	दक्षिण	८	४८
२०	पूर्वाषाढ़ा	२५५	३९	दक्षिण	५	२८
२१	उत्तराषाढ़ा	२६०	२३	दक्षिण	४	४९
	अभिजित्	२६४	१०	उत्तर	५९	५८
२२	श्रवण	२८८	२९	०	२९	५४
२३	धनिष्ठा	२९६	५	उत्तर	३५	३१
२४	शतभिषक्	३१९	५०	दक्षिण	०	२८
२५	पूर्वाभाद्रपदा	३३५	२५	उत्तर	२२	३०
२६	उत्तराभाद्रपदा	३४३	१६	उत्तर	१४	१
२७	रेवती	३५९	५७	दक्षिण	०	०

अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तगः । विंशे च मिथुनस्यांशे मृगव्याधो व्यवस्थितः ॥ १० ॥ विक्षेपो दक्षिणे भागैः खार्णवैः स्वादपक्रमात् । हुतभुग्ब्रह्महृदयौ वृषे द्वाविंशभागगौ ॥ ११ ॥ अष्टाभिस्त्रिंशता चैव विक्षिप्तावुत्तरेण तौ । गोलं बद्ध्वा परीक्षेत विक्षेपं ध्रुवसंस्फुटम् ॥ १२ ॥ वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात् । विक्षेपोऽभ्यधिको भिन्द्याद्रोहिण्याः शकटं तु सः ॥ १३ ॥ ग्रहवद्द्युनिशे भानां कुर्याद्दृक्कर्म पूर्ववत् । ग्रहमेलकवच्छेषं ग्रहभुक्त्या दिनानि च ॥ १४ ॥

भावार्थ—श्लोक १० । ११½ तक का—

	नक्षत्र	ध्रुव			विक्षेप			दिशा
		राशि	अंश	कला	राशि	अंश	कला	
१	अगस्त्य	३	०	०	०	८०	०	दक्षिण
२	मृगव्याध	२	२०	०	०	४०	०	दक्षिण
३	अग्नि	१	२२	०	०	८	०	उत्तर
४	ब्रह्महृदय	१	२२	०	०	३०	०	उत्तर

वक्ष्यमाण गोल बांस आदि की शलाका से बाध कर अर्थात् एक गोल यन्त्र तैयार कर भलीभांति नक्षत्रों के ध्रुव तथा विक्षेप की परीक्षा करने से यह विषय स्पष्टतया ज्ञात हो जावेगा ॥ १२ ॥ रोहिणी नक्षत्र का आकार शकट की नाईं है । जो ग्रह वृष राशि के १७ अंश में अवस्थित, एवं जिस का दक्षिण विक्षेप २ अंश से अधिक होगा, वह ग्रह रोहिणी के शकटाकार संनिवेश में प्रवेश करेगा, अर्थात् शकटाकृति को काट देगा । भेदक ग्रह का विक्षेप रोहिणी के विक्षेप से न्यून होना चाहिये, क्योंकि दक्षिण विक्षेप रोहिणी के विक्षेप से अधिक होने से शकटभेद नहीं होगा । यह रा० २ । अं० १७ वि० द० वेध द्वारा देख कर सिद्ध किया है ॥१३॥ नक्षत्र के साथ ग्रह योग जानने के लिये अध्याय १ । २ लिखित नियमानुसार नाक्षत्रिक अहोरात्र का परिमाण ठीक कर नक्षत्र की ध्रुवमा में आक्ष दृक्कर्म (संस्कार) करे, तदन्तर पहिले जो ग्रहो के विषय में जिस प्रकार कहा गया है,उसी प्रकार यहां भी करना चाहिये । अनन्तर अभीष्ट काल मे ग्रहों की दैनिक भुक्ति (गति) से पूर्व रीत्यनुसार "गत" और "गम्य" दिन निश्चय करे ॥ १४ ॥

एष्यो हीने ग्रहे योगो ध्रुवकादधिके गतः । विपर्ययाद्वक्रगते ग्रहे ज्ञेयः समागमः ॥ १५ ॥ फल्गुन्योर्भाद्रपदयोस्तथैवाषाढयोर्द्वयोः । विशाखाश्विनिसौम्यानां भोगतारोत्तरा स्मृता ॥ १६॥ पश्चिमोत्तरताराया द्वितीया पश्चिमे स्थिता । हस्तस्य योगतारा सा श्रविष्ठायाश्च पश्चिमा ॥ १७ ॥ ज्येष्ठाश्रवणमैत्राणां बार्हस्पत्यस्य मध्यमा। भरण्याग्नेयपित्र्याणां रेवत्याश्चैव दक्षिणा ॥१८॥ रोहिण्यादित्यमूलानां प्राची सार्पस्य चैव हि । यथा प्रत्यव शेषाणां स्थूला स्याद्योगतारका ॥ १९ ॥

भावार्थ-आक्षदृक्कर्म संस्कृत नक्षत्र ध्रुव से आयनदृक्कर्मसंस्कृत ग्रह का ध्रुव न्यून होने से नक्षत्र और ग्रह का योग अभीष्ट काल से पीछे होगा और अधिक हो तो नक्षत्रयोग गत (होगया) जानना । परन्तु वक्रगति ग्रह का यह नियम से विपरीत होता है, अर्थात् ग्रह का ध्रुव न्यून हो तो नक्षत्रयोग

ओ३म्

अथ नवमोध्यायः

अथोदयास्तमययोः परिज्ञानं प्रकीर्त्यते। दिवाकरकराक्रान्तमूर्तीनामल्पतेजसाम् ॥ १ ॥ सूर्यादभ्यधिकाः पश्चादस्तं जीवकुजार्कजाः। ऊनाः प्रागुदयं यान्ति शुक्रज्ञौ वक्रिणौ तथा ॥ २॥ ऊना विवस्वतः प्राच्यामस्तं चन्द्रज्ञभार्गवाः। व्रजन्त्यभ्यधिकाः पश्चादुदयं शीघ्रयायिनः ॥ ३ ॥ सूर्यास्तकालिकौ पश्चात् प्राच्यामुदयकालिकौ। दिवा चार्कग्रहौ कुर्याद् दृक्कर्माथ ग्रहस्य तु ॥ ४ ॥ ततोलग्नान्तरप्राणाः कालांशाः षष्टिभाजिताः। प्रतीच्यां षड्भयुतयोस्तद्वल्लग्नान्तरासवः ॥ ५ ॥

भाषानुवाद-अथ उदय (थोड़े तेजवाले ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रादिक सूर्य से अलग होने पर जितने समय में पहिली बार दीखपड़ें) और अस्त (सूर्य से दूर होने पर जितने काल में जो ग्रह पहिली बार दीखपड़ें) का परिज्ञान (सूक्ष्म रीति से) कहा जाता है। पहिले कहा जा चुका है कि जितने दृश्य पदार्थ अर्थात् ग्रह, उपग्रह, नक्षत्रादिक हैं प्रायः सूर्य के किरणों से प्रकाशित होते हैं। उन में बहुत से थोड़े तेजवाले और कतिपय एक की अपेक्षा अधिक तेज वाले हैं। यहां चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि और नक्षत्रों का उदयास्त कहा जावेगा ॥ १ ॥ सूर्य स्पष्ट की राश्यादि से (राशि, अंश, कलादि) बृहस्पति, मङ्गल, शनि एवं वक्री बुध और शुक्र इन पांच ग्रहो की स्पष्ट राश्यादि अधिक होने से इन का अस्त पश्चिम दिशा में होता है। और सूर्य स्पष्ट की राश्यादि से उक्त पांचों ग्रहों की स्पष्ट राश्यादि न्यून होने से इन का उदय पूर्व दिशा में होता है ॥ २ ॥ शीघ्र चलने वाले चन्द्र, बुध और शुक्र की स्पष्ट राश्यादि सूर्य की स्पष्ट राश्यादि से न्यून होने से, इन का अस्त पूर्वदिशा में होता है और उक्त ग्रहों की स्पष्ट राश्यादि सूर्य की स्पष्ट

राश्यादि से अधिक होने से इन का उदय पश्चिम दिशा में होता है ॥ ३ ॥ यदि पश्चिम दिशा में ग्रहों का अस्तोदय ज्ञान करना हो तो अभीष्ट दिन के सूर्य और ग्रह का अस्तकालिक अर्थात् उस समय सूर्य तथा ग्रह किस राशि, अंश कलादि को भोग करते हैं, गणित द्वारा निश्चय करे। एवं यदि पूर्व दिशा में ग्रहों का अस्तोदय ज्ञान करना हो तो उसी प्रकार सूर्य तथा ग्रह को अभीष्ट दिन के उदयकालिक करके पीछे आक्षदृक् कर्म करे ॥ ४ ॥ तब पूर्व कपाल में सूर्य और दृग् ग्रह (वेध से देखा हुआ ग्रह) के स्फुट से घटाने पर जो लग्न प्राण हो उस को ६० से भागदेवे, भागफल कालांश होंगे और पश्चिम कपाल में ६ राशि जोड़ कर सूर्य और दृग्ग्रह के स्पष्ट लग्नान्तर प्राण स्थिर करे ॥ ५ ॥

एकादशामरेज्यस्य तिथिसंख्यार्कजस्य च। अस्तांशा-
भूमिपुत्रस्य दशसप्ताधिकस्ततः ॥ ६ ॥ पश्चादस्तम-
योष्टाभिरुदयः प्राङ्महत्तया। प्रागस्तमुदयः पश्चादल्प-
त्वाद्दशभिर्भृगोः ॥ ७ ॥ एवं बुधो द्वादशभिश्चतुर्दशभि-
रंशकैः। वक्रीशीघ्रगतिश्चार्कात्करोत्यस्तमयोदयौ ॥ ८ ॥
एभ्योऽधिकैः कालभागैर्दृश्यान्यूनैरदर्शनाः। भवन्ति लोके
खचरा भानुभाग्रस्तमूर्त्तयः ॥ ९ ॥ तत्कालांशान्तरकला
भुक्त्यन्तरविभाजिताः। दिनादि तत्फलं लब्धं भुक्तियो-
गेन वक्रिणः ॥ १० ॥

भाषानुवाद–सूर्य के स्पष्ट राश्यादि से बृहस्पति का स्फुट ११ अंश से अधिक या न्यून होने से उक्त दिशा मे (देखो श्लोक ३) बृहस्पति का अस्त वा उदय निश्चय करना चाहिये। १५ अंश अधिक या न्यून होने से शनि का, एव १७ अंश अधिक वा न्यून होने से उक्त अस्तोदय के निरूपित दिशा मे मङ्गल का अस्त वा उदय होगा। सूर्य के स्पष्ट से चन्द्रमा का स्पष्ट १२ अंश अधिक होने से पश्चिमदिशा में चन्द्रमा दिखलाई देगा। सूर्य के स्पष्ट से १२ अंश न्यून होने से चन्द्रमा पूर्वदिशा में अस्तमित होगा (नहीं दीखेगा)। यदि वक्री शुक्र का स्पष्ट सूर्य के स्पष्ट से ८ अंश अधिक हो तो शुक्र पश्चिम

दिशा में अस्तमित, ६ एवं ८ अंश न्यून होने से पूर्व दिशा में उदित होगा और वक्रतारहित शुक्र जब शीघ्रगामी होगा तब यदि सूर्य के स्पष्ट से शुक्र का स्पष्ट १० अंश न्यून हो तो पूर्वदिशा में अस्तमित होगा, एवं १० अंश अधिक होने से उक्त शुक्र पश्चिम दिशा में उदित होगा। इसी प्रकार यदि वक्री बुध का स्फुट सूर्य के स्फुट से १२ अंश अधिक हो तो पश्चिम दिशा में अस्त, एवं १२ अंश न्यून होने से पूर्वदिशा में उदित होगा। वक्रगति रहित बुध का स्फुट राश्यादि सूर्य के स्फुट राश्यादि से १४ अंश न्यून होने से पूर्वदिशा में बुध का अस्त, एवं १४ अंश अधिक होने से पश्चिम दिशा में बुध का उदय होगा ॥ ६ । ७ । ८ ॥ पूर्वोक्त (६ । ७ । ८ श्लोकोक्त) कालांश से अधिक होने पर इष्टकाल में ग्रह दृश्य होते हैं। एवं न्यून होने से सूर्य के निकट होने के कारण सूर्य की प्रखर किरणों से ग्रहों के बिम्ब घिर कर लोगों को नहीं दीखते ॥ ९ ॥ ग्रहों के पूर्वोक्त अपने २ कालांश से इष्टकालांश घटाकर कला बनावे पुनः उस को सूर्य और ग्रह की दैनिकभुक्ति की जो घटाई हुई कला उस से भाग दे, भागफल दिनादि होगा, परन्तु वक्री ग्रह की भुक्ति जोड़ कर भागदेने से भागफल दिनादि होगा ॥ १० ॥

विवरण—मूल सू० सि० के अनुसार चन्द्रमा १२ अंश, मङ्गल १७ अंश, बुध १३ अंश, बृहस्पति ११ अंश शुक्र ९ अंश और शनि १५ अंश में। आर्यभट्ट ने भी ऐसा ही लिखा है। एवं आधुनिक पाश्चात्य पण्डितों ने भी ऐसा ही अनुभव किया है। केवल शुक्र का अंग्रेजों ने ८ अंश लिखा है बाकी सब एकसे हैं। श्लोक ६—८ ॥

तल्लग्नासुहते भुक्तीअष्टादशशतोद्धृते । स्यातां कालगती ताभ्यां दिनादिगतगम्ययोः॥ ११ ॥ स्वात्यगस्त्यमृगव्याधचित्राज्येष्ठाः पुनर्वसुः । अभिजिद्ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंशकैः ॥ १२ ॥ हस्तश्रवणफल्गुन्यः श्रविष्ठारोहिणीमघाः । चतुर्दशांशकैर्दृश्या विशाखाश्विनिदैवतम् ॥ १३ ॥ कृत्तिकामैत्रमूलानि सार्पं रौद्रर्क्षमेव च । दृश्यन्ते पञ्चदशभिराषाढाद्वितयं तथा ॥ १४ ॥ भरणीतिष्यसौम्यानि सौक्ष्म्यात्त्रिः सप्तकांशकैः । शेषाणि सप्त-

दृशाभिर्दृश्यादृश्यानि भानि तु ॥ १५ ॥

भाषानुवाद–सूर्य और ग्रहभुक्ति को उस लग्न प्राण से गुणन कर गुणन फल में १८०० का भाग देवे भागफल सूर्य और ग्रह के कालांश के तुल्य काल गति होगी, उन दोनों गतियों से गत और गम्यादि पूर्वप्रक्रियानुसार निश्चय करे॥ ११ ॥ स्वाति, अगस्त्य, मृगव्याघ, चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित, ब्रह्म-हृदय, इन नक्षत्रों का कालांश १३ अंश है अर्थात् ये नक्षत्र १३ अंश में दृश्य होते हैं। इस से न्यून होने से अदृश्य होते हैं ॥१२॥ हस्त, श्रवण, उत्तराफल्गुनी, पूर्वाफल्गुनी, धनिष्ठा, रोहिणी, मघा, विशाखा, अश्विनी, इन का कालांश १४ अंश है अर्थात् ये नक्षत्र १४ अंश में दीख पड़ते हैं इस से न्यून होने से अदृश्य होते हैं॥१३॥ कृत्तिका, अनुराधा, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढा इन के १५ कालांश हैं अर्थात् ये नक्षत्र १५ अंश में दृश्य होते हैं इस से न्यून होने से अदृश्य होजाते हैं ॥ १४ ॥ भरणी, पुष्य और मृगशिरा ये अत्यन्त छोटे हैं अर्थात् इन के बिम्ब बहुत छोटे हैं इस कारण २१ अंश दीख पड़ते हैं न्यून होने से अदृश्य होते हैं और शेष नक्षत्र शतभिषक्, पूर्वा भाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, अग्नि, प्रजापति, अपांवत्स और आप, इन का कालांश १७ अंश है, ये नक्षत्र १७ अंश दीख पड़ते हैं, इस से न्यून होने से अदृश्य होते हैं ॥ १५ ॥

अष्टादशशताभ्यस्ता दृश्यांशाः स्वोदयासुभिः । विभज्य लब्धाः क्षेत्रांशास्तैर्दृश्यादृश्यताथवा ॥ १६ ॥ प्रागेषामुदयः पश्चादस्तो दृक्कर्म पूर्ववत् । गतैष्यदिवसप्राप्तिर्भानुभुक्त्या सदैव हि ॥१७॥ अभिजिद्ब्रह्महृदयं स्वातिवैष्णववासवाः ॥ अहिर्बुध्न्यमुदक्स्थत्वान्न लुप्यन्तेऽर्करश्मिभिः ॥ १८ ॥

इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भाषानुवाद–कालांश को १८०० से गुणन कर गुणनफल को लग्न प्राण

से भाग दूेवे, भागफल क्रान्तिवृत्तस्थ अंश होगा अर्थात् उसी अंश से दृश्य और अदृश्य होता है ॥ १६ ॥ इन नक्षत्रों का उदय पूर्वदिशा में एवं अस्त पश्चिम दिशा में होता है। और इन का आक्षदृक् कर्म पूर्ववत् करना चाहिये एवं सर्वदा सूर्य की गति से (१० श्लोकोक्त नियम) दिन आदि निर्णय करे ॥१७॥ अभिजित, ब्रह्महृदय, स्वाति, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराभाद्रपदा, इन नक्षत्रों का उत्तर विक्षेप अधिक होता है इस कारण सूर्य की किरणों से कभी लुप्त नहीं होते अर्थात् इन का कभी अस्त नहीं होता ॥ १८ ॥

इति भाषानुवादे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥



अथ दशमोऽध्यायः

उदयास्तविधिः प्राग्वत् कर्तव्यः शीतगोरपि । भागैर्द्वा-
दशभिः पश्चाद्दृश्यः प्राग्यात्यदृश्यताम् ॥१॥ रवीन्द्वोः
षड्भयुतयोः प्राग्वल्लग्नान्तरासवः । एकराशौ रवीन्द्वो-
श्च कार्या विवरलिप्तिकाः ॥ २ ॥ तन्नाडिकाहते भुक्ती
रवीन्द्वोःषष्टिभाजिते । तत्फलान्वितयोर्भूयः कर्तव्या
विवरासवः॥३॥ एवं यावत्स्थिरीभूता रवीन्द्वोरन्तरास-
वः । तैः प्राणैरस्तमेतीन्दुः शुक्लेऽर्कास्तमयात्परम् ॥ ४ ॥
भगणार्द्धं रवेर्दत्त्वा कार्यास्तद्विवरासवः । तैः प्राणैः कृ-
ष्णपक्षे तु शीतांशुरुदयं व्रजेत् ॥ ५ ॥

भाषानुवाद–पूर्वोक्त प्रकार से (पूर्वाधिकारोक्त) चन्द्रमा का भी उदयास्त साधन करे। १२ अंश दूर होने पर चन्द्रमा पश्चिम दिशा में दिखाई देता और पूर्व दिशा में १२ अंश दूर होने पर अदृश्य होता है ॥१॥ शुक्लपक्ष के अभीष्ट दिन के सायङ्काल में सूर्य और चन्द्रमा का आयन दृक्कर्म और आक्षदृक्कर्म करे, पुनः दृक्कर्म संस्कृत सूर्य और चन्द्रमा में छः राशियोग करे। पूर्वोक्त रीति से (अ०३श्लो०४६) लग्नान्तर प्राणनिश्चय करे और छः राशि मिलाने पर यदि सूर्य और चन्द्रमा एक राशि में हों तो छः राशियुक्त सूर्य और चन्द्रमा की अन्तर कला करे। एवं प्राण और कला की घटिका से प्राण को ३६० से भाग देवे, भागफल घटिका कला उदय प्राण से गुणन कर गुणनफल प्राण में पुनः एकराशि की कला से भाग देने पर प्राण हों उस को १६० से भाग देवे भागफल घटिका होगी। उस से सूर्य और चन्द्रमा की दैनिककलात्मक गति से गुणन कर गुणन फल में ६० का भाग देवे भागफल को अलग छः राशियुक्त सूर्य और चन्द्रमा में जोड़कर पुनः पूर्ववत् अन्तर प्राण करे, एवं उस घटिका से सूर्यास्त कालिक छः राशियुक्त संस्कृत सूर्य और चन्द्रमा को बढ़ाकर जबतक अन्तर

प्राण स्थिर न हो इसी प्रकार करता जावे। सूर्यास्त के पीछे उक्त प्राण सख्या काल के बीतने पर चन्द्रमा का अस्त होगा ॥ २ । ३ । ४ ॥ कृष्णपक्ष में सूर्य स्पष्ट में ६ राशि मिलाकर चन्द्रमा से अन्तर प्राण का निश्चय करे उन्हीं प्राण सख्याकाल के पीछे कृष्णपक्ष में चन्द्रोदय का काल है ॥ ५ ॥

अर्केन्द्वोः क्रान्तिविश्लेषोदिक्साम्ये युतिरन्यथा। तज्ज्येन्दुरर्काद्यत्रासौ विज्ञेया दक्षिणोत्तरा॥ ६ ॥ मध्याह्नेन्दुप्रभाकर्णसङ्गुणा यदि सोत्तरा। तदार्कघ्नाक्षजीवायं शोध्या योज्या च दक्षिणा ॥ ७ ॥ शेषं लम्बज्यया भक्तं लब्धो बाहुः स्वदिङ्मुखः। कोटिशङ्कुस्तयोर्वर्गयुतेर्मूलं श्रुतिर्भवेत् ॥८॥ सूर्योनशीतगोर्लिप्ताः शुक्लं नवशतोद्धृताः। चन्द्रबिम्बाङ्गुलाभ्यस्तहृतं द्वादशभिः स्फुटम्॥९॥

भाषानुवाद—यदि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्तिज्या एक दिशा में हो तो इन का अन्तर करे (घटाकर) और यदि दोनो भिन्न दिशा में हो तो योग करे। सूर्य से चन्द्रमा की संस्थिति (रहना) दक्षिण या उत्तर हों उसी के अनुसार क्रान्तिज्या भी (दक्षिणा या उत्तरा) होगी ॥ ६ ॥ उस काल की स्वमध्य रेखागत चन्द्रमा की छाया कर्ण को ऊपर कहे हुवे फल से गुणन करे गुणनफल यदि दक्षिणा होतो १२ से गुणन कियी हुई अक्षज्या में योग, यदि गुणनफल उत्तरा हो तो वियोग करना चाहिये ॥ ७ ॥ यह शेष लब्ध लम्बज्या से भाग करे, भागफल स्वदिक् सूचक बाहु होगा। चन्द्रमा के शङ्कु को (१२ अङ्गुल की कोटि) कोटि जानकर भुज और कोटि के वर्ग का योग करे, वर्गफल मूल निकालने से कर्ण होगा ॥ ८ ॥ चन्द्रमा से सूर्य घटाकर कला करे, इस कला में ९०० का भाग देवे, भागफल शुल्काग्र होगा। चन्द्रमा के बिम्बाङ्गुल से (चन्द्रग्रहणाधिकारोक्त रीति से) गुणा करे, गुणनफल को १२ से भाग देवे, भागफल स्फुट शुल्क होगा ॥ ९ ॥

दत्त्वार्कसञ्ज्ञितं बिन्दुं ततो बाहुं स्वदिङ्मुखम्। ततः पश्चान्मुखीं कोटिं कर्णं कोट्यग्रमध्यगम्॥ १० ॥ कोटि-

कर्णयुताद्बिन्दोर्बिम्बं तात्कालिकं लिखेत् । कर्णसूत्रेण दिक्सिद्धिं प्रथमं परिकल्पयेत्॥ ११ ॥ शुल्कं कर्णेन तद्बिम्बयोगादन्तर्मुखं नयेत् । शुल्काग्रयाम्योत्तरयोर्मध्ये मत्स्यौ प्रसाधयेत् ॥ १२ ॥ तन्मध्यसूत्रसंयोगाद्बिन्दुत्रिस्पृग्लिखेद्धनुः। प्राग्बिम्बं यादृगेवस्यात्तादृक् तत्र दिने शशी ॥ १३॥ कोट्या दिक्साधनात् तिर्यक्सूत्रान्ते शृङ्गमुन्नतम् । दर्शयेदुन्नतां कोटिं कृत्वा चन्द्रस्य साकृतिः ॥१४॥ कृष्णे षड्भयुतं सूर्यं विशोध्येन्दोस्तथा सितम् । दद्याद्वामं भुजं तत्र पश्चिमं मण्डलं विधोः ॥१५॥

इति दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

भाषानुवाद–बराबर की हुई भूमि में (अभीष्टस्थान में) दिक्साधन करके पूर्वपश्चिम रेखा और दक्षिण उत्तर रेखा खींचे । उन खींचे हुए रेखास्थान में अर्कसंज्ञक बिन्दु (चिन्ह) लिखे। उस बिन्दु से अपनी दिशा के अनुसार (दक्षिण या उत्तर) भुज अङ्गुल गिनकर (पूर्वसाधित) उस के अनुसार रेखा खींचे । उस भुज रेखा के अग्रभाग से पश्चिममुखगामी कोटि (१२अङ्गुल) के परिमाण से रेखा खींचे । कोटि के आगे से मध्यबिन्दु तक की रेखा ही कर्ण होगी । कोटि और कर्ण रेखा के संयोगस्थान में मध्यबिन्दु लिखकर तात्कालिक साधित चन्द्रमण्डल खींचे । इस बिम्बमण्डल में पहिले कर्ण रेखा द्वारा दिक्सिद्धि (साधन) दिखलावे । चन्द्रमण्डल में जहां कर्ण रेखा लगी है वही चन्द्रवृत्त में पूर्वदिशा, कर्णरेखा को अपने मार्ग से चन्द्रवृत्त परिधि में आगे निकाल कर जहांपर कर्ण रेखा परभाग में लगी है वही पश्चिम दिशा, उन दोनों मत्स्यद्वारा चन्द्रवृत्त में जहां दक्षिण उत्तर रेखा लगी है वही दक्षिण उत्तर दिशा हैं । शुल्क (पूर्व साधित) को कर्ण मार्ग द्वारा कर्ण रेखा और चन्द्रमण्डल की परिधि के संयोग स्थान से वृत्त के केन्द्र की ओर रेखा खींचे । चन्द्रवृत्त के भीतर कर्ण रेखा पर पश्चिम से शुल्क की अङ्गुलि गिन कर चिन्ह करे और चन्द्रवृत्तमें जहां शुल्काग्र का चिन्ह है औरचन्द्र

वृत्त परिधि में जहां दक्षिण उत्तर का चिन्ह है इन दोनों के बीच से दो मछली की आकृति की रेखा बनावे। शुल्काग्र और दक्षिण चिन्हद्वारा एक मछली, एवं शुल्काग्र और उत्तर चिन्हद्वारा दूसरी मछली बनावे। इन दोनों मछलियों के मुख और पूंछ से निकली हुई रेखा के संयोग (चन्द्रमण्डल के भीतर या बाहर के शुल्काग्र पश्चिम होतो पूर्व में "संयोग" और शुल्काग्र पूर्व में हो तो पश्चिम में "संयोग" से अपने २ मार्ग से फैली हुई रेखा के सम्पात स्थान से) स्थान को केन्द्र करके त्रिबिन्दुस्पृक् (शुल्काग्र बिन्दु, दक्षिण बिन्दु उत्तर बिन्दु, इन तीन बिन्दु को छूता हुआ) धनु रेखा खेंचे। पूर्वकाल में लिखित चन्द्रबिम्ब जिस प्रकार होगा एवं लिखित धनु द्वारा जैसा पश्चिम काल में होगा उसी प्रकार उस दिन (शृङ्गोन्नति के गणित के लिये अभीष्ट दिन सध्यासमय) भी चन्द्रमा आकाश में दिखाई देगा ॥ १० । ११ । १२ । १३ ॥ कोटि रेखा द्वारा चन्द्रवृत्त में कर्ण रेखा के समान दिक्साधन से परिलेख में शुल्क धनु के कोटि अग्रभागात्मक कक्षा देख कर दक्षिण उत्तर रेखा के अन्त में उच्चशृङ्ग दिखलावे, यही आकृति (परिलेख सिद्ध) आकाशस्थ चन्द्रमा का आकार होगी ॥१४॥ कृष्णपक्ष में चन्द्रमा के स्पष्ट से छः राशियुक्त सूर्य घटावे और शुल्क की नाई (पूर्वोक्तप्रकार) असित (कालापन) निर्णय करे और कृष्ण परिलेख में पूर्वोक्त भुज को विपरीत दिखलावे अर्थात् सूर्य चिन्ह से उत्तरभुज को दक्षिण से दिखलावे एव सूर्यचिन्ह से दक्षिणभुज को उत्तर से दिखलावे और चन्द्रमण्डल को पश्चिम ओर असित दिखलावे॥१५॥

इति भाषानुवादे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥



ओ३म्

अथैकादशोऽध्यायः

एकायनगतौ स्यातां सूर्याचन्द्रमसौ यदा । तद्युतौ मण्डलेक्रान्त्योस्तुल्यत्वे वैधृताभिधः ॥ १ ॥ विपरीतायनगतौ चन्द्रार्कौ क्रान्तिलिप्तिकाः । समास्तद्वा व्यतीपातो भगणार्धे तयोर्युतौ ॥ २ ॥ तुल्यांशुजालसंपर्कात्तयोस्तु प्रवहावृतः । तद्दृक्क्रोधभवो वह्निर्लोकाभावाय जायते ॥३॥ विनाशयति पातोऽस्मिंल्लोकानामसकृद्यतः । व्यतीपातःप्रसिद्धोऽयं संज्ञाभेदेन वैधृतिः ॥ ४ ॥ सकृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षोमहोदरः । सर्वानिष्टकरोरौद्रो भूयोभूयः प्रजायते ॥ ५ ॥

भाषानुवाद–सूर्य और चन्द्रमा जब एक अयन (चाहे दक्षिणायन या उत्तरायण) में होते हैं और जब दोनो की स्पष्ट राश्यादिक जोड़ने से १२ राशि के परिमाण की होती हैं, एवं दोनो की क्रान्ति समान होती हैं, तब "वैधृति" नामक पात होता है ॥ १ ॥ परन्तु जब सूर्य और चन्द्रमा भिन्न २ अयन में रहते, एव उन की क्रान्ति कला समान होती हैं और दोनो की स्पष्ट राश्यादि जोड़ने से ६ राशि के बराबर हो तो "व्यतीपात" नामक पात होता है ॥ २ ॥ सूर्य और चन्द्रमा के किरणो का परस्पर मिलने से दृग्रूप क्रोध से उत्पन्न अग्नि प्रवह वायु से प्रज्वलित होता हुआ लोगो को अशुभ फल देने वाला होता है ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त पात रूप अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति समान होने पर अनेकवार होता है और लोगो का नाश करता है, इस लिये इस को "व्यतीपात" और "वैधृति" कहते हैं ॥ ४ ॥ * सूर्य और

* श्लोक ३ । ४ । ५ का विशेष विवरण देखो, इसी अध्याय की अन्तिम व्याख्या ॥

चन्द्रमा की क्रान्ति समान होने पर जो उक्त दोनों नाम का पात होता है, उस का वर्ण(रंग)काला,कठिन शरीर,लाल नेत्र, महोदर (बड़ा पेट) सब लोगों को हानि पहुंचाने वाला, एवं नाशकारक वारंवार होता है ॥ ५ ॥

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्तश्चक्रार्धावधिसंस्थयोः । दृक्तुल्यसाधितांशादियुक्तयोः स्वावपक्रमौ ॥ ६ ॥ अथौजपदगस्येन्दोः क्रान्तिर्विक्षेपसंस्कृता । यदि स्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा ॥७॥ ऊना चेत्स्यात्तदा भावी वामं युग्मपदस्य च । पदान्यत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद्विशुध्यति ॥८॥ क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्यया भिन्ने परक्रान्तिज्ययोद्धृते । तच्चापान्तरमर्धं वा योज्यं भाविनि शीतगौ॥९॥ शोध्यं चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम् । चन्द्रभुक्त्या हृतं भानौ लिप्तादि शशिवत्फलम् ॥ १० ॥

भाषानुवाद–पूर्वोक्त रीति से (अ० १० श्लोक ११) दृक्तुल्य साधित अंशादि युक्त संस्कृत चन्द्रमा और सूर्य की स्पष्ट राश्यादि को जोड़ने से जब १२ राशि में या छः राशि के निकट हो तो उस समय के सूर्य की क्रान्ति एवं चन्द्रमा की विक्षेप संस्कृत क्रान्ति निश्चय करे ॥६॥ ओजपद (देखो अ० २ श्लोक ३४) में स्थित चन्द्रमा की विक्षेप संस्कृत स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अधिक हो तो "पात" गत (साधित क्रान्ति काल से पहिले हो गया) जाने और यदि चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से न्यून हो तो "पात" भावी (साधित क्रान्ति काल से पीछे होगा) जाने और युग्म पदस्थ (देखो अ० २ । श्लोक ३४) चन्द्रमा के होने से उक्त रीति से विपरीत होता है, अर्थात् जब "पात" गत कहा गया है, उस समय "पात" भावी और जब "पात" भावी कहा गया है, उस समय "पात" गत जानना। जब चन्द्रमा से विक्षेप क्रान्ति घटाना हो तो (चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति लाने में) चन्द्रमा अन्य पदस्थ हो जाता है (विषम पदस्थ हो युग्म पदस्थ हो जायेगा) ॥७ । ८॥ सूर्य और चन्द्रमा की साधित क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा कर गुणनफल में परम क्रान्तिज्या का दोनों में भाग दे, भागफल ज्या को अलग २ धनु बनावे । उस धनु का अन्तर वा

अन्तरार्ध (जब अन्तर थोड़ा हो तो "अन्तर" और जब अन्तर अधिक हो तो उस का आधा करें) जब पात भावी हो तो चन्द्रमा की राश्यादि में जोड़े और जब पात गत हो तो चन्द्रमा की राश्यादि से घटावे। उक्त चन्द्रमा के साधन में जो संस्कार किया गया है उस फल को सूर्य की स्पष्ट गति से गुणा कर गुणनफल में चन्द्रमा की स्पष्ट गति से भाग देवे, भागफल चन्द्रमा की नाईं कलादि होगा। पुनः इस को (चन्द्रमा में जैसा योग या वियोग किया गया है) सूर्य में योग वा वियोग करे, फल स्पष्ट सूर्य होगा ॥ ९। १० ॥

तद्वच्छशाङ्कपातस्य फलं देयं विपर्ययात् । कर्मैतदसकृत्तावद्यावत्क्रान्ती समे तयोः ॥११॥ क्रान्त्योः समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्तांशोनिते विधौ । हीनेऽर्धरात्रिकाद्यातो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥ १२॥ स्थिरीकृतार्धरात्रेन्द्वोर्द्वयोर्विवरलिप्तिकाः। षष्टिघ्नाश्चन्द्रभुक्त्याप्ताः पातकालस्य नाडिकाः ॥ १३ ॥ रवीन्दुमानयोगार्धं षष्ट्या सङ्गुण्य भाजयेत्। तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्तं स्थित्यर्धं नाडिकादि तत् ॥ १४ ॥पातकालः स्फुटोमध्यः सोऽपिस्थित्यर्धवर्जितः। तस्य सम्भवकालः स्यात्तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञितः ॥ १५ ॥

भाषानुवाद–चन्द्रमा के फल कलादि को उक्त प्रकार चन्द्रफल को पात की गति से गुणा कर,गुणनफल में चन्द्रमा की स्पष्ट गति से भाग देवे, भागफल को जिस प्रकार चन्द्रमा में योग वा वियोग (पहिले कहा जा चुका है) किया गया है उस के उलटे प्रकार से अर्थात् जहां चन्द्रमा में योग कहा गया है वहां पात में वियोग और जहां चन्द्रमा में वियोग कहा गया है, वहां पात में योग करना ॥ ११ ॥ सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति जब समान हो तो स्पष्ट पात होता है। प्रक्षिप्तांश संस्कृत चन्द्रमा मध्यरात्रिक चन्द्रमा से घटाने पर मध्यरात्रि में पात गत और तात्कालिक चन्द्रमा अधिक हो तो पात भावी होता है ॥१२॥ क्रान्तिसाम्यगत चन्द्रमा और मध्यरात्रिक चन्द्रमा की अन्तर कला को ६० से गुणा कर गुणनफल में अर्द्धरात्रिक चन्द्रमा की स्पष्ट कलात्मक गति से भाग देवे, भागफल पात काल के स्पष्ट की अन्तर नाड़ी

होगी ॥ १३ ॥ सूर्य और चन्द्रमा के मान को एकत्र जोड़े।पुन इस का आधा करे, इस आधे को ६० से गुणा कर गुणनफल में सूर्य की स्पष्ट गति से चन्द्रमा की स्पष्ट गति को घटाकर शेष अङ्क से भाग देवे, भागफल स्थित्यर्द्ध दण्ड होगा ॥१४॥ १३ श्लोक द्वारा लाया हुआ पात का मध्य काल है। इस से स्थित्यर्द्ध वियोग करने पर फल पात का "सम्भव" (आरम्भ) काल है। एव स्थित्यर्द्ध योग करने पर फल पात का "अन्त्यकाल" है ॥ १५ ॥

आद्यन्तकालयोर्मध्यः कालोज्ञेयोऽतिदारुणः । प्रज्वलज्ज्वलनाकारः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥१६॥ एकायनगतं यावदर्केन्द्वोर्मण्डलान्तरम् । सम्भवस्तावदेवास्य सर्वकर्मविनाशकृत् ॥ १७ ॥ स्नानदानजपश्राद्धव्रतहोमादिकर्मभिः । प्राप्यते सुमहच्छ्रेयस्तत्कालज्ञानतस्तथा ॥१८॥ रवीन्द्वोस्तुल्यता क्रान्त्योर्विषुवत्सन्निधौ यदा । द्विर्भवेद्द्विस्तदा पातः स्यादभावो विपर्ययात् ॥ १९ ॥

भाषानुवाद-पात के आरम्भ और समाप्ति के बीच का काल अत्यन्त कठिन, देदीप्यमान अग्निस्वरूप सब शुभ कर्मों में वर्जित है ॥ १६ ॥ * जितने काल तक सूर्य और चन्द्रमा के मण्डल का कोई अंश एकस्थान (एकमार्ग) मे हो तो उस समय पात का आरम्भ सब शुभ कर्मों का नाशकारी होता है ॥ १७ ॥ पातकाल को जानकर स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रतादि कार्य करने से बड़ा कल्याणकारक होता है ॥ १८ ॥ जब विषुवत् के निकट चन्द्रमा और सूर्य की क्रान्ति समान होती है तो उस समय क्रान्ति के अभाव से दो वैधृति और व्यतीपात नामक पात होते हैं और यदि सूर्य और चन्द्रमा की क्रान्ति तुल्य न हो तो दोनो मे से कोई भी पात नही होता ॥ १९ ॥

शशाङ्कार्कयुतेर्लिप्ता भभोगेन विभाजिता।लब्धं सप्तदशान्तोऽन्यो व्यतीपातस्तृतीयकः ॥ २० ॥ सार्पेन्द्रपौष्णधिष्ण्यानामन्त्याः पादा भसन्धयः । तदग्रभेष्वाद्यपादो

* श्लोक १६, १७, १८ के लिये देखो इसी अध्याय की अन्तिम व्याख्या ॥

गण्डान्तं नाम कीर्त्यते ॥ २१ ॥ व्यतीपातत्रयं घोरं गण्डान्तत्रितयं तथा । एतद्भसन्धित्रितयं सर्वकर्मसु वर्जयेत् ॥ २२ ॥ इत्येतत्परमं पुण्यं ज्योतिषां चरितं हितम् । रहस्यं महदाख्यातं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥२३॥

* इति पूर्वखण्डम् *

इत्येकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

भाषानुवाद–अयनांश संस्कृत चन्द्रमा और सूर्य की कला को जोड़कर योगफल में ८०० का भाग देवे, भागफल अन्त में होने पर व्यतीपात नाम तीसरा पात होता है ॥ २० ॥ आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती, इन नक्षत्रों का चौथा चरण "भसन्धि" होता है । एवं अश्विनी, मघा और मूल इन नक्षत्रों का पहिला चरण "गण्डान्त" होता है ॥ २१ ॥ तीन व्यतीपात (दो क्रान्तिसाम्य वाले एवं विषुवत् निकट का) तीन गण्डान्त, तीन नक्षत्र सन्धि, ये सब शुभ कर्मों मे अतिदूषित होने से त्याज्य हैं ॥ २२ ॥ यह परम पवित्र ग्रह नक्षत्रादिकों की गति आदि का गणितरूप ज्ञान परम हितकर रहस्य कहा। अब आगे क्या सुनने की इच्छा है ॥ २३ ॥

* यह पूर्वखण्ड समाप्त हुवा *

विवरण-पात या योग उस को कहते हैं जब चन्द्रमा और सूर्य की गति का योग १३–२० होता है उतने काल मे एक "योग" होता है । ये योग अश्विनी आदि २७ नक्षत्र में २७ योग होते हैं। फलित वालो ने २७ योगों के भिन्न २ नाम रख कर उन से शुभाशुभ फल की कल्पना कियी है, उसी फलित ज्योतिष के अनुसार यहां भी ३ । ४ । ५ । १६ । १७ । १८ और २१ श्लोक किसी ने मिलाये हैं। इस विचार से कि "सूर्यसिद्धान्त" प्राचीन ग्रन्थ है । इस कारण "योगफल" कहना इस के अनुसार प्रामाणिक होगा । अब हम आर्यभट्ट एवं वराहमिहिरकृत सिद्धान्त ग्रन्थ का प्रमाण देते हैं जिस से स्पष्ट सिद्ध होगा कि उपरोक्त श्लोक अवश्य किसी ने मिलाये हैं.—

रविशशिनक्षत्रगणाः सम्मिश्राश्च व्यतीपाताः ॥ २ ॥

(आर्यभट काल-क्रिया पाद)

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा के नक्षत्र भाग का योग जब समान हो तो "व्यतीपात" योग होता है ॥

अर्कघ्ने व्यतीपाता द्युगणे पञ्चाम्बरहुताशैः ॥ ४ ॥

(पञ्चसिद्धान्तिका अ० १२)

अर्थात् जब युगीय गत व्यतीपात योग जानना हो तो अहर्गण को १२ से गुणा कर गुणनफल में ३०५ का भाग दे, भागफल युग के आरम्भ से बीते हुवे व्यतीपात की संख्या होगी। इस के अतिरिक्त व्यतीपात जनित शुभाशुभ फल का वर्णन कुछ भी उक्त दोनों प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है। विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, इन्द्र, वैधृति ये २७ योग हैं ॥

इति भाषानुवादे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥



ओ३म्

अथोत्तरखण्डे द्वादशोऽध्यायः

अथार्कांशसमुद्भूतं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः । भक्त्या परमयाभ्यर्च्य पप्रच्छेदं मयासुरः ॥ १ ॥ भगवन्किम्प्रमाणा भूः किमाकारा किमाश्रया । किंविभागा कथञ्चात्र सप्त पातालभूमयः ॥२॥ अहोरात्रव्यवस्थां च विदधाति कथं रविः । कथं पर्येति वसुधां भुवनानि विभावयन् ॥ ३ ॥ देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् । किमर्थं तत्कथं वा स्याद्भानोर्भगणपूरणात् ॥ ४ ॥ पित्र्यं मासेन भवति नाडीषष्ट्या तु मानुषम् । तदेव किल सर्वत्र न भवेत्केन हेतुना ॥ ५ ॥ दिनाब्दमासहोराणामधिपा न समाः कुतः । कथं पर्येति भगणः सग्रहोयं किमाश्रयः ॥ ६॥ भूमेरुपर्युपर्यूर्ध्वाः किमुत्सेधाः किमन्तराः । ग्रहर्क्षकक्षाः किम्मात्राः स्थिताः केन क्रमेण ताः ॥ ७ ॥ ग्रीष्मे तीव्रकरोभानुर्न हेमन्ते तथाविधः । कियती तत्करप्राप्तिर्मानानि कति किञ्च तैः ॥ ८ ॥

भाषानुवाद–तदनन्तर मयनामक असुर ने सूर्य के अंश से उत्पन्न पुरुष को हाथ जोड़, परम भक्ति से प्रणाम कर यह पूंछा कि ॥ १ ॥ हे भगवन् ! इस पृथिवी का परिमाण क्या है (कितनी परिधि, क्या व्यास क्रम) आकार कैसा है ? (गोल, चिपटी, दर्पणोदराकार इत्यादि) किस के आश्रय से ठहरी है ? (शेष नाग पर बैल पर इत्यादि) इस के क्या २ विभाग हैं? (कितने भागों में बटी है) और किस प्रकार से इस में सातों पाताल की संस्था हैं ? (७ पाताल किस क्रम से ऊपर नीचे हैं) ॥ २ ॥ सूर्य किस प्रकार से दिन रात्रि

की व्यवस्था करता है ? और इस पृथिवी तथा अन्यान्य भुवनों को प्रकाश करता हुआ किस प्रकार अपनी धुरी पर भ्रमण करता है ? ॥ ३ ॥ उत्तर मेरु निवासी और दक्षिण मेरु निवासियों को दिन रात्रि विपर्यय से क्यों होता है ? और क्यों उन का अहोरात्र सूर्य के १२ राशियों के भ्रमण के समान है? ॥ ४ ॥ चन्द्रलोक निवासी का हमारे एक महीने के बराबर एक अहोरात्र, मनुष्यों का ६० घड़ी का अहोरात्र होता है। इन प्रत्येक के दिन रात्रि एक से क्यों नहीं होते भिन्न २ क्यों हैं ? ॥ ५ ॥ दिन, वर्ष, मास और " होरा " इन के अधिपति भिन्न २ क्यों हैं? ग्रहगण किस के आश्रय से ठहरे हुवे अपने २ भगणों को पूरा करते हैं ? ॥ ६ ॥ पृथिवी से ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा की कक्षायें कितनी दूर ऊपर को हैं ? इन में एक कक्षा से दूसरी कक्षा का अन्तर (फासला) क्या है ? परिमाण क्या है ? (परिधि, व्यास आदि) और वे किस प्रकार स्थित हैं ? (पहिले कौन ग्रह, तदनन्तर कौन इत्यादि क्रम) ॥ ७ ॥ ग्रीष्मऋतु में सूर्य की किरणों की प्रखरता, हेमन्त में किरणों की मन्दता, ऐसा क्यों होता है, क्यों नहीं सब ऋतुओं में सूर्य की किरणें समान होतीं ? सूर्य की किरणों की प्रखरता, मन्दता आदि जानने के क्या २ नियम हैं ? और मान (सायन नाक्षत्र आदि अ० १ में जो कहे गये हैं) कितने और वे कौन कौन से हैं, उन प्रत्येक का क्या २ प्रयोजन है ? ॥ ८ ॥

एतं मे संशयं छिन्धि भगवन्भूतभावन । अन्योन त्वामृते छेत्ता विद्यते सर्वदर्शिवान् ॥ ९ ॥ इति भक्त्योदितं श्रुत्वा मयोक्तं वाक्यमस्यहि । रहस्यं परमाध्यायं ततः प्राह पुनः स तम् ॥१०॥ शृणुष्वैकमना भूत्वा गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् । प्रवक्ष्याम्यतिभक्तानां नादेयं विद्यते मम ॥ ११ ॥ वासुदेवः परंब्रह्म तन्मूर्त्तिः पुरुषः परः । अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशात्परोऽव्ययः ॥ १२ ॥ प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः । सङ्कर्षणोऽयं सृष्ट्यादौ तासु वीर्यमवासृजत् ॥ १३ ॥ तदण्डमभवद्धैमं सर्वत्र तमसा वृतम् । तत्रानिरुद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः ॥१४॥

भाषानुवाद–हे भगवन् ! आप मेरे पूर्वोक्त सन्देहों को दूर कीजिये । आप ज्योतिष शास्त्र के सब विषयों को जानते हैं और आप को सब विषय उपस्थित (याद) हैं । इस कारण मेरे लिये आप के अतिरिक्त दूसरा संशय का दूर करने वाला नहीं है ॥ ९ ॥ इस प्रकार भक्ति भाव से कहे हुये मयासुर के वचनों को सुनकर सूर्यांश पुरुष पुनः १२ वां अध्याय परम रहस्य कहने लगा ॥ १० ॥ अच्छा तो परम रहस्य अध्यात्मज्ञान कहता हूं एकाग्र चित्त हो सुनो ! ऐसा कोई पदार्थ मेरे पास नहीं जो मैं तुम्हारे सदृश अपने अतिभक्त को न कह सकूं वा न दे सकूं ॥ ११ ॥ वासुदेव (जिस में सम्पूर्ण चराचर जगत् निवास करता है) परब्रह्म उस ही का नामान्तर, परम पुरुष, अव्यक्त, निर्गुण, शान्त, अव्यय और २५ प्रकृत्यादि (१ प्रकृति, २ महत्, ३ अहङ्कार, ४ रूप, ५ रस, ६ गन्ध, ७ स्पर्श, ८ शब्द, ९ वाक्, १० पाणि, ११ पाद, १२ गुदा, १३ उपस्थ, १४ नेत्र, १५ जिह्वा, १६ नाक, १७ त्वचा, १८ कान, १९ मन, २० पृथिवी, २१ जल, २२ तेज, २३ वायु, २४ आकाश, २५ जीव) से भिन्न है ॥ १२ ॥ जगत् के उपादानरूप प्रकृति के बाहर और भीतर अर्थात् सर्वत्र व्यापक सङ्कर्षण (ईश्वर) ने सृष्टि की आदि (कल्प की आदि में, क्योंकि सृष्टि तो प्रवाह से अनादि है) पहिले जल का रचा और उस में अपनी शक्ति विशेष को निक्षेप किया ॥ १३ ॥ यह जल शक्ति विशेष में मिलकर अन्धकार से घिरा हुआ सोने के अण्डे की नाईं होगया । उस में प्रथम सनातन अनिरुद्ध (विराट्) प्रकट हुवे ॥ १४ ॥

हिरण्यगर्भो भगवानेषच्छन्दसि पठ्यते । आदित्यो ह्यादिभूतत्वात्प्रसूत्या सूर्यउच्यते ॥ १५ ॥ परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्योयं सवितेति च । पर्येति भुवनान्येष भावयन्भूतभावनः ॥१६॥ प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः । ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्त्तिर्यजूंषि च ॥१७॥ त्रयीमयोऽयं भगवान्कालात्मा कालकृद्विभुः । सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन्प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥

रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम् । छन्दांस्यश्वाः सप्त युक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा ॥ १९ ॥

भाषानुवाद–वेद में उक्त परमेश्वर के नाम हिरण्यगर्भ, सृष्टि की आदि में प्रकट होने से आदित्य और सृष्टि के निमित्त सूक्ष्म ब्रह्मस्वरूप से स्थूल (विराट्स्वरूप) होने के कारण सूर्य कहे गये हैं ॥ ११ ॥ उक्तगुणविशिष्ट अनिरुद्ध ही परम ज्योतिष्मान् सविता अर्थात् समस्त सूर्यादि प्रकाशकों का भी प्रकाशक है और अन्धकार को नाश कर (प्रलयावस्थारूपी अन्धकार) भूतभावन ज्योतिःस्वरूप परमात्मा सब भुवनों (ब्रह्माण्डों) में व्यापक हो रहे हैं ॥ १६ ॥ प्रकाशस्वरूप तिमिरनाशक महान् इत्यादि नामों से वह जगदीश्वर प्रसिद्ध है। उस प्रकाशस्वरूप ईश्वर का ऋग्वेद मण्डलरूप है, सामवेद किरण रूप है और यजुर्वेद मानो उस की मूर्ति है, इस प्रकार वेदत्रयात्मक वह भगवान् कालस्वरूप, काल का कर्त्ता, अणिमादि गुण युक्त, सर्वात्मा, सर्वग, और सूक्ष्म होने पर भी इस में सब जगत् अवस्थित है ॥ १७ । १८ ॥ यह कालात्मा परमेश्वर, ब्रह्माण्डरूपी रथ पर, वर्षरूपी चक्र द्वारा, वेद के ७ छन्द स्वरूप (गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप्, जगती, ये सात छन्द हैं) घोड़ों को बनाकर, निरन्तर व्यापक हो रहा है (सब लोक लोकान्तरों को चला रहा है) ॥ १९ ॥

त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत् । सोऽहंकारं जगत्सृष्ट्यै ब्रह्माणमसृजत्प्रभुः ॥ २० ॥ तस्मै वेदान्वरान् दत्त्वा सर्वलोकपितामहम् । प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन् ॥ २१ ॥ अथ सृष्ट्यां मनश्चक्रे ब्रह्माहंकारमूर्त्तिभृत् । मनसश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्योऽक्ष्णोस्तेजसां निधिः ॥२२॥ मनसः खंततोवायुरग्निरापोधरा क्रमात् । गुणैकवृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे ॥ २३ ॥ अग्नीषोमौ भानुचन्द्रौ ततस्त्वङ्गारकादयः । तेजोभूखाम्बुवातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे ॥ २४ ॥ पुनर्द्वादशधात्मानं विभजद्राशिसंज्ञकम् । नक्षत्ररूपिणं भूयः सप्तविंशात्मकं

वशी ॥ २५ ॥ ततश्चराचरं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम् । ऊर्ध्वमध्याधरेभ्योऽथ स्रोतोभ्यः प्रकृतीः सृजन् ॥२६॥ गुणकर्मविभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात् । विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात् ॥ २७ ॥

भावानुवाद- वेदात्मा परमात्मा के तीन पाद सदैव छिपे रहते हैं, चतुर्थ पाद में ही यह जगत् प्रकट है, उस अनिरुद्ध ने अपना स्थूल स्वरूप, सृष्टि करने के समय ब्रह्मा नामधारी होकर वेदानुकूल सृष्टि करने के लिये प्रथम अहङ्कार स्वरूप (ब्रह्मा की) उत्पत्ति की । और स्थूल स्वरूप से वेद के अनुकूल सृष्टि करने लगा, और सम्पूर्ण जगत् के रचयिता होने से पितामह नाम से प्रसिद्ध होकर ब्रह्माण्ड में व्यापक हो रहा है ॥ २० । २१ ॥ तब अहङ्काररूप ब्रह्मा के मन से चन्द्रमा और नेत्र से तेजोनिधि सूर्य को उत्पन्न किया ॥ २२ ॥ पुनः मन से आकाश, पुनः वायु, अग्नि, जल और पृथिवी एक एक गुण की वृद्धिद्वारा पांचों महाभूतों को उत्पन्न किया ॥ २३ ॥ प्रकाशात्मा होने से सूर्य अग्नि स्वरूप, चन्द्रमा जलरूप को रच कर पुनः तेज से मङ्गल, पृथिवी से बुध, आकाश से बृहस्पति, जल से शुक्र, और वायु से शनि इन पांच ग्रहों को उत्पन्न किया ॥२४॥ पुनः वशी (ब्रह्मा) ने अपनी इच्छा से १२ विभागात्मक राशि चक्र और २७ नक्षत्रादिक की सृष्टि किये ॥ २५ ॥ तदनन्तर उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिगुणात्मक क्रम से देव, मनुष्य, असुर और चराचर विश्व को निर्माण किया ॥२६॥ पुनः ब्रह्मा ने गुण (सत, रज, तम) और कर्म (पूर्व जन्मार्जित) के अनुसार वेदोक्त रीति से सृष्टि करके विभाग किया व जगत् का विभाग किया ॥ २७ ॥

ग्रहनक्षत्रताराणां भूमेर्विश्वस्य वा विभुः । देवासुरमनुष्याणां सिद्धानां च यथाक्रमम् ॥ २८ ॥ ब्रह्माण्डमेतत्सुषिरं तत्रेदं भूर्भुवादिकम् । कटाहद्वितयस्येव सम्पुटं गोलकाकृति ॥ २९ ॥ ब्रह्माण्डमध्ये परिधिर्व्योमकक्षाभिधीयते । तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा

॥ ३० ॥ मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्यशुक्रेन्दुजन्दवः । परिभ्रमन्त्यधोऽधस्थाः सिद्धविद्याधरा घनाः॥३१॥ मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति । बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् ॥३२॥ तदन्तरपुटाःसप्त नागासुर समाश्रयाः । दिव्यौषधिरसोपेता रम्याः पातालभूमयः ३३

भाषानुवाद–ग्रह, नक्षत्र, तारा, पृथिवी, देव, असुर, मनुष्य, सिद्ध इन के स्थानों का विभाग किया अर्थात् इन प्रत्येक की संस्था को क्रम से विभाग किया ॥ २८ ॥ पूर्वोक्त ब्रह्माण्ड में भूर्भुवादि (भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, महर्लोक, सत्यलोक, तपोलोक) लोक अवस्थित हैं । यह ब्रह्माण्ड दो कटाह जोड़ने से जैसा गोलाकार होता है, इस प्रकार का है अर्थात् गोलाकार है ॥ २९ ॥ ब्रह्माण्ड मे परिधि का नाम आकाश कक्षा है । उस में सब से ऊपर राशि चक्र, उस के नीचे शनि, उस के नीचे बृहस्पति, उस के नीचे मङ्गल, उस के नीचे सूर्य, उस के नीचे शुक्र, उस के नीचे बुध, उस के नीचे चन्द्रमा भ्रमण करता है । उस के नीचे सिद्ध विद्याधरगण के घूमने का मार्ग अन्तरिक्ष है और सब से नीचे मेघ मण्डल है ॥ ३० । ३१ ॥ ब्रह्म की धारणात्मिका परमाशक्ति के ऊपर यह भूगोल अण्ड (ब्रह्माण्ड) के बीच, आकाश में भ्रमण करता हुआ अवस्थित है ॥३२॥ उस भूगोल के भीतर नाग और असुर आदि मनुष्य विशेष के निवास को ७ पाताल है (अतल, वितल, सुतल, तल, तलातल, रसातल, पाताल) जिन में अनेक प्रकार रथप्रकाशयुक्त रमणीक औषधि हैं ॥ ३३ ॥

अनेकरत्ननिचयो जाम्बूनदमयोगिरिः । भूगोलमध्यगो मेरुरुभयत्र विनिर्गतः ॥ ३४ ॥ उपरिष्टात्स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः । अधस्तादसुरास्तद्वद्विपन्तोऽन्योन्यमाश्रिताः ॥३५॥ ततः समन्तात्परिधिः क्रमेणायं महार्णवः । मेखलेव स्थितोधात्र्या देवासुरविभागकृत् ॥३६॥ समन्तान्मेरुमध्यात्तुतुल्यभागेषु तोयधेः । द्वीपेषु दिक्षु

पूर्वादिनगर्यो देवनिर्मिताः ॥३७॥ भूवृत्तपादे पूर्वस्यां यमकोटीति विश्रुता। भद्राश्ववर्षे नगरी स्वर्णप्राकार-तोरणा ॥३८॥ याम्यायां भारते वर्षे लङ्का तस्मिन्महापुरी। पश्चिमे केतुमालाख्ये रोमकाख्या प्रकीर्त्तिता ॥ ३९ ॥

भाषानुवाद—भूगोल के बीच और दोनों उत्तर दक्षिण से मेरु के बीच स्वर्णमय नाना प्रकार के रत्नों से भरा हुआ मेरू नामक पर्वत है ॥३४॥ उत्तर मेरु के पास इन्द्रादि देवता और महर्षिगण वास करते हैं, एवं दक्षिण मेरू के निकट असुरगण अवस्थित हैं। परस्पर को नीचस्थ समझते हुवे दूसरी दिशा में ठहरे हुवे हैं ॥३५॥ उस दण्डाकार मेरु दण्ड की चारों ओर यह महा समुद्र है, जो क्रम से भूगोल में मेखला की नाईं ब्रह्मा ने देवता और असुरों के स्थानों के विभाग करने वाला पदार्थ रचा है। उक्त समुद्र के उत्तर भूगोल का आधा भाग भारतवर्षरूपी देवभूमि है (आर्यों के रहने का स्थान) और उक्त समुद्र के दक्षिण भूगोल के आधे भाग में छः द्वीप और छः समुद्र असुरों के रहने का स्थान हैं ॥३६॥ दण्डाकार मेरु के मध्य प्रदेश से घेरा रूप समुद्र की चारो दिशाओं में समविभागात्मक देवनिर्मित चार पुरी हैं ॥ ३७ ॥ भूवृत्त (५०५९ योजन) चतुर्थांश परिमाण व्यवधान में पूर्व की ओर भद्राश्व वर्ष है। उस में यमकोटि नामक पुरी है, जो सोने की भीत और तोरणों से घेरी हुई है और भूवृत्त के चतुर्थांश योजन परिमाण व्यवधान में दक्षिण में भारतवर्ष है। उस के मध्य में लङ्का नामक महापुरी है और भूवृत्त के चतुर्थांश योजन परिमाण व्यवधान में पश्चिम में केतुमाल वर्ष है। उस में रोमक नामक नगरी है ॥ ३९ ॥

उदकसिद्धपुरी नाम कुरुवर्षे प्रकीर्त्तिता। तस्यां सिद्धा महात्मानो निवसन्ति गतव्यथाः ॥ ४० ॥ भूवृत्तपादविवरास्ताश्चान्योन्यं प्रतिष्ठिताः। ताभ्यश्चोत्तरगो मेरुस्तावानेव सुराश्रयः ॥४१॥ तासामुपरिगोयातिविषुवस्थो दिवाकरः। न तासु विषुवच्छाया नाक्षस्योन्नतिरिष्यते ॥४२॥ मेरोरुभयतो मध्ये ध्रुवतारे नभःस्थिते। निरक्ष-

दशसंस्थानामुभये क्षितिजाश्रये ॥४३॥ अतो नाक्षोच्छ्रयस्तासु ध्रुवयोः क्षितिजस्थयोः। नवतिर्लम्बकांशास्तु मेरावक्षांशकास्तथा ॥४४॥ मेषादौ देवभागस्थे देवानां याति दर्शनम् ।असुराणां तुलादौ तु सूर्यस्तद्भागसञ्चरः ॥४५॥

भाषानुवाद–उत्तरभाग में कुरुवर्ष में सिद्ध पुरी नामक नगरी है, वहां सिद्ध महात्मा लोग सब कष्टों से रहित होकर सुखपूर्वक वास करते हैं ॥४०॥ पूर्वोक्त नगरी सब परस्पर भूवृत्त के चतुर्थ अंश के योजन परिमित अन्तर पर अवस्थित हैं।एवं इन नगरियों के समान अन्तर पर उत्तर मेरु है। जहां के निवासियों की देवसंज्ञा है ॥४१॥ पूर्वोक्त नगरियों के ऊपर जब सूर्य दीखता है वही विषुवत् वृत्त है। जब सूर्य विषुववृत्तस्थ होता है तो वहां विषुवच्छाया (पलभा) और अक्षोन्नति (अक्षध्रुव की) नहीं होती ॥ ४२ ॥ दोनों मेरु के मध्य आकाश में ध्रुवतारा अवस्थित हैं। निरक्षदेशस्थ (पूर्वोक्त नगर स्थित) मनुष्यों को उत्तर और दक्षिण क्षितिज वृत्त में दोनों ध्रुव तारा हैं ॥ ४३ ॥ इस लिये दोनों (ध्रुवतारा) क्षितिज वृत्त में ध्रुवौच्च्य (उन्नति) नहीं है। दोनों ध्रुव क्षितिज वृत्त में हैं। इस कारण वहां का लम्बकांश ९० और मेरु का अक्षांश ९० है ॥४४॥ जब सूर्य मेषादि (मेष, वृष, मिथुन,कर्कट, सिंह, कन्या इन छः राशियों की उत्तर गोलार्द्ध संज्ञा है) अर्थात् उत्तरमेरु प्रदेश में दीखता है तो उत्तर मेरुनिवासियों को छः मास पर्यन्त दृश्य होता है और जब तुलादि (तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन इन छः राशियों की दक्षिण गोलार्द्ध संज्ञा है) राशियों में सूर्य दीखता है तो दक्षिण मेरुवासियों को छः मास तक सूर्य दृश्य होता है ॥ ४५ ॥

विवरण–यद्यपि सिद्धान्त ग्रन्थ में भूगोल का विशेषवर्णन करना प्रकरण विरुद्ध है, तथापि जितने अंश से गणित का सम्बन्ध है उतने का वर्णन करना आवश्यक है। हमारे संस्कृत ग्रन्थों में प्रायः "सप्तद्वीपा वसुमती" इत्यादि लिखा है। अर्थात् सात द्वीप और नव खण्ड। परन्तु द्वीप शब्द से लोग "आइस्लैण्ड" (Island) समझते हैं,सो ठीक नहीं। क्योंकि यदि हमारे ऋषियों को द्वीप शब्द से आइस्लैण्ड अभीष्ट होता तो भारतवर्ष की द्वीप में गणना न करते। इस से द्वीपशब्द से पेनन्सुला (Penensula) अर्थात् जिसके

दो ओर पानी हो। (द्वयोः आपो यस्य) इस से आधुनिक सात विभाग से ठीक मिलता है। दो अमेरिका, युरोप, एशिया, आफ्रिका, ओशिनीआ और आस्ट्रेलिया ये सात विभाग हैं ॥

संस्कृत–१ जम्बूद्वीप, २ प्लक्षद्वीप, ३ शल्मलीद्वीप, ४ कुशद्वीप, ५ क्रौञ्च द्वीप, ६ शाकद्वीप, ७ पुष्करद्वीप। अथ जम्बूद्वीप के नव खण्ड हैं ॥

१ नाभि वर्ष (भारतवर्ष) समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण "आर्यावर्त" देश है। जो राजा भरत के समय से भारतवर्ष कहलाया ॥	४ इलावृत्त वर्ष ५ रम्यक वर्ष ६ हिरण्यक वर्ष ७ कुरुवर्ष
२ किम्पुरुष वर्ष	८ भद्राश्ववर्ष
३ हरिवर्ष	९ केतुमालवर्ष

अत्यासन्नतया तेन ग्रीष्मे तीव्रकरा रवेः। देवभागे सुराणां तु हेमन्ते मन्दतान्यथा ॥ ४६ ॥ देवासुरा विषुवति क्षितिजस्थं दिवाकरम्। पश्यन्त्यन्योन्यमेतेषां वामसव्ये दिनक्षपे ॥ ४७ ॥ मेषादावुदितः सूर्यस्त्रीन्राशीनुदगुत्तरम्। सञ्चरन्प्रागहर्मध्यं पूरयेन्मेरुवासिनाम् ॥ ४८ ॥ कर्कादीन्सञ्चरंस्तद्वदह्नः पश्चार्धमेव सः। तुलादींस्त्रीन्मृगादींश्च तद्वदेव सुरद्विषाम् ॥ ४९ ॥ अतोदिनक्षपे तेषामन्योन्यं हि विपर्ययात्। अहोरात्रप्रमाणं च भानोर्भगणपूरणात् ॥ ५० ॥ दिनक्षपार्धमेतेषामयनान्ते विपर्ययात्। उपर्यात्मानमन्योन्यं कल्पयन्ति सुरासुराः॥५१॥

भाषानुवाद–इसी कारण (पूर्वोक्त प्रकार सूर्य के उत्तरायण, दक्षिणायन होने से) सूर्य जब ग्रीष्मऋतु में देवभाग में निकटतर (दूसरे की अपेक्षा) होता है तो वहां इस की किरणों की प्रखरता से गरमी अधिक होती और उस समय असुरभाग (दक्षिणमेरु) में गरमी की न्यूनता और शीत की वृद्धि होती है। एवं हेमन्त ऋतु में सूर्य देवभाग से दूर और असुरभाग के निकटतर

होता है तो उस समय देवभाग में सूर्य की किरणों की मन्दता और शीत की वृद्धि होती है और असुरभाग में सूर्य की किरणों की प्रखरता और शीत की मन्दता होती है ॥ ४६ ॥ जिस समय सूर्य विषुवत् रेखा पर होता है उस समय उत्तर मेरुनिवासी एवं दक्षिण मेरुनिवासी सूर्य को क्षितिज रेखा में देखते हैं। इस प्रकार सूर्य के उत्तरायण दक्षिणायन होने के कारण परस्पर देव और असुरों के दिन रात्रि विपर्यय से (उलट पलट) होते हैं। अर्थात् सूर्य जब उत्तरायण होता है तो देवों का दिन और उस समय असुरों की रात्रि, एवं सूर्य जब दक्षिणायन होता है तो देवों की रात्रि और असुरों का दिन होता है ॥ ४७ ॥ उत्तर मेरुनिवासियों के भाग में जब सूर्य मेष, वृष, मिथुन राशिस्थ होता है तो इन का पूर्वार्ध दिन (प्रातःकाल से मध्याह्न तक) होता और उस समय असुरों की आधीरात (सायङ्काल से आधीरात तक) होती और जब कर्क, सिंह, कन्या इन तीन राशियों में होता है तो देवभाग में अपराह्न (दिन का पिछला आधा) होता और उस समय असुरभाग में पिछली आधीरात (आधी रात से भोर के पहिले तक) होती है। इसी प्रकार जब सूर्य तुला, वृश्चिक, धनु इन तीन राशियों में होता है तो असुरभाग में दिन का पूर्वाह्न और देवभाग में आधीरात होती है और जब सूर्य मकर, कुम्भ, मीन इन तीन राशियों में होता है तो असुरभाग में अपराह्न और देवभाग में पिछली आधी रात होती है ॥४८।४९॥ पूर्वोक्त कारण से देव और असुरों का परस्पर अहोरात्र (दिन रात) विपर्यय से होता है। सूर्य के भगणकाल का पूरा होना ही इन दोनों का एक अहोरात्र होता है ॥ ५० ॥ सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने के कारण देवता और असुरों का दिनार्द्ध और रात्र्यर्द्ध विपर्यय से होता है अर्थात् जब देवों का दिनार्द्ध, तब असुरों की आधीरात एवं जब असुरों का दिनार्द्ध तब देवों की आधी रात होती है। देव और असुरगण निज २ स्थान को एक दूसरे की अपेक्षा ऊपर समझते हैं, अर्थात् देवगण असुरों को अपने से नीचस्थ और इसी प्रकार असुरगण देवों को अपने से नीचस्थ समझते हैं ॥ ५१ ॥

अन्येऽपि समसूत्रस्था मन्यन्तेऽधः परस्परम्। भद्राश्व-केतुमालस्था लङ्कासिद्धपुराश्रिताः॥ ५२ ॥ सर्वत्रैव महीगोले स्वस्थानमुपरि स्थितम्। मन्यन्ते खे यतो गोलस्त-

स्य क्वोर्ध्वं क्वाप्यधः ॥ ५३ ॥ अल्पकायतया लोकाः
स्वस्थानात्सर्वतोमुखम् । पश्यन्ति वृत्तामप्येतां चक्रा-
कारां वसुन्धराम् ॥ ५४ ॥ सव्यं भ्रमति देवानामपसव्यं
सुरद्विषाम् । उपरिष्टाद्भगोलोऽयं व्यक्षे पश्चान्मुखः स-
दा॥५५॥अतस्तत्र दिनं त्रिंशन्नाडिकं शर्वरी तथा। हानि-
वृद्धी सदा वामं सुरासुरविभागयोः ॥ ५६ ॥ मेषादौ तु
सदा वृद्धिरुदगुत्तरतोऽधिका । देवांशे च क्षपाहानिर्वि-
परीतं तथासुरे ॥ ५७ ॥ तुलादौ द्युनिशोर्वामं क्षयवृद्धी
तयोरुभे । देशक्रान्तिवशान्नित्यं तद्विज्ञानं परोदितम् ५८

वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥ सूर्य जब मेषादि अर्थात् मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या इन छः राशियों में उत्तरायण में होता है तो उत्तर मेरुप्रदेश में दिन की वृद्धि और रात्रि की हानि होती है। और उस असुरभाग में इस के विपरीत होता है अर्थात् दिन का ह्रास और रात्रि की वृद्धि होती है। इसी प्रकार जब सूर्य तुलादि अर्थात् तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन इन छः राशियों में होता है तब असुरभाग में दिन की वृद्धि और रात्रि की हानि होती है और देवभाग में दिन की हानि एवं रात्रि की वृद्धि होती है। क्षय और वृद्धि (दिन+रात्रि की) सूर्य की क्रान्ति के कारण होती है जिस के विषय मे अ० २ मे कहा जा चुका है ॥ ५७ । ५८ ॥

भूवृत्तं क्रान्तिभागघ्नं भगणांशविभाजितम् । अवाप्तयोजनैरर्कोव्यक्षाद्यात्युपरिस्थितः ॥ ५९॥ परमापक्रमादेवं योजनानि विशोधयेत् । भूवृत्तपादाच्छेषाणि यानि स्युर्योजनानि तैः ॥६०॥ अयनान्ते विलोमेन देवासुरविभागयोः । नाडीषष्ट्या सकृदहर्निशाप्यस्मिन्सकृत्तथा ॥ ६१ ॥ तदन्तरेऽपि षष्ट्यन्ते क्षयवृद्धी अहर्निशोः । परतो विपरीतोऽयं भगोलः परिवर्त्तते ॥६२॥ ऊने भूवृत्तपादे तु द्विज्यापक्रमयोजनैः । धनुर्मृगस्थः सविता देवभागे न दृश्यते ॥६३॥ तथा चाऽसुरभागे तु मिथुने कर्कटे स्थितः। नष्टच्छायामहीवृत्तपादे दर्शनमादिशेत्६४

भाषानुवाद–भूवृत्त (५-५९) को सूर्य की क्रान्ति से गुणा कर गुणनफल को ३६० से भाग दे, भागफल योजन संख्या निरक्ष देश से उतने योजन दूर स्थित स्थान में सूर्य मध्याह्न के समय मस्तकोपरि होगा ॥ ५९ ॥ सूर्य की परम क्रान्ति (२४ अंश परिमित) के योजन को भूवृत्त (५-५९) के चौथे भागसे घटाने पर शेष योजन संख्या रहती है। निरक्षदेश से उतने दूर दक्षिण और उत्तरप्रदेश में विपरीत भाव से ६० घड़ी का दिन और रात होता है अर्थात् अयनान्त। जब मकरराशिस्थ सूर्य उत्तरभाग में होता है उस समय देव-

भाग में ६० घड़ी की रात एवं असुरभाग में ६० घड़ी का दिन होता है और जब कर्क राशिस्थ सूर्य होता है तब निरक्ष देश से उत्तर उतने योजनान्तरित देश में ६० घड़ी का दिन एवं दक्षिणभाग में ६० घड़ी की रात्रि होती है ॥ ६० । ६१ ॥ निरक्ष देश में पूर्वोक्त रीति से जितनी दूर उत्तर और दक्षिण प्रदेश में ६० घड़ी में हानि और वृद्धि कही गयी हैं उस के अनुसार वहां दिन रात होते हैं परन्तु निरक्ष के दक्षिण और उत्तर उक्त अवधि से आगे के देशों में यह भूगोल गणित के विरुद्ध भ्रमण करता है इस लिये उस से परे के देशों में दिन रात्रि की ह्रास वृद्धि नहीं कही गई ॥ ६२ ॥ दो राशि की ज्या के क्रान्ति के अंश को भूवृत्त (५०५९) से घटाये शेष फल योजन निरक्ष देश से उत्तर उतने दूर प्रदेश में धनु और मकर राशि का सूर्य देवों को नहीं दीखता अर्थात् उन की रात्रि रहती और निरक्षदेश से दक्षिण प्रदेश में उक्त योजन दूर पर मिथुन और कर्क राशि का सूर्य असुरों को नहीं दीखता अर्थात् उन की रात्रि रहती है। जिस स्थान में पृथिवी की छाया नहीं है वहां सूर्य का दर्शन होता अर्थात् दिन होता है और पृथिवी के वृत्त के चतुर्थांश में सदैव सूर्य दर्शन कहना चाहिये ॥ ६३ । ६४ ॥

एकज्यापक्रमानीतैर्योजनैः परिवर्जितैः । भूमिकक्षाचतुर्थांशे व्यक्षाच्छेषैस्तु योजनैः ॥ ६५ ॥ धनुर्मृगालिकुम्भेषु संस्थितोऽर्को न दृश्यते । देवभागेऽसुराणां तु वृषाद्ये भचतुष्टये ॥ ६६ ॥ मेरौ मेषादिचक्रार्धे देवाः पश्यन्ति भास्करम् । सकृदेवोदितं तद्वदसुराश्च तुलादिगम् ॥ ६७ ॥ भूमण्डलात्पञ्चदशे भागे देवेऽथवासुरे । उपरिष्टाद् व्रजत्यर्कः सौम्ययाम्यायनान्तगः ॥ ६८ ॥ तदन्तरालयोश्छाया याम्योदक् सम्भवत्यपि । मेरोरभिमुखं याति परतः स्वविभागयोः ॥ ६९ ॥ भद्राश्वोपरिगः कुर्याद् भारते तूदयं रविः । रात्र्यर्धं केतुमाले तु कुरावस्तमयं तदा ॥ ७० ॥ भारतादिषु वर्षेषु तद्वदेव परिभ्रमन् । मध्योदयार्धरात्र्यस्तकालान्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ७१ ॥

भाषानुवाद—एक राशि की ज्या से क्रान्ति अंश के योजन से भूवृत्त के चतुर्थांश योजन के घटाने पर शेष योजन संख्या होगी। उतनी दूर निरक्ष देश के उत्तर भाग में वृश्चिक,धनु,मकर, कुम्भ,राशि स्थित सूर्य तत्रत्य लोगों (देवताओं) को नहीं दीखता। और निरक्षदेश से दक्षिणभाग में उतने योजन अन्तर में वृष, मिथुन, कर्क, सिंह राशिस्थ सूर्य असुरों को नहीं दीखता। और उत्तर मेरु निवासियों को वृष,मिथुन,कर्कट,सिंह इन राशियों में स्थित सूर्य देवों को दीखता है। एवं वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ राशि में अवस्थित सूर्य असुरों को दीखता है॥ ६५॥ ६६॥ उत्तर मेरु निवासियों को मेषादि (मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या) चक्रार्धगत सूर्य एक बार उदय हुआ छः महीने तक दृश्य होता है और दक्षिण मेरु निवासियों को तुलादि (तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन) अपर चक्रार्धगत सूर्य एक बार उदय हुआ छः मास तक दीखता है ॥ ६७ ॥ निरक्ष देश से भूवृत्त के १५ भाग (अंश) दूर उत्तर प्रदेश में – (उतने योजन परिमित अन्तर पर) उत्तरायण में देवभाग में सूर्य मस्तकोपरि दीखता है और १५ अंश परिमित योजन अन्तर पर दक्षिणायनसूर्य असुरभाग में मस्तक के ऊपर दीखता है॥ ६८॥ निरक्ष देश से १५ अंश योजन परिमित अन्तर उत्तर और दक्षिण प्रदेश की अभीष्ट कालिक छाया दक्षिण या उत्तर होती है अर्थात् निरक्ष देश से १५ अंश योजन परिमित अन्तर में उत्तर देश में मध्याह्न नतांश दक्षिण रहने पर छाया उत्तर रहती है। नतांश उत्तर रहने पर छाया दक्षिण होती है। इसी प्रकार निरक्ष देश से १५ अंश योजन परिमित अन्तरदेश में सूर्य के उत्तरस्थ होने पर छाया दक्षिण और सूर्य के दक्षिणस्थ होने पर छाया उत्तर होगी और निरक्ष देश से १५ अंश योजन परिमित उत्तर और दक्षिण प्रदेश से आगे उत्तर और दक्षिण मेरु के सम्मुख छाया पड़ती है॥ ६९॥ भारतवर्ष में जब सूर्य मस्तक के ऊपर होता है तो भारतवर्ष में मध्याह्न, केतुमाल में सूर्योदय, कुरुवर्ष में आधीरात और भद्राश्व वर्षमें सायङ्काल होता है। जब केतुमालवर्ष में सूर्य मस्तक के ऊपर होता है तो केतुमाल में मध्याह्न, कुरु वर्ष में सूर्योदय,भद्राश्व वर्ष में आधी रात और भारतवर्ष में सायङ्काल होता है और जब कुरुवर्ष में सूर्य मस्तक के ऊपर होता है तो कुरुवर्ष में मध्याह्न, भद्राश्ववर्ष में सूर्योदय, भारतवर्ष मे आधी रात और केतुमाल वर्ष में सूर्यास्त

और शुक्र मध्य की कक्षा ४३३१५०० योजन है अर्थात् इन तीनों की कक्षा का परिमाण एक ही है ॥८६॥ मङ्गल की कक्षा ८१४६९०९ योजन, चन्द्रोच्च की कक्षा ३८३२८४८४ योजन है ॥८७॥ बृहस्पति की कक्षा ५१३७५७६४ योजन, चन्द्रमा के पात (राहु) की कक्षा ८०५७२८६४ योजन है ॥८८॥ शनि की कक्षा १२७६६८२५५ योजन। भकक्षा २५९८८९०१२ योजन है ॥ ८९ ॥ ब्रह्माण्ड की कक्षा १८७१२०८०८६४०००००० योजन है, इन का मध्य सूर्य की किरणों का विस्तार है ॥ ९० ॥

विवरण–आकाश कक्षा जो लिखी है यह वास्तविक आकाश कक्षा नहीं, किन्तु ग्रहकक्षा जानने के लिये आकाशकक्षा मान कर एक प्रकार की संख्या मान ली गई है। भास्कराचार्य ने भी ऐसा ही लिखा है–

ब्रह्माण्डमेतन्मितमस्तु नो वा कल्पे ग्रहः क्रामति योजनानि। यावन्ति पूर्वैरिह तत्प्रमाणं प्रोक्तं खकक्षाख्यमिदं मतं नः ॥ ३ ॥ (सि० शि० कक्षाध्याय)

अर्थात्–ब्रह्माण्ड की इतनी ही कक्षा है, यह ठीक नहीं। परन्तु पूर्वाचार्यों ने इस संख्या से ग्रहादि कक्षा का परिमाण निश्चय किया है। पुनः–

"कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनखभूभृद्भुजङ्गेन्दुभिर्ज्योतिःशास्त्रविदो वदन्ति नभसः कक्षामिमां योजनैः। तद्ब्रह्माण्डकटाहसम्पुटतटे केचिज्जगुर्वेष्टनं, केचित् प्रोचुरदृश्यदृश्यकगिरिं पौराणिकाः सूरयः ॥ ९१ ॥

अर्थात्–ज्योतिषशास्त्रवित् पण्डितगण कहते हैं कि आकाश की कक्षा की योजन संख्या १८७१२०६९२००००००००। इस को कोई २ ब्रह्माण्ड कटाह के सम्पुटस्थ वेष्टन समझते हैं। एवं किसी २ पौराणिक का अनुमान है कि यह लोकालोक पर्वत का वेष्टन (घेरा) मात्र है ॥ ९१ ॥

इति भाषानुवादे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ओ३म्

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अथ गुप्ते शुचौ देशे स्नातः शुचिरलङ्कृतः । सम्पूज्य भास्करं भक्त्या ग्रहान्भान्यथ गुह्यकान् ॥ १ ॥ पारम्पर्योपदेशेन यथाज्ञानं गुरोर्मुखात् । आचार्यः शिष्यबोधार्थं सर्वं प्रत्यक्षदर्शिवान् ॥२॥ भूभगोलस्य रचनां कुर्यादाश्चर्यकारिणीम् । अभीष्टं पृथिवीगोलं कारयित्वा तु दारवम् ॥ ३ ॥ दण्डं तन्मध्यगं मेरोरुभयत्र विनिर्गतम् । आधारकक्षाद्वितयं कक्षा वैषुवती तथा ॥४॥ भगणांशाङ्गुलैः कार्यादलितैस्तिस्र एव ताः । स्वाहोरात्रार्धकर्णैश्च तत्प्रमाणानुमानतः ॥ ५ ॥ क्रान्तिविक्षेपभागैश्च दलितैर्दक्षिणोत्तरैः । स्वैःस्वैरपक्रमैस्तिस्रो मेषादीनामपक्रमात् ॥६॥ कक्षाःप्रकल्पयेत्ताश्च कर्कादीनां विपर्ययात् । तद्वत्तिस्रस्तुलादीनां मृगादीना विलोमतः ॥ ७ ॥

भाषानुवाद—एकान्त पवित्र (साफ़) स्थान में स्नानादि नित्यक्रिया कर शुद्धमन होकर आचार्य (सूर्यांशपुरुष) वस्त्रादिक पहनकर सूर्य और ग्रहाधिष्ठित नारायण को प्रणाम कर, शिष्य (मयासुर) को सुगमतया बोध के लिये प्रत्यक्ष करके जिस प्रकार गुरुमुख से एवं परंपरा से ज्ञान प्राप्त किया था, ज्योतिष के सब विषयों को मय को दिखलाया ॥ १ । २ ॥ शिष्य को भलीभांति भूगोल एवं भगोल विषयक (पूर्वोक्त) ज्ञान हो । गणक को चाहिये कि किसी गोल विद्यावित् शिल्पज्ञ से अभीष्ट काठ का आश्चर्यकारी भूगोल और भगोल बनवावे, उस भूगोल में दोनों ओर (दक्षिण उत्तर) निकला हुया मेरु दण्ड आधार की दो कक्षा और दो विषुवद्वृत्त की कक्षा बनावे ॥३ । ४॥ स्वाहोरात्रार्द्ध कर्ण परिमाण से व्यास विशिष्ट तीन वृत्तों को खेंचे और प्रत्येक वृत्त

मे तीनसौसाठ २ भाग चिह्न करे, क्रान्ति विक्षेपाग्र अङ्कित दक्षिणोत्तर रेखा मे मेषादि के अपक्रम के अनुसार अपक्रमाग्र में उक्त तीनो वृत्तो को संयोग करावे, वे ही विपरीत भाव (दरअक्स) से कर्कादि की कक्षा होंगी। उसी प्रकार दक्षिण ओर भी तुलादि की तीन कक्षाओ को संयुक्त करे, वे ही विलोम (उलटे क्रम) से मकरादि की कक्षा होगी ॥ ५ । ६ । ७ ॥

याम्यगोलाश्रिताः कार्याः कक्षाधाराद्वयोरपि। याम्योदग्गोलसंस्थानां भानामभिजितस्तथा ॥ ८ ॥ सप्तर्षीणामगस्त्यस्य ब्रह्मादीनां च कल्पयेत् ।मध्ये वैषुवती कक्षा सर्वेषामेव संस्थिता ॥ ९ ॥ तदाधारयुतेरूर्ध्वमयने विषुवद्द्वयम्।विषुवस्थानतो भागैः स्फुटैर्भगणसञ्चरात्॥१०॥ क्षेत्राण्येवमजादीनां तिर्यग्ज्याभिः प्रकल्पयेत्। अयनादयनं चैव कक्षा तिर्यक् तथापरा। क्रान्तिसंज्ञा तया सूर्यः सदा पर्येति भासयन् ॥११॥ चन्द्राद्याश्च स्वकैः पातैरपमण्डलमाश्रितैः। ततोऽपकृष्टादृश्यन्ते विक्षेपान्तेष्वपक्रमात्॥१२॥ उदयक्षितिजे लग्नमस्तं गच्छच्च तद्वशात्। लङ्कोदयैर्यथा सिद्धं खमध्योपरि मध्यमम्॥१३॥

भाषानुवाद—उत्तर, दक्षिण गोलस्थित, अभिजित् आदि नक्षत्रगण की कक्षा सब को आधारकक्षा के ऊपर संयुक्त करे। इसी प्रकार सप्तर्षि, अगस्त्य, ब्रह्महृदयादि की कक्षा होगी। सब के बीच के भाग में विषुवतीकक्षा रहेगी ॥ ८ । ९ ॥ विषुवती और आधार कक्षा के संयोगस्थान से ऊपर के प्रदेश में दो अयन और दो विषुव का चिह्न करे, उस के बाद विषुव रेखा से राशि अन्तर में मेषादि १२ क्षेत्र तिर्छे निरूपण करे। एक अयन से दूसरा अयन गत तिर्छे कक्षा को "क्रान्तिकक्षा" कहते हैं। इसी कक्षा में सूर्य भ्रमण करते दीखता है। चन्द्रादि अपने पात से आकृष्ट होकर अन्य वृत्त से भ्रमण करता है। उसी प्रकार आकृष्ट होकर अपने अपक्रम से विक्षेपान्त में दृश्य होता है। उदय क्षितिजवृत्त में उन के अग्र ही उदय लग्न है। एवं अस्त में अस्त लग्न है ॥ १०–१३ ॥

मध्यक्षितिजयोर्मध्ये या ज्या सान्त्याभिधीयते । ज्ञेया चरदलज्या च विषुवत्क्षितिजान्तरम् ॥ १४ ॥ कृत्वोपरि स्वकं स्थानं मध्ये क्षितिजमण्डलम् ॥ १५ ॥ वस्त्रच्छन्नं बहिश्चापि लोकालोकेन वेष्टितम् । अमृतस्रावयोगेन कालभ्रमणसाधनम् ॥ १६ ॥ तुङ्गबीजसमायुक्तं गोलयन्त्रं प्रसाधयेत्। गोप्यमेतत्प्रकाशोक्तं सर्वगम्यं भवेदिह ॥ १७ ॥ तस्माद्गुरूपदेशेन रचयेद्गोलमुत्तमम् । युगेयुगे समुच्छिन्ना रचनेयं विवस्वतः ॥ १८ ॥ प्रसादात्कस्यचिद्भूयः प्रादुर्भवति कामतः । कालसंसाधनार्थाय तथा यन्त्राणि साधयेत् । एकाकी योजयेद्बीजं यन्त्रे विस्मयकारिणि ॥ १९ ॥

भाषानुवाद–मध्य और क्षितिज के मध्य में जो ज्या है वही "अन्त्या" है । विषुवत् और क्षितिज के अन्तर को " चरदलज्या" कहते हैं ॥१४॥ काठ के बनाये हुवे उक्त भूगोल में अपने स्थान को सब से ऊपर के मध्य में क्षितिज मण्डल स्थिर करे ॥ १५ ॥ दृष्टान्त गोल के क्षितिज के बाहर वस्त्र से ढक कर वस्त्र के ऊपर वृत्तों को अङ्कन करके जलप्रवाह से कालसाधन करे ॥ १६ ॥ गणक को चाहिये कि पारे के साथ गोलयन्त्र को सिद्ध करे जिस में ६० नाक्षत्रिक घटिकाओं में दृष्टान्त गोल भ्रमण करावे । यह विषम विषय भली भांति प्रत्यक्षतया दिखलाने और स्पष्टतया कहने से तो सब को समझ में आवेगा ॥१७॥ इस लिये गुरु के उपदेश से गणक उत्तम गोल बनावे । यह (सावित्रविद्या) युग २ में लुप्तप्राय हो जाती है, परन्तु ईश्वर की कृपा से पुनः किन्हीं ऋषिद्वारा प्रकट होती है ॥ १८ ॥ कालसाधन के लिये स्वयं इस यन्त्र के अतिरिक्त अन्यान्य यन्त्र भी अच्छे शिल्पज्ञ द्वारा बनवावे और केवल एक पारा आश्चर्यकारी यन्त्रों में मिलवावे ॥ १९ ॥

शङ्कुयष्टिधनुश्चक्रैश्छायायन्त्रैरनेकधा । गुरूपदेशाद्विज्ञेयं कालज्ञानमतन्द्रितैः ॥ २० ॥ तोययन्त्रकपालाद्यैर्मयूर-

नरवानरैः। ससूत्ररेणुगर्भैश्च सम्यक्कालं प्रसाधयेत्॥२१॥ पारदाराम्बुसूत्राणि शुल्वतैलजलानि च। बीजानि पांसवस्तेषु प्रयोगास्तेऽपि दुर्लभाः ॥ २२ ॥ ताम्रपात्रमधश्छिद्रं न्यस्तं कुन्देऽमलाम्भसि । षष्टिर्मज्जत्यहोरात्रे स्फुटं यन्त्रं कपालकम् ॥२३॥ नरयन्त्रं तथा साधु दिवा च विमले रवौ । छायासंसाधनैः प्रोक्तं कालसाधनमुत्तमम् ॥ २४ ॥ ग्रहनक्षत्रचरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्त्वतः । ग्रहलोकमवाप्नोति पर्यायेणात्मवान्नरः ॥ २५ ॥

इति ज्योतिषोपनिषदध्यायस्त्रयोदशः ॥ १३ ॥

भाषानुवाद–निष्कपट तथा भ्रमरहित गुरु के उपदेश से गणक को चाहिये कि शङ्कु, यष्टि, धनु, चक्र और अनेक प्रकार के छायायन्त्र द्वारा कालसाधन करे अर्थात् कालज्ञान करे ॥ २० ॥ कपालादि जलयन्त्र, मयूर नामक स्वयंवह यन्त्र, शङ्कुनामक नर या छायायन्त्र, या नरनामक स्वयंवह यन्त्र बनावे और मयूरनामक स्वयंवह यन्त्र में इस प्रकार निपुणता से बालु भरे जिस में क्रम २ से ६० घड़ी मे सब बालु गिरजावे॥२१॥ पूर्वोक्त यन्त्र तथा पारे से मिलाहुवा जलयन्त्र, सूत्र, शिल्प को निपुणता, तेल मिलाहुवा जल, पारा, बालू इन सब का प्रयोग करना (सर्वसाधारण के लिये) बहुत कठिन है ॥२२॥ निर्मल जल भरे हुवे माटी के घड़े में एक ताम्बे का बना हुवा कटोरा जिस के नीचे छेद हो, रक्खे, यह कपालकनामकयन्त्र अहोरात्र में साठ बार जल में डूबेगा ॥ २३ ॥ दिन मे जब बादलरहित आकाश स्वच्छ हो उस समय सूर्य के आतप में छायाद्वारा काल जानने के लिये नरयन्त्र (१२ अगुल) साधन करे ॥ २४ ॥ ग्रह नक्षत्रादि चरित (स्थित्यादि) भूगोल और खगोल को भली भांति जानकर मनुष्य ग्रहादि लोको को यथावत् जानलेता है और आत्मज्ञानी होजाता है (जिस से मोक्ष होता है) ॥ २५ ॥

इति भाषानुवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

ओ३म्

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

ब्राह्मं दिव्यं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं गुरोस्तथा । सौरञ्च सावनञ्चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव ॥ १ ॥ चतुर्भिर्व्यवहारोऽत्र सौरचान्द्रर्क्षसावनैः । बार्हस्पत्येन षष्ट्यब्दं ज्ञेयं नान्यैस्तु नित्यशः ॥ २ ॥ सौरेण द्युनिशोर्मानं षडशीतिमुखानि च । अयनं विषुवच्चैव संक्रान्तेःपुण्यकालता ॥ ३ ॥ तुलादिषडशीत्यह्नां षडशीतिमुखं क्रमात् । तच्चतुष्टयमेव स्याद् द्विस्वभावेषु राशिषु ॥ ४ ॥ षड्विंशे धनुषो भागे द्वाविंशे निमिषस्य च । मिथुनाष्टादशे भागे कन्यायास्तु चतुर्दश ॥ ५ ॥ ततः शेषाणि कन्याया यान्यहानि तु षोडश । क्रतुभिस्तानि तुल्यानि पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ ६ ॥

भाषानुवाद-कालमान नौ प्रकार के हैं-ब्राह्म, दैव, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र मान हैं ॥ १ ॥ इन में से लोक में प्रायः चार मानों का नित्य प्रयोजन पड़ता है,वे ये हैं-सौर,चान्द्र, नाक्षत्रिक और सावन । ६० वर्ष के ज्ञान के लिये बृहस्पतिमान का प्रयोजन होता है । एवं शेष ब्राह्म, दैव,पित्र्य,प्राजापत्य इन का प्रयोजन नित्य नहीं होता,परन्तु कभी २ होता है ॥ २ ॥ अहोरात्र का परिमाण, षडशीति मुख आदि, (संक्रान्ति विशेष) अयन,(उत्तरायण, दक्षिणायन) विषुवत् और संक्रान्ति की पुण्यकालता ये सब सौरमान से निर्णीत होते हैं ॥ ३ ॥ तुलादि राशि के आरम्भ से ८६ सौर दिन में षडशीति मुख नाम की संक्रान्ति होती है यह क्रम से चार द्विस्वभाव वाली राशियों में होती हैं ॥४॥ प्रथम षडशीति मुख धनु राशि के २६ अंश में, दूसरा मीनराशि के २२ अंश में, तीसरा मिथुनराशि के १८ अंश में, चौथा कन्याराशि के १४ अंश में होता है ॥ ५ ॥ कन्याराशि के अवशिष्ट १६ अंश (अर्थात् १४ अंश तो षडशीतिमुख शेष १६ अंश) यज्ञकार्य के लिये अच्छा है,इस समय पितृगण के लिये दिया हुआ अक्षय होता है॥६॥

विवरण-श्लो० ६ इस समय के दान की प्रशंसापरक वचन की उपपत्ति समझ में नहीं आती कि क्यों ऐसा लिखा है और न यह सिद्धान्त ज्योतिष का विषय है । पञ्चसिद्धान्तिका की टीका में भी महामहोपाध्याय प० सुधाकर

द्विवेदी जी इसी विषय पर लिखते हैं कि "तुला आदिर्यस्याः सा तुलादिः कन्या तस्याः षडशीतिमुखेषु ये दिवसाः षोडशावशेषाः सन्ति ते पितृदिवसास्तत्र पितृणां दत्तमक्षयं स्यादित्यत्र प्राचीनवचनान्येव प्रमाणानीति" अर्थात् उक्त पितृदिवस में दान देने से अक्षय होता है इस की कोई उत्पत्ति नहीं इस में प्राचीन वचन ही प्रमाण हैं ॥

भचक्रनाभौ विषुवद्द्वितयंसमसूत्रगम्। अयनद्वितयं चैव चतस्रः प्रथितास्तु ताः ॥ ७ ॥ तदन्तरेषु संक्रान्तिद्वितयं द्वितयं पुनः। नैरन्तर्यात्तु संक्रान्तेर्ज्ञेयं विष्णुपदीद्वयम् ॥ ८ ॥ भानोर्मकरसंक्रान्तेः षण्मासा उत्तरायणम्। कर्कादेस्तु तथैव स्यात्षण्मासा दक्षिणायनम् ॥ ९ ॥ द्विराशिनाथाऋतवस्ततोऽपि शिशिरादयः। मेषादयो द्वादशैते मासास्तैरेव वत्सरः ॥ १० ॥ अर्कमानकलाःषष्ट्या गुणिताभुक्तिभाजिताः। तदर्धनाड्यः संक्रान्तेरर्वाक्पुण्यं तथापरे ॥ ११ ॥ अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी। तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः॥

भाषानुवाद–नक्षत्रचक्र की नाभि (बीच) में दो विषुवत् (मेष और तुला) बिन्दु (चिह्न) समसूत्रग (बराबर) हैं और उसी प्रकार दो अयन (मकर अयनान्त कर्कट अयनान्त) भी हैं। ये चार बिन्दु सदा प्रसिद्ध हैं ॥७॥ पूर्वोक्त दोनों विषुव अयन में निरन्तर दो सङ्क्रान्ति होती हैं और जो चार सङ्क्रान्ति उन के पीछे होती हैं उन को विष्णुपदी कहते हैं ॥ ८ ॥ (शेष सङ्क्रान्ति का नाम षडशीति है) सूर्य के मकर (मकर, कुम्भ, मीन, मेष, वृष, मिथुन ये ६ राशि) सङ्क्रान्ति से पीछे ६ सौर मास की उत्तरायण संज्ञा है और कर्कट की सङ्क्रान्ति (कर्कट सिंह कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, ६ राशि) के पीछे ६ सौरमास की दक्षिणायन संज्ञा है ॥९॥ मकर सङ्क्रान्ति के पीछे सूर्य के दो २ राशि भोग काल की शिशिरादि ऋतुसंज्ञा होती है और इस प्रकार १२ महीनों का वर्ष होता है ॥ १० ॥ सूर्यबिम्बमान की कला को ६० से गुणा कर गुणन फल में सूर्य की दैनिकभुक्ति से भाग देवे भागफल कलादि का आधा परिमित समय सङ्क्रान्तिकाल में घटाने या जोड़ने से जो वियोगफल और योगफल रूप में समय होंगे उस का अन्तर (मध्य) अतिपुण्यप्रद होता है ॥ ११ ॥ सूर्य का साथ छोड़ कर प्रतिदिन चन्द्रमा पूर्वदिशा में जाता है, उस

के लिये सूर्य से १२ अंश जाने को जितना समय लगता है उतने समय की एक तिथि संज्ञा है ॥ १२॥

तिथिः करणमुद्वाहः क्षौरं सर्वक्रियास्तथा । व्रतोपवासयात्राणां क्रिया चान्द्रेण गृह्यते ॥१३॥ त्रिंशता तिथिभिर्मासश्चान्द्रः पित्र्यमहः स्मृतम् । निशा च मासपक्षान्तौ तयोर्मध्ये विभागतः ॥१४॥ भचक्रभ्रमणं नित्यं नाक्षत्रं दिनमुच्यते । नक्षत्रनाम्ना मासास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः ॥ १५ ॥ कार्त्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादिद्वयं द्वयम् । अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम् ॥ १६ ॥ वैशाखादिषु कृष्णे च योगः पञ्चदशे तिथौ । कार्त्तिकादीनि वर्षाणि गुरोरस्तोदयात्तथा ॥१७॥ उदयादुदयं भानोःसावनं तत्प्रकीर्त्तितम्। सावनानि स्युरेतेन यज्ञकालविधिस्तु तैः ॥ १८ ॥

भाषानुवाद–तिथि, करण (अ० २ देखो) विवाह क्षौरादि (चौल कर्म) व्रत, उपवास (किसी यज्ञ या वैदिक संस्कार निमित्त) यात्रा (कहीं जाना, उस की तारीख मालूम करना) ये सब चान्द्रमान द्वारा निर्णीत किये जाते हैं॥१३॥ ३० चान्द्र दिन का एक चान्द्रमास होता है। एवं इसी को पित्र्य अहोरात्र भी कहते हैं। चान्द्रमास दो प्रकार का होता है। एक अमावास्या से अमावास्या तक। दूसरा पूर्णमासी से पूर्णमासी तक। पहिले को अमान्त और दूसरे को पूर्णिमान्त चान्द्रमास कहते हैं। चान्द्रमास से १५ दिन का पित्र्य दिन और १५ दिन की पित्र्य रात्रि होती है ॥ १४ ॥ दैनिक नक्षत्रचक्र के भ्रमणकाल का नाक्षत्रिक अहोरात्र होता है, और पूर्णमासी के अन्त में जो नक्षत्र होता है उसी के नाम से महीने का नाम होता है ॥१५॥ कार्तिकादि मास की पूर्णमासी से दो २ नक्षत्रों में एक एक मास होता है,परन्तु आश्विन, भाद्रपद और फाल्गुन इन तीन मासों में तीन २ नक्षत्र होते हैं॥१६॥ जिस प्रकार वैशाखादि मास में पूर्णमासी की तिथि के नक्षत्र के नामसे महीने का नाम होता है, उसी प्रकार बृहस्पति के अस्त और उदय समय कृष्णपक्ष की अमावास्या तिथि के नक्षत्र के नाम से वर्ष का नाम होता है ॥ १७ ॥ एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के मध्यवर्ती काल को 'सावन' दिन कहते हैं। इसी सावन मान से यज्ञकाल विधि निर्णीत होता है ॥ १८ ॥

सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाव्दपास्तथा । मध्यमा ग्रहभुक्तिस्तु सावनेनैव गृह्यते॥१९॥ सुरासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् । यत्प्रोक्तं तद्भवेद्दिव्यं भानोर्भगणपूरणात् ॥ २० ॥ मन्वन्तरव्यवस्था च प्राजापत्यमुदाहृतम् । न तत्र द्युनिशोर्भेदो ब्राह्मं कल्पः प्रकीर्त्तितम् ॥ २१ ॥ एतत्ते परमाख्यातं रहस्यं परमाद्भुतम् । ब्रह्मैतत्परमं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २२ ॥ दिव्यं चार्क्षं ग्रहाणां च दर्शितं ज्ञानमुत्तमम् । विज्ञायार्कादिलोकेषु स्थानं प्राप्नोति शाश्वतम् ॥ २३ ॥

भाषानुवाद-सूतक (जन्म मरण सम्बन्धी) आदि (वैद्यकशास्त्र द्वारा रोगियों को उपवास कराने की, विधि चान्द्रायण व्रत) आशौच, दिन,मास और वर्ष के अधिपति (अ० २ देखो) ग्रहों की दैनिक वा वार्षिक गति इन सब का गणित सावनमान से होता है ॥१९॥ उत्तर मेरु निवासी और दक्षिण मेरु निवासियों का अहोरात्र विपरीतभाव से होता है (देखो अ० १२)औरसूर्यके भगण(१२राशि)पूर्ण कालकाही दिव्यदिनहोताहै॥२०॥मन्वन्तरकीव्यवस्था पहिले कही जा चुकीहै(देखोअ०१)वही"प्रजापत्यमान"है इस में अन्यान्य मान की तरह दिनरात्रि का भेद नहीं और कल्प ही"ब्राह्म मान" है॥२१॥ हे मय । यह परम रहस्य ज्योतिष शास्त्र मैंने कहा । खगोल विद्या होने से अन्यान्य विद्याओं से यह अद्भुत है । ज्योतिषसम्बन्धी अविद्यारूपी पापों का नाश करने वाला अतिपवित्र है, मानो ब्रह्म ही है । (सृष्टिसम्बन्धी यथावत् ज्ञान होने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है)॥२२॥ ग्रह और नक्षत्रादिक आकाशस्थ पदार्थसम्बन्धी उत्तम ज्ञान मैंने तुम से कहा है । उस का यथावत् जानने से अतुलस्य सुख प्राप्त होता है । एवं ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है॥२३॥

यहां २३ वें से आगे निम्नलिखित २१ श्लोक किसी २ पुस्तक में पाये जाते हैं, जिन को रङ्गनाथ टीकाकार ने लिखा है कि ये श्लोक किसी धूर्त ने प्रक्षिप्त किये हैं । हम भी मूलमात्र छापे देते हैं । यथा--

"यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा । तद्वद्वेदाङ्गशास्त्राणां गणितं मूर्धनि स्थितम् ॥ १ ॥ न देयं तत् कृतघ्नाय

वेदविप्लावकाय च। अर्थलुब्धाय मूर्खाय साहङ्काराय पापिने ॥ २ ॥ एवंविधाय पुत्रायाप्यदेयं सहजाय च। दत्तेन वेदमार्गस्य समुच्छेदः कृतो भवेत् ॥ ३ ॥ व्रजतामन्धतामिस्रं गुरुशिष्यौ सुदारुणम्। ततः शान्ताय शुचये ब्राह्मणायैव दापयेत् ॥ ४ ॥ चक्रानुपातजो मध्यो मध्यवृत्तांशजः स्फुटः। कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ॥ ५ ॥ राश्यादिरिन्दुरङ्कघ्नो भक्तो नक्षत्रकक्षया। शेषं नक्षत्रकक्षायास्त्यजेच्छेपकयोस्तयोः ॥ ६ ॥ यदल्पं तद्भजेद्दानां कक्षया तिथिनिघ्नया। बीजं भागादिकं तत् स्यात् कारयेत् तद्धनं रवौ ॥ ७ ॥ त्रिगुणं शोधयेदिन्दौ जिनघ्नं भूमिजे क्षिपेत्। द्व्यग्रमघ्नामृणं ज्ञोच्चे खरामघ्नं गुरावृणम् ॥ ८ ॥ ऋणं व्योमनवघ्नं स्याद्दानवेज्याचलोच्चके। धनं सप्ताहतं मन्दे परिधीनामथोच्यते ॥ ९ ॥ युग्मान्तोक्ताः परिधयो ये ते नित्यं परिस्फुटाः। ओजान्तोक्तास्तु ते ज्ञेयाः परबीजेन संस्कृताः ॥१०॥ वच्मि निर्बीजकानोजपदान्ते वृत्तभागकान्। सूर्येन्द्वोर्मनवो दन्ता धृतितत्त्वकलोनिताः ॥ ११ ॥ बाणतर्का महीजस्य सौम्यस्या-चलबाहवः। वाक्पतेरष्टनेत्राणि व्योमशीतांशवोभृगोः ॥ १२ ॥ शून्यतर्कोऽर्कपुत्रस्य बीजमेतेषु कारयेत्। बीजं खाग्न्युद्धृतं शोध्यं परिध्यंशेषु भास्वतः ॥१३॥ इनाप्तं योजयदिन्दोः कुजस्याश्वहतं क्षिपेत्। विदश्चन्द्रहतं याज्यं सूरेरिन्द्रहतं धनम् ॥ १४ ॥ धनं भृगोर्भुवा निघ्नं रविघ्नं शोधयेच्छनेः। एवं मान्दाः परिध्यंशाःस्फुटाः स्युर्वच्मि शीघ्रकान् ॥ १५ ॥ भौमस्याभ्रगुणाक्षीणि बुधस्याद्रि-गुणेन्दवः। बाणाक्षा देवपूज्यस्य भार्गवस्यन्दुपक्ष्मः ॥ १६ ॥ शनेश्चन्द्राब्धयः शीघ्रा ओजान्ते बीजवर्जिताः। छिन्नं स्वं कुज-भागेषु बीजं छिन्नमृणं विदः ॥ १७ ॥ मत्स्यच्छिन्नं धनं सूरेरिन्दुघ्नं

शोधयेत् कवेः। चन्द्रग्रमणमार्कस्य स्पुरेभिष्टं कसमा ग्रहाः ॥१८॥ एतद्बीजं मया ख्यातं प्रीत्या परमया तव। गोपनीयमिदं नित्यं नोपदेश्यं यतस्ततः ॥ १९ ॥ परीक्षिताय शिष्याय गुरुभक्ताय साधवे । देयं विप्राय नान्यस्मै प्रतिकञ्चुककारिणे ॥ २० ॥ बीजं निःशेषसिद्धान्तरहस्यं परमं स्फुटम्। यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणां शुभसिद्धिदम् ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा मयमामन्त्र्य सम्यक् तेनाभिपूजितः। दिवमाचक्रमेऽर्कांशःप्रविवेश स्वमण्डलम् ॥ २४ ॥ मयोऽथ दिव्यं तज्ज्ञानं ज्ञात्वा साक्षाद्विवस्वतः। कृतकृत्यमिवात्मानं मेने निर्धूतकल्मषम् ॥ २५ ॥ ज्ञात्वा तमृषयश्चाथ सूर्यलब्धवरं मयम्। परिवव्रुरुपेत्याथो ज्ञानं पप्रच्छुरादरात् ॥२६॥ स तेभ्यः प्रददौ प्रीतो ग्रहाणां चरितं महत्। अत्यद्भुततमं लोके रहस्यं ब्रह्मसम्मितम् ॥ २७ ॥

इति सूर्यसिद्धान्ते मानाध्यायश्चतुर्दशः ॥ १४ ॥

भाषानुवाद—इस प्रकार मयासुर को सूर्यांश पुरुष अच्छे प्रकार ज्योतिष का उपदेश कर अपने स्वर्गतुल्य सूर्यमण्डल में प्रवेश कर गया ॥२४॥ सूर्यांश पुरुष के अन्तर्द्धान होने पर मयासुर ने सूर्यांश पुरुष से ज्ञान पाने पर भी अपने को साक्षात् सूर्य ही से ज्ञान पाया जाना। इस विचार से पापरहित और कृतकार्य समझने लगा ॥ २५ ॥ सूर्य के वरदान से ज्योतिष का ज्ञान मयासुर को प्राप्त हुआ। ऐसी जनश्रुति सुन कर मुनिगण उस के पास आकर आदरसहित ज्योतिषसम्बन्धी ज्ञान पूंछने लगे ॥२६॥ और मयासुर ने भी ऋषियों के सत्कार से प्रसन्न होकर उन को ज्योतिष का ज्ञान ग्रहादिकों की स्थित्यादि अतिअद्भुत और रहस्य मानो मोक्षशास्त्रस्वरूप का उपदेश किया ॥ २७ ॥

इति सूर्यसिद्धान्ते भाषानुवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

समाप्तश्च सूर्यसिद्धान्तः ॥

विशेष ध्यान देने योग्य बात

पृष्ठ २३ की २३ वी पङ्क्ति से २४ वे पृष्ठ की प्रथम पङ्क्ति तक जो विवरण लिखा गया है, उस की अब आवश्यकता नहीं रही, कारण यह है कि ग्रन्थ छपने के पूर्व यह विचार था कि अनुवाद के साथ उदाहरण और चित्र भी दिये जावें परन्तु अनेक कारणो से इस आवृत्ति मे चित्र नहीं दिये गये द्वितीय आवृत्ति में आवश्यक चित्र और उदाहरण और प्रत्युदाहरण भी दिये जावेंगे।